

B.A.LL.B.-10th Sem. Paper-I Administrative Law-II

प्रश्न न0 1— लोकहितवाद क्या है? इसकी परिभाषा, विशेषताओं एवं सामाजिक कार्यों में विस्तार की चर्चा कीजिए।

उत्तर— लोकहित वाद (PIL) ऐसा वाद या न्यायिक कार्यवाही है जिसमें जन साधारण अथवा जनता के एक बड़े वर्ग का हित निहित होता है। अथवा दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि ऐसा वाद अथवा न्यायिक कार्यवाही अथवा मामला जिसमें जन साधारण अथवा समाज का हित हो वह लोकहित वाद कहलाता है।

लोकहित वाद निर्धन व कमजोर वर्ग के लोगों को न्याय दिलाने का एक अनूठा मंच है। जब कोई व्यक्ति निर्धनता, आर्थिक कमजोरी या अन्य किसी कारण से न्यायालय में वाद पेश करने अथवा न्यायिक कार्यवाही करने में असमर्थ रहता है तब उसकी ओर से अन्य व्यक्ति, स्वैच्छिक संगठन अथवा संस्था द्वारा लोकहित वाद के माध्यम से न्यायालय में वाद अथवा न्यायिक कार्यवाही पेश की जाती है। जैसे— कोई व्यक्ति अर्थाभाव (निर्धनता) के कारण न्यायालय में देने का साहस नहीं जुटा पाता है तो उसकी ओर से कोई भी अन्य व्यक्ति या संगठन न्यायालय में दस्तक दे सकता है, यही लोकहित वाद है।

उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश कृष्ण अय्यर का कहना है कि — “पीड़ित व्यथित व्यक्ति के ही न्यायालय में जा सकने की संकुचित धारणा अब समाप्त हो गई है। उसका स्थान अब वर्ग कार्यवाही, लोकहित वाद, प्रतिनिधि वाद आदि ने ले लिया है। अब कोई भी व्यक्ति जो किसी लोकहित (Public Interest) से जुड़ा है, ऐसे हितों की सुरक्षा के लिए न्यायालय में जा सकता है।”

ब्लैक लॉ डिक्शनरी के अनुसार— “जनहित याचिका का अर्थ है जनहित या सामान्य हित के प्रवर्तन के लिए न्यायालय में शुरू की गई कानूनी कार्यवाही जिसमें जनता या समुदाय के वर्ग का आर्थिक हित हो या कोई ऐसा हित हो जिससे उनके कानूनी अधिकार या दायित्व प्रभावित हों।”

1981 में न्यायमूर्ति पी. एन. भगवती ने जनहित याचिका की अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया, “जहां किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के एक निश्चित वर्ग को किसी संवैधानिक या कानूनी अधिकार के उल्लंघन के कारण कोई कानूनी गलत या कानूनी चोट पहुंचाई जाती है या किसी संवैधानिक या कानूनी प्रावधान के उल्लंघन में या कानून के अधिकार के बिना कोई बोज़ डाला जाता है या ऐसा कोई कानूनी गलत या कानूनी चोट या अवैध बोज़ धमकी दी जाती है और ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों के एक निश्चित वर्ग को गरीबी, असहायता या विकलांगता या सामाजिक या आर्थिक रूप से वंचित स्थिति में राहत के लिए न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में असमर्थ कोई भी व्यक्ति अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय में उचित निर्देश, आदेश या रिट के लिए आवेदन कर सकता है और ऐसे व्यक्ति या निश्चित वर्ग के व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन की स्थिति में अनुच्छेद 32 के तहत इस न्यायालय में ऐसे व्यक्ति या निश्चित वर्ग के व्यक्तियों को हुई कानूनी गलती या कानूनी क्षति के लिए न्यायिक निवारण की मांग कर सकता है।

लोकहित वाद का विस्तार—

लोकहित वाद का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। इसके क्षेत्र का अध्ययन दो दृष्टियों से किया जा सकता है कृ विषयवस्तु की दृष्टि से तथा अधिकारिता (locus standi) की दृष्टि से।

विषय—वस्तु (subject matter) की दृष्टि से— (i) जो व्यापक जन हित (public interest) से जुड़े हुए हैं

(ii) जिनमें निजी हित (private interest) निहित नहीं है;

(iii) जो राजनीति से प्रेरित नहीं है।

ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि निजी हित से जुड़े मामले लोकहित वाद के माध्यम से नहीं उठाये जा सकते हैं। (स्वतंत्रता सेनानी रामचन्द्र बिहारी सेवाश्रम बनाम स्टेट ऑफ बिहार, ए.आई.आर. 2008 एन.ओ.सी. 98, पटना, नेशनल कौंसिल फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम यूनियन ऑफ इंडिया, ए.आई.आर. 2007, एस. सी. 2631)।

अधिकारिता (locus standee) की दृष्टि से—लोकहित से जुड़े मामलों को किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन द्वारा न्यायालय में उठाया जा सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि पीड़ित अथवा व्यथित व्यक्ति ही न्यायालय में दस्तक दें। सामान्य नियम यह है कि संविधान के अनुच्छेद 226 के अन्तर्गत कोई रिट केवल उसी व्यक्ति द्वारा संस्थित की जा सकती है जिसके विधिक अधिकारों का अतिक्रमण हुआ हो। लेकिन अब समाज का कोई भी व्यक्ति, संघ या संगठन किसी ऐसे व्यक्ति या वर्ग के विधिक अधिकारों के संरक्षण के लिए न्यायालय में दस्तक दे सकता है जो निर्धनता या अन्य किसी कारण से न्यायालय तक पहुँचने में असमर्थ है। आवश्यक मात्र यह है कि ऐसे मामलों में व्यापक जनहित निहित हो। लोकहित वाद के बढ़ते हुए क्षेत्र का अच्छा उदाहरण पत्रों एवं समाचार पत्रों की कतरनों को रिट मानकर उन पर कार्यवाही किया जाना है। पिछले कुछ वर्षों से समाचार पत्रों की कतरनों तथा पोस्ट कार्डों व पत्रों को रिट मानकर कार्यवाही करने की प्रवृत्ति में अभिवृद्धि हुई है। बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (ए.आई.आर. 1982 एस.सी. 805), पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया (ए.

आई. आर. 1982 एस.सी. 1473), सुनील बचा बनाम दिल्ली प्रशासन (ए.आई.आर. 1980 एस.सी. 1579) आदि ऐसे अनेक मामले हैं जिनमें पत्रों एवं समाचारों की कतरनों को रिट मानकर कार्यवाही की गई है।

लोकहित वाद के लिए आवश्यक यह है कि –

(i) ऐसा मामला व्यापक जनहित से जुड़ा हुआ हो;

(ii) उसमें किसी का निजी हित निहित नहीं हो;

(iii) वह सद्भावपूर्वक हो;

(iv) राजनीति से प्रेरित न हो।

गंगा के पानी एवं ताज के सौन्दर्य को प्रदूषण से बचाना आदि लोकहित वाद के अच्छे उदाहरण हैं।

पर्यावरण एवं पारिस्थिति के मामले लोक हित वाद के माध्यम से उठाये जा सकते हैं। (बॉम्बे डाईंग एण्ड मेन्यूफैक्चरिंग क. लि. बनाम बम्बई एन्वायरमेंटल एक्शन ग्रुप, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 1489)।

गिरीश व्यास बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र (ए.आई.आर. 2012 एस.सी. 2043) के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा यह प्रतिपादित किया गया है कि लोकहित वाद सरकार एवं सरकारी तंत्र के लिए एक चुनौती भी है और वह उन्हें इस बात का अवसर भी प्रदान करता है कि वे मानव के मूलभूत अर्थात् बनियादी अधिकारों को अर्थपूर्ण बनाये।

प्रश्न न0 2— बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख क्या है? न्यायालय द्वारा प्रत्यक्षीकरण लेख जारी करने के कारण एवं इसकी प्रकृति की विवेचना कीजिए।

उत्तर— बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख, जिसे ग्रेट रिट भी कहा जाता है, एक याचिका है जिसे हिरासत में लिए गए व्यक्ति द्वारा न्यायालय में दायर की जा सकती है। इस लेख का इस्तेमाल किसी कैदी या अन्य बन्दी को अदालत के सामने लाने के लिए किया जाता है। इसका मकसद यह पता लगाना होता है कि व्यक्ति की कैद या हिरासत वैध है या नहीं। बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख के जरिए, यह भी पता चलता है कि गिरफ्तारी और हिरासत से जुड़े तथ्यों में कोई गड़बड़ी तो नहीं है। जैसे कि, गिरफ्तारी की तारीख गलत हो, बुकिंग शीट पर आरोप गलत लिखे हों, या अपराधी की जन्मतिथि गलत हो। बन्दी प्रत्यक्षीकरण लेख के जरिए, किसी भी प्रत्यर्पण प्रक्रिया, जमानत की राशि, और अदालत के अधिकार क्षेत्र की भी जांच की जा सकती है।

हैबियस कॉर्पस लैटिन शब्द है जिसका मतलब है 'आपको शव अपने पास रखना होगा।' यह न्यायालय द्वारा जारी किया गया आदेश है, जिसमें बन्दी को न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है और यह जांच की जाती है कि गिरफ्तारी वैध थी या नहीं।

परमादेश रिट—परमादेश रिट किसी भी कानून या विधि द्वारा स्वीकृत किसी प्राधिकरण द्वारा किसी व्यक्ति, निगम या किसी अन्य प्राधिकरण को कोई सार्वजनिक कर्तव्य निभाने के लिए जारी किया गया आदेश या आदेश है।

निषेधाज्ञा— निषेधाज्ञा रिट का अर्थ है उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीनस्थ अधिकारी को जारी किया गया रिट, ताकि कानून द्वारा निषिद्ध किसी चीज को रोका जा सके। यह रिट केवल न्यायिक और अर्ध-न्यायिक निकाय के विरुद्ध ही जारी की जा सकती है।

Certiorari की रिट—सर्टिओरारी शब्द लैटिन भाषा का शब्द है जिसका मतलब है सूचित होना। यह रिट उच्च न्यायालय द्वारा निचली अदालत के कार्यों की समीक्षा करने के लिए जारी की जाती है।

अधिकार पृच्छा रिट—क्वो वारन्टो रिट का अर्थ है किस प्राधिकारी द्वारा। यह रिट जारी की जाती है जिसमें किसी व्यक्ति को यह दिखाने की आवश्यकता होती है कि उसने किस प्राधिकारी द्वारा अपनी शक्तियों या अधिकारों का प्रयोग किया है।

अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय और अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को इस तरह की रिट जारी करने का अधिकार है। हालांकि अनुच्छेद 32 के तहत सर्वोच्च न्यायालय किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन पर रिट जारी करता है, लेकिन अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को कानूनी और मौलिक अधिकारों के उल्लंघन के लिए रिट जारी करने का व्यापक क्षेत्राधिकार प्राप्त है।

बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका का अर्थ— बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट एक कानूनी प्रक्रिया है जो अवैध रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति के लिए एक उपचारात्मक उपाय के रूप में कार्य करती है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण शब्द लैटिन शब्द है जिसका अर्थ है शव को न्यायालय के समक्ष लाना या प्रस्तुत करना। यह गैरकानूनी रूप से हिरासत में लिए गए व्यक्ति को उपलब्ध सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है। इस रिट का उपयोग करने का मूल उद्देश्य किसी व्यक्ति को गैरकानूनी हिरासत या कारावास से मुक्त करना है। यह रिट बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह किसी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार को निर्धारित करती है।

चित्रण—A को पुलिस अधिकारी B ने बिना वारंट के हिरासत में ले लिया है। A के परिवार द्वारा A का पता जानने के लिए किए गए सभी प्रयास व्यर्थ हो गए। चूंकि उसे B (पुलिस अधिकारी) द्वारा गलत तरीके से हिरासत में लिया गया था, इसलिए A के परिवार द्वारा उसकी ओर से अदालत में बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की जा सकती है।

बन्दी प्रत्यक्षीकरण याचिका की प्रकृति—बन्दी प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा का पता तेरहवीं शताब्दी में लगाया जा सकता है। बन्दी प्रत्यक्षीकरण सह कारण रिट एक आदेश है जिसमें किसी अन्य व्यक्ति को हिरासत में लेने वाले व्यक्ति को अदालत में पेश करने और उसके कार्यों को उचित ठहराने के लिए कहा जाता है कि किस आधार पर और किस

अधिकार के तहत उसने उस व्यक्ति को हिरासत में लिया है। यदि अदालत को कारण के लिए कोई कानूनी औचित्य नहीं मिलता है, तो वह हिरासत में लिए गए या कैद किए गए व्यक्ति की तत्काल रिहाई का आदेश देगी।

बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए कौन आवेदन कर सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए न्यायालयों ने विभिन्न मामलों में यह स्पष्ट कर दिया है कि जो व्यक्ति बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए आवेदन कर सकता है, उसे

- (1) अवैध रूप से बंधक या हिरासत में लिया गया व्यक्ति।
- (2) वह व्यक्ति जो मामले के लाभ से अवगत है।
- (3) वह व्यक्ति जो मामले के तथ्यों और परिस्थितियों से परिचित है और स्वेच्छा से भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर करता है।

(4) जब बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अस्वीकार कर दी जाती है
बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका अस्वीकृत होने की निम्नलिखित स्थितियाँ हैं—

- (1) जब न्यायालय के पास बंदी पर प्रादेशिक अधिकारिता नहीं होती।
- (2) जब किसी व्यक्ति की हिरासत न्यायालय के आदेश से जुड़ी हो।
- (3) जब हिरासत में लिया गया व्यक्ति पहले ही रिहा हो चुका हो।
- (4) जब दोषों को दूर करके कारावास को वैध बना दिया गया हो।
- (5) आपातकाल के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका उपलब्ध नहीं होगी।
- (6) जब सक्षम न्यायालय गुण-दोष के आधार पर याचिका को खारिज कर देता है।

क्या इस रिट पर रिस जुडिकाटा का सिद्धांत लागू होता है

जब किसी व्यक्ति को अवैध रूप से बंधक बनाने की बात आती है, तो रिस जुडिकाटा का सिद्धांत लागू नहीं होता। अनुच्छेद 32 के तहत बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए लगातार याचिका नए आधारों के साथ न्यायालय में दायर की जा सकती है, जो पहले दायर की गई याचिका में शामिल नहीं थे। बंदी प्रत्यक्षीकरण के लिए याचिका तभी स्वीकार्य है जब इसे स्वतंत्र अस्तित्व और अलग अधिकार क्षेत्र और योग्यता वाले फोरम में दायर किया जाए।

लल्लूभाई जोगीभाई पटेल बनाम भारत संघ एवं अन्य मामले में 15 दिसंबर, 1980 को यह माना गया कि बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए कोई दूसरी याचिका न्यायालय में स्वीकार्य नहीं है, यदि वह पहली याचिका के समान ही आधारों पर दायर की गई हो।

निवारक निरोध—निवारक निरोध किसी व्यक्ति को भविष्य में किसी भी तरह का अपराध करने से रोकने के लिए उसे कारावास में रखना है। यह किसी व्यक्ति पर लगाई गई सजा या दंड के रूप में कार्य नहीं करता है, यह केवल एक एहतियाती तरीका है। निवारक निरोध और बंदी प्रत्यक्षीकरण की अवधारणा एक साथ आती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 22 में निवारक निरोध की प्रक्रिया बताई गई है और कानून का सख्ती से पालन करने की आवश्यकता है। संसद को इससे जुड़े विभिन्न कारणों से निवारक निरोध के लिए कानून बनाने का अधिकार है जैसे—

- (1) रक्षा।
- (2) विदेशी संबंध या देश के विदेशी मामले।
- (3) इसका मुख्य उद्देश्य भारत और उसके राज्य को सुरक्षा प्रदान करना है।
- (4) सार्वजनिक व्यवस्था बनाये रखने के लिए।

हालाँकि, ऐसी हिरासत की पूर्व शर्तों की जाँच करके न्यायिक समीक्षा के माध्यम से निगरानी की जा सकती है।

वैकल्पिक उपाय— यदि प्रतिवादी हिरासत या कारावास के लिए वैध औचित्य देता है तो न्यायालय द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी नहीं की जा सकती है। हालाँकि, वैकल्पिक उपाय के मामले में, आवेदक को अभी भी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने का अधिकार है। आवेदक के पास वैकल्पिक उपाय की उपलब्धता के आधार पर इसे अस्वीकार नहीं किया जाता है।

सबूत का बोझ— सबूत का भार व्यक्ति या प्राधिकारी पर होता है कि वह न्यायालय को यह संतुष्टि दे कि व्यक्ति की हिरासत या कारावास कानूनी आधार पर किया गया था। और यदि बंदी यह आरोप लगाता है कि कारावास दुर्भावनापूर्ण था और व्यक्ति को हिरासत में लेने वाले प्राधिकारी के अधिकार क्षेत्र से बाहर था, तो सबूत का भार बंदी पर होता है।

प्रादेशिक अधिकार क्षेत्र— भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत, सर्वोच्च न्यायालय को भारत के प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के भीतर और बाहर सभी प्राधिकरणों पर अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 226 के तहत उच्च न्यायालय को उस मामले से निपटने का अधिकार है जब उच्च न्यायालय का उस प्राधिकरण पर नियंत्रण हो और कार्रवाई का संभावित कारण उत्पन्न हो।

आपातकालीन उद्घोषणा के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका— आपातकालीन उद्घोषणा के दौरान बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका को बनाए रखा जा सकता है, क्योंकि 1978 में 44वें संशोधन के बाद यह कहा गया था कि अनुच्छेद 20 और 21 के तहत निहित मौलिक अधिकारों को निलंबित नहीं किया जा सकता है। और इन अधिकारों के प्रवर्तन के लिए, रिट याचिका अदालत में दायर की जा सकती है।

अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट जबलपुर बनाम शिव कांत शुक्ला 1976 एससी 1207 इस मामले को बंदी प्रत्यक्षीकरण मामले के रूप में भी जाना जाता है और यह जारी करने के आधार और इस रिट के व्यवहार्यता पहलू पर आधारित

था। यह पूरा मामला उस स्थिति के इर्द-गिर्द घूमता है जब आपातकाल की घोषणा की गई थी और यह सवाल उठाया गया था कि क्या इस स्थिति में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट बनाए रखने योग्य है या नहीं। यह माना गया कि जैसा कि लिवरसिज बनाम एंडरसन के मामले में आपातकाल के दौरान सभी अधिकार निलंबित कर दिए गए थे, वैसा ही इस मामले में भी माना गया जहां राज्य के पास आपातकालीन स्थिति में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत निहित अधिकारों, विशेष रूप से जीवन के अधिकार को रोकने की शक्ति है। इस निर्णय को भारतीय इतिहास का सबसे काला दिन माना गया।

शीला बारसे बनाम महाराष्ट्र राज्य 1983 एससीसी 96 इस मामले में, लॉकअप में मारपीट की शिकार महिला कैदियों की स्थिति के बारे में सर्वोच्च न्यायालय को एक पत्र लिखा गया था और इस स्थिति के बारे में वादी द्वारा रिट याचिका दायर की गई थी, जो एक मानवाधिकार कार्यकर्ता है। न्यायालय द्वारा स्थिति और वादी द्वारा लगाए गए आरोपों की जांच करने के लिए एक जांच अधिकारी भेजा गया था। यह पाया गया कि आरोप सही थे। यह माना गया कि यदि हिरासत में लिया गया या बंद किया गया व्यक्ति रिट के लिए आवेदन नहीं कर सकता है, तो कोई अन्य व्यक्ति उसकी ओर से इसे दायर कर सकता है, जिसने लोकस स्टैंडी दृष्टिकोण को रद्द कर दिया।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 1980 एआईआर 1579 इस मामले में न्यायालय ने माना कि बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका न्यायालय में न केवल कैदी की गलत या अवैध हिरासत के लिए बल्कि उसकी हिरासत के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा किसी भी तरह के दुर्व्यवहार और भेदभाव से उसकी सुरक्षा के लिए भी दायर की जा सकती है। इस प्रकार याचिका गैरकानूनी हिरासत के लिए दायर की जा सकती है और हिरासत के तरीके की जांच की जा सकती है।

नीलाबती बेहरा बनाम उड़ीसा राज्य इस मामले में याचिकाकर्ता के बेटे को उड़ीसा पुलिस पूछताछ के लिए ले गई थी। उसे खोजने के लिए किए गए सभी प्रयास व्यर्थ साबित हुए। इसलिए अदालत में बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका दायर की गई। याचिका के लंबित रहने के दौरान याचिकाकर्ता के बेटे का शव रेलवे ट्रैक पर मिला। याचिकाकर्ता को 1,50,000 रुपये का मुआवजा दिया गया।

कानू सान्याल बनाम जिला मजिस्ट्रेट दार्जिलिंग एवं अन्य 1974 एआईआर 510 इस मामले में, यह माना गया कि शव को अदालत के समक्ष पेश करने की पारंपरिक पद्धति का पालन करने के बजाय मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए हिरासत की वैधता पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। इस मामले में मुख्य रूप से मामले की प्रकृति और दायरे पर ध्यान केंद्रित किया गया और कहा गया कि यह रिट एक प्रक्रियात्मक रिट है न कि एक मूल रिट।

ए.के. गोपालन बनाम मद्रास राज्य इस मामले में, निवारक निरोध अधिनियम की संवैधानिक वैधता के आधार पर जांच की गई। यदि कोई विधानमंडल किसी व्यक्ति को उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता से वंचित करता है, तो उसे पहले ऐसा कानून बनाने के लिए पर्याप्त रूप से सक्षम होना चाहिए। यदि निरोध का समर्थन करने वाला कानून गैरकानूनी है, तो उसे गैरकानूनी माना जाता है। व्यक्ति को न्यायालय जाने का अधिकार है। बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका के लिए आवेदन स्वीकार करने या अस्वीकार करने के मामले में कोई व्यक्ति उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है।

प्रश्न न0 3— अपकृत्य के सम्बन्ध में राज्य के दायित्व की विवेचना कीजिए संक्षिप्त में कीजिए। प्रभुता सम्पन्न कार्य एवं प्रभुताविहीन कार्यो अन्तर संक्षिप्त रूप में कीजिए।

उत्तर— संप्रभु प्रतिरक्षा सरकार या उसके प्रतिनिधियों द्वारा किए गए गलत कामों के लिए दिया जाने वाला तर्क है। जाहिर है, ये सार्वजनिक नीति के आधार पर हैं। नतीजतन, भले ही कार्रवाई योग्य दावे के सभी तत्व मौजूद हों, इस तर्क को देकर देयता को रोकना संभव है। संप्रभु प्रतिरक्षा का सिद्धांत ब्रिटिश न्यायशास्त्र से प्राप्त कॉमन लॉ के सिद्धांत पर केंद्रित है जिसके अनुसार राजा कोई गलत काम नहीं करता है और उस पर व्यक्तिगत लापरवाही या कदाचार का आरोप नहीं लगाया जा सकता है, और इस तरह उसे अपने सेवकों की लापरवाही या कदाचार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। इस सिद्धांत का एक और हिस्सा यह है कि किसी राज्य पर उसकी अपनी अदालतों में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है और इसे संप्रभुता का एक तत्व माना जाता है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य से लेकर हाल ही तक भारतीय न्यायालयों में यह सिद्धांत बदलता रहा। जब क्षतिपूर्ति के लिए कोई वैध दावा न्यायालयों के समक्ष लाया जाता है और उसे पुराने कानून द्वारा खारिज कर दिया जाता है, तो जाहिर है कि उसकी कोई वैधता नहीं होती, आक्रोश और स्पष्टीकरण के लिए अनुरोध होना स्वाभाविक है। वैध दावों को पराजित न होने देने के लिए भारतीय न्यायालय संप्रभु कार्यों के दायरे को छोटा करते रहे ताकि पीड़ित क्षतिपूर्ति प्राप्त कर सकें। भारत के विधि आयोग ने भी अपनी पहली रिपोर्ट में इस पुराने सिद्धांत को समाप्त करने का सुझाव दिया था। हालाँकि इस सिद्धांत को समाप्त करने के लिए मसौदा विधेयक कई कारणों से कभी पारित नहीं हुआ, और इसलिए इस सिद्धांत को भारतीय संविधान के अनुसार एकीकृत करने का निर्णय न्यायाधीश पर छोड़ दिया गया।

राज्य के संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्य

राज्य के संप्रभु कार्यों को उन कार्यों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिनके निष्पादन के लिए राज्य न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी नहीं है। ये कार्य मुख्य रूप से देश की रक्षा, देश के सशस्त्र बलों के रखरखाव और क्षेत्र में शांति बनाए रखने से संबंधित हैं। ये कार्य केवल बाहरी संप्रभुता के लिए राज्य द्वारा किए जा सकते हैं और

इसीलिए वे सामान्य सिविल न्यायालयों के अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं हैं और मुख्य रूप से अविभाज्य कार्य हैं। लेकिन इसके अलावा, राज्य के कई संप्रभु कार्य हैं जो मुख्य रूप से अविभाज्य नहीं हैं जिनमें कराधान, कानून और व्यवस्था के रखरखाव सहित पुलिस कार्य, विधायी कार्य, कानून और नीतियों का प्रशासन और क्षमा प्रदान करना शामिल हैं।

जबकि गैर-संप्रभु कार्य वे कार्य हैं जो एक सामान्य सिविल न्यायालय के अधिकार क्षेत्र में आते हैं और यदि राज्य कोई गलत कार्य करता है या अनुबंध का उल्लंघन करता है, तो वह किए गए गलत कार्य के लिए उत्तरदायी होगा। लेकिन आज, राज्य के संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करना बहुत मुश्किल हो गया है। **पेनिनसुलर एंड ओरिएंटल स्टीम नेविगेशन कंपनी बनाम सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इंडिया के मामले के अनुसार**, अदालत ने पहली बार संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्यों के बीच अंतर पर विचार किया। इसने कहा कि राज्य का सचिव अपने संप्रभु कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगा और केवल वाणिज्यिक कार्यों के लिए उत्तरदायी होगा। इस फैसले से अदालत को राज्य के कार्यों को समझने और व्याख्या करने में मदद मिली जब दायित्व का प्रश्न उठा। लेकिन यह तय करने के लिए कोई स्थापित प्रोटोकॉल या मानदंड नहीं था कि कौन सा कार्य संप्रभु है और कौन सा गैर-संप्रभु।

राज्य के संप्रभु और गैर-संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करने वाले महत्वपूर्ण निर्णय—राज्य द्वारा किए जाने वाले कार्यों को समझने तथा राज्य के संप्रभु तथा गैर-संप्रभु कार्यों के बीच अंतर करने के लिए इनका उपयोग कैसे किया जा सकता है, यह समझने के लिए न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित निर्णय दिए गए हैं—

वैधानिक कर्तव्य का पालन—एक विशेष मापदंड है जिसके आधार पर न्यायालय यह तय कर सकता है कि कोई कार्य संप्रभु कार्य के अंतर्गत आता है या नहीं। शिवभजन दुर्गा प्रसाद बनाम राज्य सचिव के मामले में, जिसमें एक मुख्य कांस्टेबल को गिरफ्तार किया गया और उस पर मुकदमा चलाया गया। बाद में उसे बरी कर दिया गया। लेकिन याचिकाकर्ता ने राज्य के सचिव पर यह कहते हुए मुकदमा दायर किया कि वह कांस्टेबल द्वारा किए गए गलत काम के लिए उत्तरदायी है। न्यायालय ने माना कि सचिव कांस्टेबल के कृत्यों के लिए उत्तरदायी नहीं था।

सार्वजनिक पथ का रखरखाव—राज्य जन कल्याण के लिए सार्वजनिक मार्गों का रखरखाव करता है और इसमें कोई वाणिज्यिक उद्देश्य शामिल नहीं है। सार्वजनिक पथों का निर्माण और उनका रखरखाव संप्रभु कार्यों का एक हिस्सा है। मैकइनर्नी बनाम राज्य सचिव के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि सार्वजनिक सड़क के रखरखाव में, राज्य ने कोई वाणिज्यिक संचालन नहीं किया और इस प्रकार, सरकार द्वारा निर्मित सार्वजनिक सड़क के खंभे के संपर्क में आने से वादी को हुए किसी भी नुकसान के लिए वह उत्तरदायी नहीं है।

सैन्य सड़क का रखरखाव—यह भी सरकार के महत्वपूर्ण संप्रभु कार्यों में से एक है। सैन्य सड़क का रखरखाव सरकार द्वारा रक्षा के उद्देश्य से किया जाता है। **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम कॉकक्राफ्ट के मामले में**, वादी को नौकर की लापरवाही के कारण चोट लगी थी। नौकर ने सैन्य सड़क पर बजरी का ढेर छोड़ दिया, जिस पर कोई नहीं चल रहा था। न्यायालय ने माना कि सरकार ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होगी क्योंकि सैन्य सड़क का रखरखाव एक संप्रभु कार्य है।

युद्ध के दौरान माल की जब्ती—**केसोराम पोद्दार एंड कंपनी बनाम सचिव के प्रसिद्ध मामले** में युद्ध के दौरान माल की कमान संभालना एक संप्रभु कार्य कहा गया था। मामले के तथ्यों के अनुसार, एक कंपनी ने राज्य के सचिव पर हर्जाना वसूलने के लिए मुकदमा दायर किया क्योंकि प्रतिवादी द्वारा खरीदे गए कुछ सामानों की डिलीवरी लेने और भुगतान करने में विफल रहने के कारण कंपनी को भारी नुकसान हुआ। न्यायालय ने माना कि चूंकि माल और डिलीवरी का यह आदेश माल की कमान संभालने के अंतर्गत आता है जो एक संप्रभु कार्य है, इसलिए इस तरह के दावे को खारिज कर दिया जाता है।

रक्षा हेतु प्रशिक्षण—सरकार आम जनता की सुरक्षा के लिए प्रशिक्षण प्रदान करती है और इसीलिए यह एक संप्रभु कार्य भी है। **सेक्रेटरी ऑफ स्टेट बनाम नागेराव लिम्बाजी के मामले में**, जहां वादी ने रक्षा के लिए अभ्यास करने वाले क्षेत्र के पास विस्फोट के कारण अपनी उंगली के नुकसान के लिए राज्य के सचिव पर हर्जाने के लिए मुकदमा दायर किया था, अदालत ने माना कि बमबारी अभ्यास और रक्षा के लिए अन्य प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं दी जाती हैं, ये राज्य के संप्रभु कार्यों के अंतर्गत आते हैं क्योंकि ऐसे कार्य सरकार द्वारा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं किए जाते हैं, बल्कि ये देश और उसके नागरिकों के कल्याण और सुरक्षा के लिए किए जाते हैं।

गिरफ्तारी और नजरबंदी—कानून और व्यवस्था बनाए रखने में गिरफ्तारी और हिरासत का कर्तव्य शामिल है। जब कोई कार्य सद्भावनापूर्वक किया जाता है तो यह राज्य का संप्रभु कार्य होता है। उन्होंने **एमए कादोर जैलानी बनाम राज्य सचिव के मामले** में राज्य सचिव के खिलाफ हर्जाने के बारे में शिकायत दर्ज कराई, जहां कुछ पुलिस अधिकारियों ने वादी को गलत तरीके से हिरासत में लिया और कैद कर लिया। यह माना गया कि, जब तक गलत काम या तो आदेश द्वारा या उसकी ओर से नहीं किया गया था और बाद में इसे स्वीकार या अपनाया गया था, तब तक सरकार अपने अधिकारियों द्वारा किए गए गलत कामों के लिए जिम्मेदार नहीं थी। इसी तरह, गुरुचरण कौर बनाम मद्रास प्रांत के मामले में, डीएसपी ने पुलिस उपनिरीक्षक को स्टेशन पर जाने और अन्य महाराजा को स्टेशन छोड़ने से रोकने का निर्देश दिया। ट्रेन के आने पर, उपनिरीक्षक ने सद्भावना के तहत, हालांकि गलत धारणा के तहत काम करते हुए, फैसला किया कि उसे महारानी को हिरासत में लेना है, न केवल महारानी को ट्रेन में चढ़ने से रोका बल्कि लोहे की बाड़ में गेट भी बंद कर दिया और उसके पास दो कांस्टेबलों को तैनात किया। महारानी

और उनकी बेटी ने गलत तरीके से कारावास के बारे में शिकायत दर्ज कराई। यह माना गया कि सरकार को अपने वैधानिक कर्तव्य की पूर्ति में सद्भावनापूर्वक किए गए पुलिस आचरण के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जाना चाहिए। इस प्रकार, यदि सरकारी कर्मचारी का अन्यायपूर्ण हस्तक्षेप अच्छे विवेक से किया जाता है, तो राज्य जिम्मेदार नहीं होगा।

सैन्य कर्तव्य का पालन—भारत संघ बनाम हरबंस सिंह के मामले में, जहाँ सैन्य सेवा में लगे भारत के सैन्य विभाग के एक ट्रक चालक की लापरवाही और असावधानी के परिणामस्वरूप, वादी के पिता को सेवारत सैन्य कर्मियों को भोजन प्रदान करते समय टक्कर मार दी गई और कुचल दिया गया। राज्य को उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है क्योंकि चालक का कार्य संप्रभु कार्य करते समय किया गया था।

कानून और व्यवस्था बनाए रखना—उड़ीसा राज्य बनाम पद्मलोचन के मामले में दिए गए तथ्यों के अनुसार, उड़ीसा सैन्य पुलिस ने अपनी मांगों को लेकर जिला न्यायालय के सामने एकत्रित भीड़ पर लाठीचार्ज किया। यह दावा किया गया कि पुलिस कर्मियों ने मजिस्ट्रेट या अन्य पुलिस अधिकारियों के आदेश के बिना भीड़ के सदस्यों पर हमला किया, जिसके परिणामस्वरूप वादी को चोटें आईं। उसने खुद को लगी चोटों के लिए राज्य के खिलाफ शिकायत दर्ज कराई। निचली अदालत ने वादी के पक्ष में फैसला सुनाया लेकिन, अपील पर, उच्च न्यायालय ने माना कि पुलिस अधिकारियों ने बिना प्राधिकरण के अपने कर्तव्यों के निष्पादन में कदाचार किया और यह गैरकानूनी कृत्य को सौंपे गए संप्रभु कार्य की क्षमता से छूट नहीं देता है और आगे माना कि वादी को जो भी चोटें आईं

राजस्व संग्रहण—कुप्पन्ना चेट्टी एंड कंपनी बनाम अनंतपुर के कलेक्टर के मामले में, तहसीलदार ने मद्रास राजस्व वसूली अधिनियम के तहत चल माल को गलत तरीके से कुर्क किया और इस वजह से वादी को भारी नुकसान हुआ। न्यायालय ने माना कि चूंकि आय का संग्रह एक संप्रभु या विशुद्ध रूप से राज्य की गतिविधि थी, अपने वैधानिक कर्तव्यों का उल्लंघन करते हुए, राज्य ऐसी गतिविधि के दौरान किसी सरकारी कर्मचारी द्वारा किए गए किसी भी अपकार के लिए उत्तरदायी नहीं था। इसी तरह आंध्र प्रदेश राज्य बनाम अंकन्ना के मामले में भी इसे बरकरार रखा गया था। मामले के तथ्य के अनुसार, वादी की एक बैलगाड़ी को राजस्व वसूली अधिनियम के तहत भूमि राजस्व की वसूली के लिए आय अधिकारियों द्वारा गैरकानूनी और दुर्भावनापूर्ण तरीके से रोक लिया गया था। न्यायालय ने कहा कि भूमि आय का संग्रह एक संप्रभु गतिविधि थी और राज्य अपने कर्मचारियों के दुर्भावनापूर्ण कृत्य के लिए जिम्मेदार नहीं था, जब वह कार्य किसी कानून के तहत किया गया था

उपरोक्त मामले के कानूनों के माध्यम से, यह व्याख्या की जा सकती है कि राज्य को आय संग्रह आदि जैसे संप्रभु कार्यों के क्षेत्र में अपने विधायी कर्तव्यों के कथित अभ्यास में किसी सार्वजनिक अधिकारी द्वारा किए गए किसी भी गलत कार्य के लिए जवाबदेह नहीं ठहराया जा सकता है।

न्याय का प्रशासन—न्याय प्रशासन, जो संप्रभु कार्यों के अभ्यास में राज्य के कार्यों में से एक है, ऐसे व्यक्तियों को पहचानना और कानून के अनुसार उनके परीक्षण का आदेश देना है। यदि लोग न्याय प्रशासन का निर्वहन करते समय दोषी पाए जाते हैं, तो न्यायिक कर्तव्यों के ढांचे को ठीक से निष्पादित नहीं किया जा सकता है। यह उस व्यक्ति पर लागू होता है जिसके न्यायिक अधिकारी के रूप में कार्यों को उसकी न्यायिक क्षमता में माना जा सकता है। सरकार के एक एजेंट के पास न्यायिक और कार्यकारी दोनों शक्तियाँ होंगी। केवल तभी जब वह न्याय प्रशासन के दौरान न्यायिक कार्यों का निर्वहन करता है, तो उसे दायित्व से बख्शा जाएगा। भले ही उसने अपनी कार्यकारी क्षमता में कार्य करते समय झूठे कारावास का अपराध किया हो, वह संप्रभु प्रतिरक्षा का दावा नहीं कर सकता।

देशपूर्ण अभियोजन—महाराजा बोस बनाम गवर्नर—जनरल इन काउंसिल के मामले में याचिकाकर्ता ने गवर्नर—जनरल इन काउंसिल के खिलाफ झूठी गिरफ्तारी और नुकसान के लिए दुर्भावनापूर्ण अभियोजन का मुकदमा दायर किया था। मामले के तथ्यों के अनुसार, शिकायतकर्ता प्रतिवादी की रेलवे से हावड़ा से पटना की यात्रा कर रहा था। वह ट्रेन के इंटरक्लास डिब्बे में चढ़ गया। रात के करीब 1 बजे, जब उक्त ट्रेन आसनसोल रेलवे स्टेशन पर पहुंची, तो तीन भारतीय सैनिकों ने जबरन वादी की सीट पर कब्जा कर लिया। शिकायतकर्ता ने इस पर आपत्ति जताई और उसने दो रेलवे कर्मचारियों को इसके बारे में बताया। हालांकि, उन्होंने कोई कार्रवाई नहीं की।

प्रतिवादी के नौकर, जिनके विरुद्ध वादी ने पहले शिकायत की थी, ने पहुंचकर काफी पूछताछ की तथा सिपाहियों से इसे खाली करने को कहा। जब ड्यूटी असिस्टेंट स्टेशन पर इस तरह की चर्चा चल रही थी, तब स्टेशन मास्टर ने डिब्बे में पहुंचकर वादी पर चेन खींचने का आरोप लगाया तथा गंदी भाषा का प्रयोग कर उसे अपमानित किया तथा उसके साथ गंभीर मारपीट की। फिर कभी सुनवाई किए बिना ही वादी को डिब्बे से बाहर खींच लिया गया।

राज्य का प्रतिनिधिक दायित्व और अपकृत्य दायित्व—प्रतिनिधि दायित्व एक प्रकार का कठोर, द्वितीयक दायित्व है जो एजेंसी के सामान्य कानून सिद्धांतों के तहत उत्पन्न होता है, अर्थात् रेस्पोंडेंट सुपीरियर जिसका अर्थ है अपने अधीनस्थ के कार्यों के लिए वरिष्ठ की जिम्मेदारी, या, व्यापक अर्थ में, किसी तीसरे व्यक्ति की जिम्मेदारी जिसके पास उल्लंघनकर्ता की गतिविधियों को नियंत्रित करने का 'अधिकार, क्षमता या कर्तव्य' है। जिम्मेदारी अपराधी पर नहीं बल्कि उस व्यक्ति पर डाली जाती है जिसे अपराधी को नियंत्रित करना चाहिए। अधिकारियों की अपनी गलतियों के लिए नैतिक जिम्मेदारी अधिक प्रचलित हो गई है, जिसमें शासक और संबंधित व्यक्ति के बीच समानता का संकेत देने वाले प्रमाण हैं।

केवल तभी जब राजा को किसी सार्वजनिक अधिकारी की जिम्मेदारी संभालना आवश्यक लगता था, तब इसका उपयोग राज्य के खजाने से शुल्क का भुगतान करने के लिए किया जाता था। धर्म को राजा और प्रजा दोनों पर

बाध्यकारी नागरिक कानून के रूप में देखा जाता था। हिंदू कानून और मुस्लिम कानून दोनों में जहाँ तक संभव था, शासक स्वयं न्याय करते थे और बाकी का काम असाधारण रूप से विद्वान, ईमानदार न्यायाधीशों द्वारा किया जाता था। हाल ही में सबसे उल्लेखनीय घटना न्यायालय की यह घोषणा रही है कि उसके पास मुआवजा देने का अधिकार क्षेत्र है।

भारत में राज्य दायित्व को संविधान के अनुच्छेद 300(1) से आसानी से समझा जा सकता है, जो मूल रूप से भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 176 के माध्यम से आया था। इसका पता भारत सरकार अधिनियम, 1915 की धारा 32 से लगाया जा सकता है, जिसका मूल भारत सरकार अधिनियम, 1858 की धारा 65 में देखा जा सकता है। इसलिए यह देखा जाएगा कि 1858 के अधिनियम से शुरू होने वाले विधान की श्रृंखला के अनुसार, प्रत्येक राज्य की भारत सरकार और संविधान ईस्ट इंडिया कंपनी के उत्तराधिकार के अनुसार हैं। दूसरे शब्दों में, सरकार की जिम्मेदारी वही है जो 1858 से पहले ईस्ट इंडिया कंपनी की थी।

प्रश्न न0 4— शक्ति पृथक्करण से आप समझते हैं भारत में शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को किस प्रकार से लागू किया किया है?

उत्तर— सत्ता का पृथक्करण लंबे समय से एक विवादास्पद मुद्दा रहा है। सरकार में, यह महत्वपूर्ण है। विवाद का एक और मुद्दा यह है कि यह हमारे संविधान में शामिल है या नहीं। इस शोध पत्र का मुख्य लक्ष्य शक्तियों के पृथक्करण को परिभाषित करना है। यह महत्वपूर्ण क्यों है? किस प्रकार के संविधान मौजूद हैं, और हमारे पास कौन सा है? क्या हमारे संविधान में जाँच और संतुलन प्रणाली है? न्यायपालिका की स्वतंत्रता का क्या महत्व है?

शक्तियों के पृथक्करण के मॉटेस्क्यू के सिद्धांत का अमेरिका में कैसे उपयोग किया जाता है, और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या यह हमारे संविधान में निहित है या नहीं? चूंकि इस शोध का लक्ष्य उन सामान्य व्यक्तियों को शिक्षित करना और जागरूक करना है जो मानते हैं कि कानून जटिल है और आम लोगों के लिए नहीं है, इसलिए अत्यंत सरल अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है।

“जब विधायी और कार्यकारी शक्तियाँ एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय या मजिस्ट्रेट में एकजुट होती हैं, तो कोई स्वतंत्रता नहीं हो सकती। फिर, अगर न्यायिक शक्ति विधायी और कार्यकारी शक्तियों से अलग नहीं होती है, तो कोई स्वतंत्रता नहीं है। जहाँ यह विधायी शक्ति के साथ जुड़ती है, वहाँ विषय का जीवन और स्वतंत्रता मनमाने नियंत्रण के अधीन हो जाएगी, क्योंकि तब न्यायाधीश विधायक होगा। जहाँ यह कार्यकारी शक्ति के साथ जुड़ती है, वहाँ न्यायाधीश हिंसा और उत्पीड़न के साथ व्यवहार कर सकता है। अगर एक ही व्यक्ति या एक ही निकाय, चाहे कुलीनों का हो या लोगों का, उन तीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिए, कानून बनाने, सार्वजनिक प्रस्तावों को निष्पादित करने और व्यक्तियों के मामलों की सुनवाई करने के लिए, सब कुछ खत्म हो जाएगा।”

वेड और फिलिप्स शक्तियों के पृथक्करण की तीन परिभाषाएँ देते हैं—

(1) सरकार की एक शाखा को दूसरे के कर्तव्यों का पालन नहीं करना चाहिए, जैसे मंत्रियों को विधायी अधिकार देना;

(2) सरकार की एक शाखा को दूसरी शाखा के कर्तव्यों के निर्वहन पर नियंत्रण या हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, जैसे कि जब न्यायपालिका कार्यपालिका शाखा से अलग हो या जब मंत्री संसद के प्रति जवाबदेह न हों;

(3) एक ही व्यक्ति को सरकार की तीन शाखाओं में से एक से अधिक में सेवा नहीं करनी चाहिए, जैसे कि संसद में मंत्री के रूप में बैठना।

शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत में सरकारी शक्तियों के संरचनात्मक वर्गीकरण के तीन सूत्र शामिल हैं—

(1) एक व्यक्ति को सरकार की तीन शाखाओं में से एक से ज्यादा में काम नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए, मंत्रियों को हाउस ऑफ कॉमन्स में बैठने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(2) किसी सरकारी संस्था को किसी अन्य सरकारी संस्था के काम में हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

(3) सरकार के एक अंग का कार्य दूसरे अंग द्वारा नहीं किया जाना चाहिए।

इसी प्रकार जेम्स मेडिसन ने कहा है कि “इस बात की तुलना में कोई अन्य राजनैतिक सत्य इतने अधिक अन्तर्निहित महत्व का या स्वतन्त्रता के उद्बुद्ध पोषक अधिकार के रूप में मान्य नहीं है कि सभी शक्तियों, विधायी, कार्यपालिका और न्यायपालिका का एक ही हाथों में केन्द्रीयकरण उचित रूप में ही अत्याचार तन्त्र की दूसरी परिभाषा है।”

शक्ति-पृथक्करण के सिद्धान्त का विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। इंग्लैंड का संविधान परम्पराओं पर देन है। यहाँ का संविधान अलिखित संविधान है। अतः अमेरिका के संविधान से पृथक् अस्तित्व रखने वाला संविधान है अतः शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त प्रारम्भ में यहाँ प्रभावहीन हो रहा है।

भारत में शक्ति-पृथक्करण का सिद्धान्त— भारत में शक्तियों के बजाय कार्यों के पृथक्करण का पालन किया जाता है। अमेरिका के विपरीत भारत में शक्तियों के पृथक्करण की अवधारणा का कड़ाई से पालन नहीं किया जाता है। हालाँकि जाँच और संतुलन की एक प्रणाली इस तरह से लागू की गई है कि न्यायपालिका के पास विधायिका द्वारा पारित किसी भी असंवैधानिक कानून को रद्द करने की शक्ति है। आज, अधिकांश संवैधानिक प्रणालियों में शास्त्रीय अर्थों में विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों का सख्त पृथक्करण नहीं है क्योंकि यह अव्यावहारिक है। भारत का संविधान निहित तरीके से शक्तियों के पृथक्करण के विचार को अपनाता है। शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को

उसके पूर्ण रूप में मान्यता देने वाला कोई स्पष्ट प्रावधान न होने के बावजूद संविधान सरकार के तीन अंगों के बीच कार्यों और शक्तियों के उचित पृथक्करण के लिए प्रावधान करता है।

सरकार के तीन अंग-

विधायिका- विधायिका का मुख्य कार्य कानून बनाना है। यह अन्य दो अंगों कार्यपालिका और न्यायपालिका के कामकाज का आधार है। इसे कभी-कभी तीनों अंगों में प्रथम स्थान भी दिया जाता है क्योंकि जब तक कानून नहीं बनाए जाते, तब तक कानूनों का क्रियान्वयन और अनुप्रयोग नहीं हो सकता।

कार्यपालिका- कार्यपालिका वह अंग है जो विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों को लागू करती है और राज्य की इच्छा को लागू करती है। यह सरकार का प्रशासनिक प्रमुख है। प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री और राष्ट्रपति/राज्यपाल सहित मंत्री कार्यपालिका का हिस्सा होते हैं।

न्यायपालिका- न्यायपालिका सरकार की वह शाखा है जो कानून की व्याख्या करती है विवादों का निपटारा करती है और सभी नागरिकों को न्याय प्रदान करती है। न्यायपालिका को लोकतंत्र का प्रहरी और संविधान का संरक्षक माना जाता है। इसमें सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय जिला एवं अन्य अधीनस्थ न्यायालय शामिल हैं।

शक्तियों का पृथक्करण क्या है?

सख्त अर्थ में शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत बहुत कठोर है।

अवधारणा की पृष्ठभूमि- यह अवधारणा पहली बार चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में अरस्तू के कार्यों में देखी गई थी जिसमें उन्होंने सरकार की तीन एजेंसियों को महासभाएँ सार्वजनिक अधिकारी और न्यायपालिका के रूप में वर्णित किया था। प्राचीन रोमन गणराज्य में भी इसी प्रकार की अवधारणा अपनाई गई थी। आधुनिक समय में यह 18वीं शताब्दी के फ्रांसीसी दार्शनिक मोंटेस्क्यू थे जिन्होंने अपनी पुस्तक डी ल'एस्पिरिट डेस लॉइस यद स्पिरिट ऑफ लॉज्डम में इस सिद्धांत को अत्यधिक व्यवस्थित और वैज्ञानिक बनाया। उनका कार्य अंग्रेजी प्रणाली की समझ पर आधारित है जो सरकार के तीन अंगों के बीच अधिक अंतर की ओर झुकाव दिखा रही थी।

इस विचार को जॉन लॉक ने आगे विकसित किया।

पृथक्करण का उद्देश्य- इसका उद्देश्य किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह द्वारा सत्ता के दुरुपयोग को रोकना है। यह समाज को राज्य की मनमानीएँ तर्कहीन और अत्याचारी शक्तियों से बचाएगा सभी की स्वतंत्रता की रक्षा करेगा और प्रत्येक कार्य को राज्य के उपयुक्त अंगों को उनके संबंधित कर्तव्यों के प्रभावी निर्वहन के लिए आवंटित करेगा।

शक्तियों के पृथक्करण का अर्थ शक्तियों का पृथक्करण शासन तंत्र को तीन शाखाओं में विभाजित करता है अर्थात् विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका। हालाँकि अलग-अलग लेखक अलग-अलग परिभाषाएँ देते हैं लेकिन सामान्य तौर पर हम इस सिद्धांत की तीन विशेषताएँ बता सकते हैं। प्रत्येक अंग में अलग-अलग क्षमता वाले व्यक्ति होने चाहिए अर्थात् एक अंग में कार्य करने वाला व्यक्ति दूसरे अंग का हिस्सा नहीं होना चाहिए।

एक अंग को दूसरे अंगों के कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। एक अंग को दूसरे अंग का कार्य नहीं करना चाहिए य उन्हें केवल अपने कार्य तक ही सीमित रहना चाहिए। इस प्रकार ये व्यापक क्षेत्र निर्धारित हैं लेकिन भारत जैसे जटिल देश में अक्सर एक शाखा द्वारा दूसरी शाखा पर संघर्ष और अतिक्रमण होता रहता है।

सिद्धांत का महत्व- यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि लोकतांत्रिक व्यवस्था में निरंकुशता न घुस पाए। यह नागरिकों को मनमाने शासन से बचाता है। इसलिए शक्तियों के पृथक्करण सिद्धांत के महत्व को इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है-

- (1) निरंकुशता को दूर रखता है
- (2) व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा करता है
- (3) कुशल प्रशासन बनाने में मदद करता है
- (4) न्यायपालिका की स्वतंत्रता कायम है
- (5) विधायिका को मनमाने या असंवैधानिक कानून बनाने से रोकता है

भारत में शक्तियों के पृथक्करण की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के तहत-

विधानमंडल- संसद यलोकसभा और राज्यसभा राज्य विधान निकाय

कार्यपालिका- केंद्रीय स्तर पर. राष्ट्रपति, राज्य स्तर पर. राज्यपाल

न्यायपालिका- सर्वोच्च न्यायालय उच्च न्यायालय और अन्य सभी अधीनस्थ न्यायालय

संविधान के कुछ अनुच्छेद-

अनुच्छेद 50: यह अनुच्छेद राज्य को न्यायपालिका को कार्यपालिका से अलग करने का दायित्व देता है। लेकिन चूंकि यह राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत आता है इसलिए यह लागू नहीं होता है।

अनुच्छेद 53 और 154: यह प्रदान करता है कि संघ और राज्य की कार्यकारी शक्ति राष्ट्रपति और राज्यपाल के पास निहित होगी और वे नागरिक और आपराधिक दायित्व से उन्मुक्ति का आनंद लेंगे।

अनुच्छेद 121 और 211: ये प्रदान करते हैं कि विधायिकाएँ सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के आचरण पर चर्चा नहीं कर सकती हैं। वे ऐसा केवल महाभियोग के मामले में कर सकते हैं।

अनुच्छेद 123: राष्ट्रपति देश के कार्यकारी प्रमुख होने के नाते कुछ शर्तों के तहत विधायी शक्तियाँ यथावशां को लागू करना का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं।

अनुच्छेद 361: राष्ट्रपति और राज्यपाल अदालती कार्यवाही से उन्मुक्ति का आनंद लेते हैं।

इसमें नियंत्रण और संतुलन की एक प्रणाली है जिसमें विभिन्न अंग कुछ प्रावधानों द्वारा एक दूसरे पर नियंत्रण लगाते हैं। न्यायपालिका के पास कार्यपालिका और विधायिका के कार्यों की न्यायिक समीक्षा करने की शक्ति है। न्यायपालिका को विधायिका द्वारा पारित किसी भी कानून को रद्द करने का अधिकार है यदि वह अनुच्छेद 13 के अनुसार असंवैधानिक या मनमाना है यदि वह मौलिक अधिकारों का उल्लंघन करता है। यह असंवैधानिक कार्यकारी कार्यों को भी शून्य घोषित कर सकता है। विधायिका कार्यपालिका के कामकाज की भी समीक्षा करती है। यद्यपि न्यायपालिका स्वतंत्र है परंतु न्यायाधीशों की नियुक्ति कार्यपालिका द्वारा की जाती है। संवैधानिक सीमाओं का पालन करते हुए विधायिका निर्णय के आधार में परिवर्तन भी कर सकती है। जाँच और संतुलन सुनिश्चित करते हैं कि कोई भी अंग बहुत ज्यादा शक्तिशाली न बन जाए। संविधान गारंटी देता है कि किसी एक अंग को दी गई विवेकाधीन शक्ति लोकतांत्रिक सिद्धांत के भीतर है।

कार्यात्मक ओवरलैप— विधानमंडल कानून बनाने की शक्तियों का प्रयोग करने के अलावा अपने विशेषाधिकार के उल्लंघन राष्ट्रपति के महाभियोग और न्यायाधीशों को हटाने के मामलों में न्यायिक शक्तियों का प्रयोग भी करता है। कार्यपालिका मुख्य न्यायाधीश और अन्य न्यायाधीशों के पद पर नियुक्तियाँ करके न्यायपालिका के कामकाज को और अधिक प्रभावित कर सकती है। न्यायालय द्वारा अधिकारवाह घोषित कानून को संशोधित करने तथा उसे पुनः वैध बनाने के मामले में विधायिका द्वारा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग। अपने सदस्यों को अयोग्य ठहराने और न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाने का कार्य करते हुए विधायिका न्यायपालिका के कार्यों का निर्वहन करती है। संसद में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अतिक्रमण करने पर विधानमंडल दंड लगा सकता है यह संसद की शक्तियों और विशेषाधिकारों के अंतर्गत आता है। लेकिन ऐसी शक्ति का प्रयोग करते समय यह हमेशा आवश्यक है कि वह उचित प्रक्रिया के अनुरूप हो। प्रत्येक सरकारी मंत्रालय का प्रमुख विधायिका का सदस्य होता है इस प्रकार कार्यपालिका विधायिका का एक अभिन्न अंग बन जाती है। मंत्रिपरिषद् जिसकी सलाह पर राष्ट्रपति और राज्यपाल कार्य करते हैं विधानमंडल के निर्वाचित सदस्य होते हैं कुछ परिस्थितियों में विधानमंडल में निहित विधायी शक्ति का प्रयोग कार्यपालिका द्वारा किया जा सकता है। यदि राष्ट्रपति या राज्यपाल विधानमंडल के सत्र में न होने पर और यह संतुष्ट हो कि ऐसी परिस्थितियाँ विद्यमान हैं जिनमें तत्काल कार्रवाई आवश्यक है तो वे अध्यादेश जारी कर सकते हैं जिसकी शक्ति संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए अधिनियम के समान होगी। संविधान अनुच्छेद 118 और अनुच्छेद 208 के माध्यम से केंद्र और राज्यों में विधानमंडल को इस संविधान के प्रावधानों के अधीन अपनी-अपनी प्रक्रिया और कामकाज के संचालन को विनियमित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार देता है। कार्यपालिका भी प्रत्यायोजित विधान के तहत कानून बनाने की शक्ति का प्रयोग करती है। न्यायाधिकरण और अन्य अर्ध-न्यायिक निकाय जो कार्यपालिका का हिस्सा हैं न्यायिक कार्य भी करते हैं। प्रशासनिक न्यायाधिकरण जो कार्यपालिका का हिस्सा हैं न्यायिक कार्य भी करते हैं। उच्च प्रशासनिक न्यायाधिकरणों में हमेशा न्यायपालिका का एक सदस्य होना चाहिए। उच्च न्यायपालिका को अधीनस्थ न्यायालयों के कामकाज की निगरानी करने की शक्ति दी गई है। यह अपने आचरण को विनियमित करने वाले कानून और मामलों के निपटान के संबंध में नियम बनाते समय विधायिका के रूप में भी कार्य करता है।

कार्यात्मक ओवरलैपिंग के अलावा, भारतीय प्रणाली में तीन विभागों के बीच कर्मियों के पृथक्करण का भी अभाव है। भारतीय परिदृश्य में संवैधानिक सीमा और विश्वास के सिद्धांतों को लागू करते हुए एक ऐसी प्रणाली बनाई गई है जहाँ कोई भी अंग उन कार्यों या शक्तियों को हड़प नहीं सकता है जो किसी अन्य अंग को स्पष्ट या आवश्यक प्रावधान द्वारा सौंपे गए हैं न ही वे संविधान के तहत अपने आवश्यक कार्यों से खुद को वंचित कर सकते हैं।

इसके अलावा, भारत का संविधान स्पष्ट रूप से उक्त सर्वोच्च दस्तावेज से प्राप्त शक्ति के मनमाने या मनमानी उपयोग को रोकने के लिए जाँच और संतुलन की एक प्रणाली प्रदान करता है। हालाँकि ऐसी प्रणाली शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को शिथिल करती प्रतीत होती है लेकिन ऐसी संवैधानिक प्रणाली के न्यायपूर्ण और न्यायसंगत कामकाज को सक्षम करने के लिए यह आवश्यक है।

ऐसी शक्तियाँ देकर, संबंधित अंगों द्वारा संवैधानिक शक्तियों के प्रयोग पर नियंत्रण के लिए एक तंत्र स्थापित किया जाता है। यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि भारतीय संविधान अपनी योजना में शक्तियों के सख्त पृथक्करण का प्रावधान नहीं करता है। इसके बजाय यह सरकार के तीन अंगों से मिलकर एक प्रणाली बनाता है और उन्हें अनन्य और अतिव्यापी दोनों तरह की शक्तियाँ और कार्य प्रदान करता है। इस प्रकार सरकार के तीन अंगों के बीच कार्यों का कोई पूर्ण पृथक्करण नहीं है।

न्यायिक घोषणा

केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य ;1973): इस मामले में सुप्रीम कोर्ट ने माना कि संसद की संशोधन शक्ति संविधान की मूल विशेषताओं के अधीन है। इसलिए मूल विशेषताओं का उल्लंघन करने वाले किसी भी संशोधन को असंवैधानिक घोषित किया जाएगा। **स्वर्ण सिंह केस ;1998):** इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश के राज्यपाल द्वारा एक दोषी को क्षमादान दिए जाने को असंवैधानिक माना।

राम जवाया कपूर बनाम पंजाब राज्य 1955 इस मामले में यह माना गया कि भारतीय संविधान ने वास्तव में शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत को पूर्ण कठोरता से मान्यता नहीं दी है। लेकिन सरकार के विभिन्न भागों या शाखाओं के कार्यों को पर्याप्त रूप से विभेदित किया गया है और परिणामस्वरूप यह बहुत अच्छी तरह से कहा जा सकता है कि हमारा संविधान राज्य के एक अंग या भाग द्वारा उन कार्यों को ग्रहण करने की परिकल्पना नहीं करता है जो अनिवार्य रूप से दूसरे के हैं। **इंदिरा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण 1975** जहां प्रधानमंत्री के चुनाव से संबंधित विवाद सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष लंबित था। वहां यह माना गया कि किसी विशिष्ट विवाद का निपटारा एक न्यायिक कार्य है। जिसे संसद एक संवैधानिक संशोधन शक्ति के तहत भी प्रयोग नहीं कर सकती। इसलिए, जिस मुख्य आधार पर संशोधन को अधिकारहीन माना गया वह यह था कि जब संविधान निकाय ने घोषणा की कि प्रधानमंत्री का चुनाव शून्य नहीं होगा तो उसने एक न्यायिक कार्य किया। जिसे पृथक्करण के सिद्धांत के अनुसार उसे नहीं करना चाहिए था। इस निर्णय के बाद भारतीय संदर्भ में इस सिद्धांत का स्थान थोड़ा स्पष्ट हो गया।

प्रश्न न0 5— लोक निगम पर न्यायिक नियंत्रण की विवेचना कीजिए।

उत्तर— विकसित या विकासशील लोकतंत्र वाले सभी देशों में, मुख्य लक्ष्य एक कुशल और प्रभावी प्रशासनिक प्रणाली प्राप्त करना है। भारत में प्रशासनिक कानून को 20वीं सदी के मध्य में मान्यता दी गई थी। प्रशासनिक कानून न तो विधायी है और न ही न्यायिक, यह एक अर्ध-न्यायिक और अर्ध-विधायी प्रणाली है जो व्यक्तियों और सरकार के बीच संबंधों से संबंधित है।

सरल शब्दों में, यह प्रशासनिक अधिकारियों के कार्यों को नियंत्रित करता है और ऐसे अधिकारियों के संगठन, शक्तियों और कर्तव्यों को निर्धारित करता है। प्रशासनिक कानून संवैधानिक कानून की एक प्रजाति है और यह अपनी शक्तियों का प्रयोग संवैधानिक कानून से परे नहीं कर सकता है। हालाँकि, न्यायपालिका के लिए प्रशासनिक कार्यों और उनकी संवैधानिकता की जाँच करना आवश्यक हो जाता है क्योंकि प्रशासनिक कानून का दायरा अन्य कानूनों की तुलना में व्यापक है। न्यायिक नियंत्रण का मुख्य उद्देश्य प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा की जाने वाली कार्रवाइयों की वैधता के साथ-साथ संवैधानिकता सुनिश्चित करके व्यक्तियों के अधिकारों को प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा शक्तियों के दुरुपयोग से बचाना है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण का दायरा— भारत में, संविधान स्वतंत्र न्यायिक और विधायी शक्तियों का प्रावधान करता है। विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण की व्यवस्था है। भारतीय संविधान में शक्तियों के पृथक्करण की एक प्रभावी और कुशल प्रणाली सुनिश्चित करने के लिए कई प्रावधान शामिल हैं। उदाहरण के लिए— कार्यपालिका सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करती है, लेकिन उसके द्वारा दिए गए दिशा-निर्देशों की सीमाओं के भीतर। और ऐसी नियुक्ति के बाद, कार्यपालिका का न्यायपालिका द्वारा कार्यों के निर्वहन पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता है। इसी तरह, हालाँकि न्यायपालिका के पास अधिकारियों के प्रशासनिक कार्यों को नियंत्रित करने की शक्ति है, लेकिन इस तरह के नियंत्रण का प्रयोग उनकी अपनी इच्छा से नहीं किया जा सकता है, बल्कि इसका प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब राहत मांगी जाए। न्यायिक हस्तक्षेप या नियंत्रण प्रकृति में प्रतिबंधात्मक होता है जो इसके आवेदन के दायरे को सीमित कर देता है।

आम तौर पर, इस तरह का नियंत्रण निम्नलिखित मामलों तक ही सीमित होता है—

अधिकार क्षेत्र का अभाव—जब कोई सार्वजनिक अधिकारी या प्रशासनिक प्राधिकरण अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर कार्य करता है, तो न्यायालय के पास ऐसे कार्य को अधिकार क्षेत्र से बाहर घोषित करने का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए— किसी संगठन में, किसी विशेष प्राधिकरण को कुछ निर्णय या कार्रवाई करने की शक्ति दी जाती है और सक्षम प्राधिकारी के अलावा कोई अन्य प्राधिकरण निर्णय लेने की ऐसी शक्ति का प्रयोग करता है, तो कोई व्यक्ति अधिकार क्षेत्र संबंधी त्रुटि के प्रावधान के तहत न्यायालय से हस्तक्षेप की मांग कर सकता है।

तर्कहीनता— सामान्य सिद्धांत यह है कि प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग उचित रूप से किया जाना चाहिए। लेकिन अगर कोई प्रशासनिक अधिकारी ऐसा निर्णय देता है जो समाज के नैतिक मानकों को दरकिनार कर देता है और ऐसा है जो कानून के तहत अनुपस्थित है तो ऐसे निर्णय को अनुचित माना जा सकता है। इसे कानून में गलत कार्य भी कहा जा सकता है। न्यायिक नियंत्रण के लिए आधार के रूप में तर्कहीनता की अवधारणा को **एसोसिएटेड प्रांतीय पिक्चर हाउस बनाम वेडनसबरी (1947)** के मामले के माध्यम से स्थापित किया गया था। इस मामले को वेडनसबरी परीक्षण के रूप में भी जाना जाता है क्योंकि अदालत ने यह निर्धारित करने के लिए तीन परीक्षण निर्धारित किए थे कि किसी अदालत को तर्कहीनता के आधार पर हस्तक्षेप करने का अधिकार है या नहीं:

- (1) यदि प्रतिवादी ने किसी तथ्य पर विचार नहीं किया है जिस पर विचार किया जाना था।
- (2) यदि प्रतिवादी ने किसी ऐसे तथ्य पर विचार किया है जिस पर विचार नहीं किया जाना था।
- (3) यदि निर्णय ऐसा है कि किसी भी उचित प्राधिकारी ने बुद्धि के उचित प्रयोग के पश्चात् ऐसे निर्णय को लागू करने पर विचार नहीं किया होगा।
- (4) अदालत ने यह भी कहा कि कोई भी अदालत केवल असहमति के आधार पर हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

प्रक्रियात्मक अनुचितता— इसका अर्थ है किसी प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं या सामान्य कानून का पालन करने में विफलता। प्रक्रियात्मक अनुचितता के मामले में, न्यायपालिका के पास हस्तक्षेप करने की शक्ति है, भले ही प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को नकारा न गया हो। **सिविल सेवा यूनियनों की परिषद बनाम**

सिविल सेवा मंत्री के मामले में लॉर्ड डिप्लॉक ने प्रक्रियात्मक अनुचितता को यह निर्धारित करने के प्रमुख कारकों में से एक माना कि कोई प्रशासनिक कार्यवाई न्यायिक हस्तक्षेप के अधीन है या नहीं।

आनुपातिकता— इसका मतलब है कि प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा जो भी कार्यवाई की जाती है, वह निर्णय के उद्देश्य के अनुपात तक ही सीमित होनी चाहिए।

तर्कहीनतारू इसे 'वेडनसबरी अनुचितता' भी कहा जा सकता है। यह ऐसे निर्णय पर लागू होता है जो तर्क या स्वीकृत नैतिक मानकों की अवहेलना में इतना अपमानजनक होता है कि कोई भी समझदार व्यक्ति जो निर्णय किए जाने वाले प्रश्न पर अपना दिमाग लगाता, वह उस पर नहीं पहुंच सकता था। प्रशासनिक प्राधिकरण द्वारा की गई किसी भी कार्यवाई के लिए न्यायालय के लिए उसके लाभों के साथ-साथ नुकसानों पर भी विचार करना आवश्यक है। जब तक न्यायालय को यह संतुष्टि न हो कि यह कार्यवाई आम जनता के हित में आवश्यक है, तब तक इसे बरकरार नहीं रखा जाएगा। यदि कोई ऐसा प्राधिकरण कोई ऐसी कार्यवाई करता है जो उसके निजी लाभ के लिए है और जनहित को लाभ नहीं पहुंचाती है, तो न्यायालय से हस्तक्षेप की मांग की जा सकती है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण के स्वरूप

- (1) न्यायिक समीक्षा
- (2) वैधानिक अपील
- (3) सरकार के खिलाफ मुकदमा
- (4) सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध आपराधिक और दीवानी मुकदमे
- (5) असाधारण उपचार

न्यायिक समीक्षा— न्यायिक समीक्षा उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय की सबसे महत्वपूर्ण शक्तियों में से एक है। प्रशासनिक कार्यों और उनकी संवैधानिकता के साथ-साथ वैधता की जाँच करके जनता के अधिकारों की रक्षा और सुरक्षा करना विकासशील सभ्यता की बुनियादी आवश्यकता है। यह सिद्धांत उन देशों में प्रचलित है जहाँ संविधान को उनका सर्वोच्च कानून माना जाता है, उदाहरण के लिए— यूएसए, भारत, ऑस्ट्रेलिया आदि। न्यायिक समीक्षा करने के लिए न्यायालयों की शक्ति संविधान द्वारा प्रतिबंधित है। हालाँकि, अगर प्रशासनिक कार्यवाई संविधान के विरुद्ध है या सार्वजनिक हित को नुकसान पहुंचाती है तो विधानमंडल न्यायिक समीक्षा को बाहर नहीं कर सकता है। न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत पहली बार 24 फरवरी, 1803 को अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट द्वारा मार्बरी बनाम मैडिसन के मामले में स्थापित किया गया था जब इसने विधायी (कांग्रेस) के एक अधिनियम को असंवैधानिक घोषित किया था। न्यायिक समीक्षा के तंत्र निम्नलिखित हैं—

- (1) विधायी कार्यों की न्यायिक समीक्षा।
- (2) न्यायिक निर्णय की न्यायिक समीक्षा।
- (3) प्रशासनिक कार्यवाई की न्यायिक समीक्षा।

केशवानंद भारती, चंद्र कुमार बनाम यूओआई के मामलों में न्यायिक समीक्षा को आवश्यक माना गया और इसे भारतीय संविधान का एक अनिवार्य और अभिन्न अंग घोषित किया गया। श्री शंकरी प्रसाद सिंह देव बनाम भारत संघ में, 1951 के प्रथम संशोधन अधिनियम को चुनौती दी गई थी, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान में संशोधन करने के लिए संसद को पूर्ण शक्ति प्रदान करके इस तर्क को खारिज कर दिया। गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य के ऐतिहासिक मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णय को उलट दिया क्योंकि उसने देखा कि अनुच्छेद 368 संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है।

वैधानिक अपील—विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून और कानून किसी भी तरह के दुख या नुकसान की स्थिति में न्यायिक हस्तक्षेप की मांग करते हैं। पीड़ित पक्ष को मूल निर्णय लेने वाले न्यायाधिकरण की तुलना में उच्च प्रशासनिक न्यायाधिकरण में अपील करने का अधिकार है। उदाहरण के लिए, सत्र न्यायालय के निर्णय से पीड़ित कोई भी व्यक्ति हस्तक्षेप के लिए उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। सर्वोच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय सर्वोच्च न्यायालय है और इसलिए, इसके निर्णयों के खिलाफ अपील करने का कोई अधिकार नहीं है।

सरकार के खिलाफ मुकदमा— सरकार के खिलाफ मुकदमा चलाने के संबंध में कुछ सीमाएँ हैं। अनुबंध कानून के तहत सरकार की जिम्मेदारी नागरिकों की जिम्मेदारी के समान है, जो संविधान के तहत संसद द्वारा विनियमित की जा सकने वाली सीमाओं के अधीन है। हालाँकि, सरकार अपने अधिकारियों के केवल उन्हीं कार्यों के लिए उत्तरदायी है जिनके लिए वे उत्तरदायी हैं। सरकार को केवल गैर-संप्रभु कार्यों के संबंध में अपने अधिकारियों के कार्यों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध दीवानी और आपराधिक मुकदमे— सरकारी अधिकारियों के कृत्यों के विरुद्ध दीवानी और फौजदारी कार्यवाही से संबंधित कानून अलग-अलग देशों में अलग-अलग हैं। भारत में, दंड प्रक्रिया संहिता सरकारी अधिकारियों द्वारा ऐसी क्षमता में किए गए कृत्यों के लिए उनकी व्यक्तिगत जिम्मेदारी बनाती है और दो महीने की पूर्व सूचना के साथ ऐसे कृत्यों के विरुद्ध मुकदमा दायर करने की अनुमति देती है। हालाँकि, मंत्रियों को छोड़कर कुछ अधिकारी ऐसे दीवानी मुकदमों से प्रतिरक्षित हैं जैसे कि राष्ट्रपति और राज्यपाल। ब्रिटेन में, सम्राट और अमेरिका में राष्ट्रपति ऐसी कानूनी कार्यवाही से प्रतिरक्षित हैं।

असाधारण उपचार— उपर्युक्त प्रकार के न्यायिक नियंत्रणों के अलावा, भारतीय संविधान अनुच्छेद 13 और अनुच्छेद 226 के तहत रिट के माध्यम से कुछ अतिरिक्त उपचार प्रदान करता है। न्यायालय के पास इन उपचारों को प्रदान

करने के लिए विवेकाधीन शक्तियाँ हैं, सिवाय बंदी प्रत्यक्षीकरण के रिट के, जब कोई अन्य उपाय उपलब्ध न हो। ये रिट सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केवल नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए जारी की जाती हैं, लेकिन उच्च न्यायालय को अन्य अधिकारों की सुरक्षा के लिए भी ये रिट जारी करने का अधिकार है। निषेधाज्ञा रिट भारतीय संविधान के तहत विशेष रूप से प्रदान नहीं की गई है, लेकिन फिर भी इसे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक उपाय के रूप में प्रदान किया गया है। निषेधाज्ञा रिट दो प्रकार की होती है— निवारक और अनिवार्य। अनिवार्य रिट किसी तरह परमादेश रिट के समान होती है और निवारक निषेध रिट के समान होती है। निषेधाज्ञा रिट कार्यकारी अधिकारियों के खिलाफ जारी की जाती है।

रिट के माध्यम से उपचार इस प्रकार हैं—

बंदी प्रत्यक्षीकरण— यह लैटिन शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है ध्वाप शव को अपने पास रख सकते हैं। इसका उपयोग किसी ऐसे व्यक्ति को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है जिसे अवैध रूप से या अवैध रूप से हिरासत में लिया गया हो। इस रिट के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी अन्य व्यक्ति को आदेश दे सकता है जिसने किसी अन्य व्यक्ति को अवैध रूप से हिरासत में लिया है, कि वह उस व्यक्ति का शव न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत करे। न्यायालय को हिरासत में लिए गए व्यक्ति से हिरासत के लिए वैध आधार प्रदान करने की आवश्यकता होती है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो हिरासत में लिए गए व्यक्ति को न्यायालय द्वारा रिहा कर दिया जाएगा। यह रिट सार्वजनिक और निजी दोनों प्रकार के अधिकारियों के विरुद्ध जारी की जा सकती है। न्यायालय के पास, उन सभी क्षेत्रों में, जिनके संबंध में वह अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करता है, किसी भी व्यक्ति या प्राधिकरण को, जिसमें उचित मामलों में कोई भी सरकार शामिल है, उन क्षेत्रों के भीतर निर्देश, आदेश या रिट जारी करने की शक्ति होगी, जिसमें बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, निषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण या उनमें से कोई भी प्रकृति के रिट शामिल हैं, भाग षष्ठ द्वारा प्रदत्त किसी भी अधिकार के प्रवर्तन के लिए और किसी अन्य उद्देश्य के लिए। इच्छू देवी बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि किसी भी निरुस्वार्थ सार्वजनिक व्यक्ति द्वारा पोस्टकार्ड के माध्यम से किया गया आवेदन भी बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट जारी करने के लिए विचार किया जाएगा।

परमादेश—यह सर्वोच्च न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा निचली या अधीनस्थ अदालतों, न्यायाधिकरणों या सार्वजनिक प्राधिकरणों को दिया गया आदेश है। यह रिट किसी भी सरकार, न्यायालय, निगम या सार्वजनिक प्राधिकरण को जारी की जा सकती है, यदि वे अपने संबंधित कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहते हैं। जॉन पैली और अन्य बनाम केरल राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि न्यायालय परमादेश की रिट जारी करके किसी राज्य विधानमंडल को न्यायाधिकरण स्थापित करने का निर्देश नहीं दे सकता। याचिका पर विचार नहीं किया जा सकता और इसे खारिज कर दिया गया।

अधिकार-पृच्छा— यह रिट किसी निजी व्यक्ति के विरुद्ध तब जारी की जाती है जब वह किसी ऐसे लोक सेवक का पद ग्रहण करता है जिस पर उसका कोई अधिकार नहीं होता। इस रिट को जारी करने का अधिकार विवेकाधीन है और यह न्यायालय के विवेक पर निर्भर करता है कि वह इस रिट को जारी करे या नहीं। यह रिट केवल तभी जारी की जा सकती है जब कोई वास्तविक सार्वजनिक पद शामिल हो और इसे निजी या मंत्री पद के विरुद्ध जारी नहीं किया जा सकता। निरंजन कुमार गोयनका बनाम बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर के मामले में न्यायालय ने कहा कि यदि व्यक्ति सार्वजनिक पद पर नहीं है तो अधिकार-पृच्छा रिट जारी नहीं की जा सकती।

उत्प्रेषण-पत्र—यह उच्च न्यायालय द्वारा अवर न्यायालयों को जारी किया जाता है। यह प्रकृति में सुधारात्मक है और इसका कार्य त्रुटियों को सुधारना है। यह तब जारी किया जाता है जब अवर न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से अधिक हो या उच्च न्यायालय किसी मामले में स्वयं निर्णय लेना चाहता हो। ए.के. क्राइपक बनाम भारत संघ के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने अर्ध-न्यायिक प्राधिकरणों और प्रशासनिक प्राधिकरणों के बीच अंतर निर्धारित किया। सर्वोच्च न्यायालय ने उत्प्रेषण-पत्र जारी करके निर्णय को रद्द कर दिया।

निषेध—यह रिट अक्सर जारी नहीं की जाती है और यह एक असाधारण उपाय है जिसे उच्च न्यायालय किसी निचली अदालत या न्यायाधिकरण को जारी करता है ताकि उन्हें किसी मामले पर निर्णय लेने से रोका जा सके क्योंकि उनके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। यदि न्यायालय या न्यायाधिकरण के पास अधिकार क्षेत्र नहीं है और फिर भी वह मामले पर निर्णय लेता है, तो निर्णय अमान्य होगा क्योंकि किसी कार्य को वैध होने के लिए उसे कानून की मंजूरी होनी चाहिए। यह रिट केवल न्यायिक और अर्ध-न्यायिक अधिकारियों के खिलाफ ही जारी की जा सकती है। प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स बनाम स्टेट ऑफ एपी और अन्य के मामले में यह सवाल उठाया गया था कि प्षया जिला मंचोंध्राज्य आयोगों के खिलाफ निषेध रिट जारी की जा सकती है जिन्होंने उपभोक्ता मामलों के बारे में पहले ही निर्णय पारित कर दिया है? न्यायालय ने माना कि आदेश के निष्पादन के बाद, निषेध रिट जारी नहीं की जा सकती है और न ही निर्णय को रोका जा सकता है और न ही रोका जा सकता है।

प्रशासन पर न्यायिक नियंत्रण की सीमाएं

अदालतों में पहले से ही ढेर सारे मामले होने के कारण, अदालतों के लिए इस बोझ को संभालना मुश्किल हो जाता है। न्याय में अत्यधिक देरी न्याय चाहने वालों को अदालत जाने से हतोत्साहित करती है। पुरानी कहावत “न्याय में देरी न्याय से वंचित होने के बराबर है” आज भी ऐसे मामलों में सही साबित होती है। चूंकि न्यायालय प्रशासनिक कार्यों में अपनी मर्जी से हस्तक्षेप नहीं कर सकते और वे केवल तभी हस्तक्षेप कर सकते हैं जब न्याय की मांग की

जाती है, इससे न्याय की प्रक्रिया में देरी होती है। चूंकि अधिकांश मामलों में न्यायपालिका केवल तभी हस्तक्षेप करने में सक्षम होती है जब पहले से ही काफी नुकसान हो चुका होता है और ऐसे मामलों में पीड़ित द्वारा पहले से ही उठाए गए नुकसान को कम करने का कोई तरीका नहीं होता है। न्यायिक प्रक्रियाओं की उच्च लागत के कारण अधिकांश समय केवल अमीर लोग ही प्रशासनिक कार्यवाहियों के खिलाफ राहत पाने में सक्षम होते हैं और गरीब लोग न्याय से वंचित रह जाते हैं तथा ऐसी प्रशासनिक कार्यवाहियों और न्याय से इनकार के शिकार बन जाते हैं। भारत में न्यायालय कुछ वैधानिक सीमाओं से बंधे हैं और उनके विरुद्ध कार्यवाई नहीं कर सकते। कुछ प्रशासनिक कार्य न्यायिक नियंत्रण से बाहर हैं और उनकी समीक्षा नहीं की जा सकती। सामान्य जागरूकता की कमी भी न्यायिक नियंत्रण की सीमाओं में से एक बन जाती है। भारत जैसे देश में जहाँ निरक्षरता अधिक है, लोग शिकायतों के मामले में न्यायपालिका द्वारा प्रदान किए जाने वाले उपायों के सामान्य ज्ञान से भी वंचित हैं। न्यायालयों के लिए जो केवल तभी कार्य कर सकते हैं जब राहत मांगी जाती है, इस मामले में नागरिकों को न्याय प्रदान करना कठिन हो जाता है।

न्यायिक नियंत्रण से संबंधित हालिया मामले

अजीजुर रहमान बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य के हालिया मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने माना कि न्यायपालिका की न्यायिक समीक्षा की शक्ति प्रशासनिक कार्य की वैधता और संवैधानिकता की जाँच करना है, न कि ऐसे कार्य की बुद्धिमत्ता या सुदृढ़ता की। न्यायपालिका अपनी शक्तियों का प्रयोग केवल तभी करेगी जब कार्य पूरी तरह से मनमाना हो या व्यक्तिगत लाभ के लिए हो या जनता के हित को प्रभावित करता हो। **आई.आर. कोलोहो (मृत) बाय एल.आर.एस. बनाम तमिलनाडु राज्य एवं अन्य के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने माना कि 24 अप्रैल, 1973 के बाद संशोधनों के माध्यम से संविधान की 9वीं अनुसूची में जो कानून जोड़े गए हैं, उनमें संशोधन किया जा सकता है, यदि वे संविधान के विरुद्ध हों।

प्रश्न नं० 6—नैसर्गिक न्याय की परिभाषा दीजिए तथा प्रशासनिक कार्यों में इसके प्रयोग की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।

उत्तर— प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत रोमन कानून के शब्द श्जस नेचुरलस से लिया गया है और यह आम कानून और नैतिक सिद्धांतों से निकटता से जुड़ा हुआ है, लेकिन इसे संहिताबद्ध नहीं किया गया है। यह प्रकृति का एक कानून है जो किसी कानून या संविधान से नहीं लिया गया है। प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत का पालन सभ्य राज्य के सभी नागरिकों द्वारा सर्वोच्च महत्व के साथ किया जाता है। निष्पक्ष व्यवहार के प्राचीन दिनों में, उस समय जब औद्योगिक क्षेत्रों में काम पर रखने और निकालने के लिए कठोर और सख्त कानून थे, सर्वोच्च न्यायालय ने समय बीतने और श्रमिकों के लिए सामाजिक, न्याय और अर्थव्यवस्था वैधानिक सुरक्षा की स्थापना के साथ अपना आदेश दिया।

पहला नियम है 'सुनवाई नियम' जिसमें कहा गया है कि विशेषज्ञ सदस्यों के पैनल द्वारा लिए गए निर्णय से प्रभावित होने वाले व्यक्ति या पक्ष को अपना बचाव करने के लिए अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

दूसरा, 'पक्षपात नियम' आम तौर पर यह व्यक्त करता है कि निर्णय लेते समय विशेषज्ञों के पैनल को पक्षपात रहित होना चाहिए। निर्णय स्वतंत्र और निष्पक्ष तरीके से दिया जाना चाहिए जो प्राकृतिक न्याय के नियम को पूरा कर सकें।

और तीसरा, 'तर्कसंगत निर्णय' जो न्यायालय के उस आदेश, निर्णय या फैसले को बताता है जो पीठासीन अधिकारियों द्वारा वैध और उचित आधार पर दिया जाता है।

प्राकृतिक न्याय का सिद्धांत बहुत पुरानी अवधारणा है और इसकी शुरुआत बहुत कम उम्र में हुई थी। ग्रीक और रोमन लोग भी इस अवधारणा से परिचित थे। कौटिल्य के समय में अर्थशास्त्र और एडम ने प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को मान्यता दी थी। बाइबिल के अनुसार, ईव और एडम के मामले में, जब उन्होंने ज्ञान का फल खाया, तो भगवान ने उन्हें मना कर दिया। सजा सुनाने से पहले, ईव को खुद का बचाव करने का उचित मौका दिया गया और एडम के मामले में भी यही प्रक्रिया अपनाई गई।

बाद में, प्राकृतिक न्याय की अवधारणा को अंग्रेजी न्यायविदों ने स्वीकार कर लिया। प्राकृतिक न्याय शब्द रोमन शब्द श्जस—नेचुरलस और श्लेक्स—नेचुरलस से लिया गया है, जिसने प्राकृतिक न्याय, प्राकृतिक कानून और समानता के सिद्धांतों की योजना बनाई।

'प्राकृतिक न्याय का अर्थ है क्या गलत है और क्या सही है इसका बोध।'

भारत में इस अवधारणा को बहुत पहले ही पेश किया गया था। मोहिंदर सिंह गिल बनाम मुख्य चुनाव आयुक्त के मामले में न्यायालय ने माना कि निष्पक्षता की अवधारणा हर कार्य में होनी चाहिए चाहे वह न्यायिक, अर्ध-न्यायिक, प्रशासनिक और या अर्ध-प्रशासनिक कार्य हो।

सिद्धांत का उद्देश्य

(1) सुनवाई का समान अवसर प्रदान करना।

(2) निष्पक्षता की अवधारणा।

(3) कानून की खामियों और कमियों को पूरा करना।

(4) मौलिक अधिकारों की रक्षा करना।

(5) संविधान की मूल विशेषताएँ

(6) न्याय में कोई चूक नहीं हुई।

प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत पक्षपात से मुक्त होने चाहिए तथा पक्षकारों को सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए तथा न्यायालय द्वारा लिए गए सभी कारणों और निर्णयों से संबंधित पक्षों को अवगत कराया जाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि उचित और न्यायसंगत निर्णय पर पहुंचना न्यायिक और प्रशासनिक निकायों का उद्देश्य है। प्राकृतिक न्याय का मुख्य उद्देश्य न्याय की विफलता को रोकना है।

एक समिति यानि **“मिनिस्टर्स पावर”** ने प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों से संबंधित 3 आवश्यक प्रक्रियाएँ बताईं।

(1) किसी को भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं बनना चाहिए।

(2) किसी की भी निंदा अनसुनी नहीं की जा सकती।

(3) पक्षकार को प्रत्येक कारण तथा प्राधिकारी द्वारा लिए गए निर्णय को जानने का अधिकार है।

इसका दावा कब किया जा सकता है?

प्राकृतिक न्याय का दावा न्यायिक या अर्ध-न्यायिक रूप से कार्य करते समय भी किया जा सकता है जैसे कि पंचायत और न्यायाधिकरण आदि। इसमें निष्पक्षता की अवधारणा, बुनियादी नैतिक सिद्धांत और विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह शामिल हैं और प्राकृतिक न्याय की आवश्यकता क्यों है और इसमें कौन से विशेष मामले या परिस्थितियाँ शामिल हैं जहाँ प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू नहीं होंगे।

बम्बई प्रांत बनाम खुशालदास आडवाणी के मामले में कहा गया था कि प्राकृतिक न्याय वैधानिक न्याय पर लागू होगा क्योंकि यह प्राकृतिक न्याय का एक मूल सिद्धांत है जो निष्पक्षता और न्याय की ओर ले जाता है।

(1) कार्य का प्रभाव

(2) प्रशासनिक कार्यवाई.

(3) नागरिक परिणाम.

(4) वैध अपवाद का सिद्धांत.

(5) कार्य में निष्पक्षता.

(6) अनुशासनात्मक कार्यवाही.

बोर्ड ऑफ हाई स्कूल बनाम घनश्याम के मामले में, एक छात्र को परीक्षा हॉल में नकल करते हुए पकड़ा गया और उसे इस कृत्य के कारण परीक्षा से वंचित कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि छात्र परीक्षा बोर्ड के खिलाफ जनहित याचिका दायर नहीं कर सकता।

हाई वाटर मार्क केस— यूरेशियन इक्विपमेंट एंड कंपनी लिमिटेड बनाम पश्चिम बंगाल राज्य रु इस केस के तहत सभी कार्यकारी इंजीनियरों को ब्लैक लिस्ट में डाल दिया गया था। सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि बिना वैध और उचित आधार दिए आप किसी को भी ब्लैक लिस्ट में नहीं डाल सकते और साथ ही उसे सुनवाई का उचित अवसर दिया जाना चाहिए।

निमो जुडेक्स इन कॉसा सुआ

‘किसी को भी अपने मामले में न्यायाधीश नहीं होना चाहिए’ क्योंकि यह पक्षपात के नियम की ओर ले जाता है। पक्षपात का अर्थ है ऐसा कार्य जो किसी पक्ष या किसी विशेष मामले के संबंध में सचेत या अचेतन अवस्था में अनुचित गतिविधि की ओर ले जाता है। इसलिए, इस नियम की आवश्यकता न्यायाधीश को निष्पक्ष बनाने और मामले के अनुसार दर्ज किए गए साक्ष्य के आधार पर निर्णय देने के लिए है।

व्यक्तिगत पूर्वाग्रह— व्यक्तिगत पूर्वाग्रह पार्टी और निर्णय लेने वाले प्राधिकारी के बीच संबंध से उत्पन्न होता है। जो निर्णय लेने वाले प्राधिकारी को संदिग्ध स्थिति में अनुचित गतिविधि करने और अपने व्यक्ति के पक्ष में निर्णय देने के लिए प्रेरित करता है। इस तरह के समीकरण व्यक्तिगत और व्यावसायिक संबंधों के विभिन्न रूपों के कारण उत्पन्न होते हैं। व्यक्तिगत पूर्वाग्रह के आधार पर प्रशासनिक कार्यवाई को सफलतापूर्वक चुनौती देने के लिए, पूर्वाग्रह का उचित कारण देना आवश्यक है। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि चयन समिति के एक सदस्य का भाई भी प्रतियोगिता में उम्मीदवार था, लेकिन इस कारण चयन की पूरी प्रक्रिया को रद्द नहीं किया जा सकता। यहां, अपने भाई की ओर से पक्षपातपूर्ण कार्य से बचने के लिए अभ्यर्थी से जुड़े संबंधित पैनल सदस्य को चयन समिति के पैनल से बाहर जाने का अनुरोध किया जा सकता है। जिससे निष्पक्ष और उचित निर्णय लिया जा सके। रामानंद प्रसाद सिंह बनाम यूओआई ।

आर्थिक पूर्वाग्रह— यदि किसी न्यायिक निकाय को किसी भी प्रकार का वित्तीय लाभ होता है, चाहे वह कितना भी छोटा क्यों न हो, तो प्रशासनिक प्राधिकार में पक्षपात पैदा होगा।

विषय वस्तु पूर्वाग्रह— जब प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निर्णयकर्ता प्राधिकारी किसी विशेष मामले की विषय-वस्तु में शामिल हो। मुरलीधर बनाम कदम सिंह मामले में न्यायालय ने इस आधार पर चुनाव न्यायाधिकरण के निर्णय को रद्द करने से इनकार कर दिया कि अध्यक्ष की पत्नी कांग्रेस पार्टी की सदस्य थीं, जिसे याचिकाकर्ता ने हराया था।

विभागीय पूर्वाग्रह— विभागीय पूर्वाग्रह की समस्या या मुद्दा प्रत्येक प्रशासनिक प्रक्रिया में बहुत आम है और इसे प्रभावी ढंग से नहीं रोका जाता है और हर छोटे अंतराल पर यह कार्यवाही में निष्पक्षता की नकारात्मक अवधारणा को जन्म देता है।

नीतिगत धारणा पूर्वाग्रह— पूर्व निर्धारित नीति धारणा से उत्पन्न होने वाले मुद्दे बहुत ही समर्पित मुद्दा है। वहां बैठे दर्शक यह उम्मीद नहीं करते कि न्यायाधीश खाली कागज लेकर बैठेंगे और मामले पर निष्पक्ष सुनवाई और निर्णय देंगे।

हठ के कारण पक्षपात— सुप्रीम कोर्ट ने अनुचित शर्त के माध्यम से पक्षपात के नए मानदंड खोजे हैं। यह नई श्रेणी एक ऐसे मामले से उभरी है जिसमें कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश ने अपील में अपने ही फौसले को बरकरार रखा। पक्षपात के नियमों का सीधा उल्लंघन इसलिए किया जाता है क्योंकि कोई भी न्यायाधीश अपने ही मामले में अपील में नहीं बैठ सकता।

ऑडी अल्टरम पार्टम— इसमें केवल 3 लैटिन शब्द शामिल हैं, जिसका मूल अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना अदालत द्वारा दोषी नहीं ठहराया जा सकता या दंडित नहीं किया जा सकता। कई न्यायक्षेत्रों में, अधिकांश मामलों को सुनवाई का उचित अवसर दिए बिना ही अनिर्णीत छोड़ दिया जाता है।

इस नियम का शाब्दिक अर्थ यह है कि दोनों पक्षों को अपनी-अपनी बात रखने का उचित अवसर दिया जाना चाहिए तथा निष्पक्ष सुनवाई की जानी चाहिए। यह प्राकृतिक न्याय का एक महत्वपूर्ण नियम है और इसका शुद्ध रूप किसी को बिना किसी वैध और उचित आधार के दंडित नहीं करना है। किसी व्यक्ति को पहले से सूचना दे दी जानी चाहिए ताकि वह यह जानने के लिए तैयार हो सके कि उसके खिलाफ क्या-क्या आरोप लगाए गए हैं। इसे निष्पक्ष सुनवाई के नियम के रूप में भी जाना जाता है। निष्पक्ष सुनवाई के घटक प्रकृति में निश्चित या कठोर नहीं हैं। यह मामले दर मामले और प्राधिकरण दर प्राधिकरण अलग-अलग होता है।

प्रश्न न0 7— लोकपाल के द्वारा जाँच करने की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर— लोकपाल अधिनियम की धारा 20 प्रारंभिक जांच और जांच के संबंध में प्रक्रिया को परिभाषित करती है। शिकायत प्राप्त होने पर, यह पता लगाने के लिए कि क्या मामले में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है, लोकपाल मामले में प्रारंभिक जांच का आदेश देता है।

20—शिकायतों तथा प्रारंभिक जांच और अन्वेषण से संबंधित प्रावधान—

(1) लोकपाल किसी शिकायत की प्राप्ति पर, यदि वह आगे कार्यवाही करने का निर्णय लेता है, तो आदेश दे सकता है—

(क) किसी लोक सेवक के विरुद्ध अपनी जांच शाखा या किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) द्वारा प्रारंभिक जांच, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि मामले में कार्यवाही के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है या नहीं या

(ख) किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) द्वारा जांच, जब प्रथम दृष्टया मामला मौजूद होरु बशर्ते कि यदि लोकपाल ने प्रारंभिक जांच के साथ आगे बढ़ने का निर्णय लिया है, तो वह सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, समूह ए या समूह बी या समूह सी या समूह डी से संबंधित लोक सेवकों के संबंध में प्राप्त शिकायतों या शिकायतों की श्रेणी या शिकायत को केंद्रीय सतर्कता आयोग को संदर्भित करेगा।

केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) की धारा 3 की उपधारा (1) के अंतर्गत गठित आयोगरु इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि केंद्रीय सतर्कता आयोग, समूह ए और समूह बी के लोक सेवकों के संबंध में प्रारंभिक जांच करने के बाद, पहले प्रावधान के तहत उसे भेजी गई शिकायतों के संबंध में, उपधारा (2) और (4) में निहित प्रावधानों के अनुसार अपनी रिपोर्ट लोकपाल को प्रस्तुत करेगा और समूह सी और समूह डी के लोक सेवकों के मामले में, आयोग केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम, 2003 (2003 का 45) के प्रावधानों के अनुसार कार्यवाही करेगा—

इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि खंड (बी) के तहत जांच का आदेश देने से पहले, लोकपाल लोक सेवक से स्पष्टीकरण मांगेगा ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि जांच के लिए प्रथम दृष्टया मामला मौजूद है या नहींरु इसके अलावा यह भी प्रावधान है कि जांच से पहले लोक सेवक से स्पष्टीकरण मांगने से तलाशी और जब्ती, यदि कोई हो, में बाधा नहीं आएगी। इस अधिनियम के तहत किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) द्वारा किए जाने की आवश्यकता है।

(2) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट प्रारंभिक जांच के दौरान, जांच विंग या कोई भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) प्रारंभिक जांच करेगी और एकत्रित सामग्री, सूचना और दस्तावेजों के आधार पर लोक सेवक और सक्षम प्राधिकारी से शिकायत में लगाए गए आरोपों पर टिप्पणियां मांगेगी और संबंधित लोक सेवक और सक्षम प्राधिकारी की टिप्पणियां प्राप्त करने के बाद, संदर्भ की प्राप्ति की तारीख से साठ दिनों के भीतर लोकपाल को एक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी।

(3) लोकपाल के कम से कम तीन सदस्यों वाली एक पीठ, जांच विंग या किसी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) से उप-धारा (2) के तहत प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट पर विचार करेगी और लोक सेवक को सुनवाई का अवसर देने के बाद यह तय करेगी कि क्या प्रथम दृष्टया मामला बनता है और निम्नलिखित में से एक या अधिक कार्रवाई करेगी, अर्थात्—

(क) किसी एजेंसी या दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना द्वारा जांच, जैसा भी मामला हो;

(ख) सक्षम प्राधिकारी द्वारा संबंधित लोक सेवकों के खिलाफ विभागीय कार्यवाही या कोई अन्य उचित कार्रवाई शुरू करना;

(ग) लोक सेवक के खिलाफ कार्यवाही को बंद करना और धारा 46 के तहत शिकायतकर्ता के खिलाफ कार्यवाई करना।

(4) उप-धारा (1) में निर्दिष्ट प्रत्येक प्रारंभिक जांच सामान्यतः शिकायत प्राप्त होने की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के भीतर और लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए नब्बे दिन की अतिरिक्त अवधि के भीतर पूरी की जाएगी।

(5) यदि लोकपाल शिकायत की जांच करने का निर्णय लेता है, तो वह किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान सहित) को यथासंभव शीघ्रता से जांच करने और अपने आदेश की तिथि से छह महीने की अवधि के भीतर जांच पूरी करने का निर्देश देगा—

बशर्ते कि लोकपाल लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों से उक्त अवधि को एक बार में छह महीने से अधिक की अतिरिक्त अवधि के लिए बढ़ा सकता है।

(6) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 173 में निहित किसी भी बात के बावजूद, कोई भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) लोकपाल द्वारा उसे भेजे गए मामलों के संबंध में उस धारा के तहत जांच रिपोर्ट अधिकार क्षेत्र वाले न्यायालय को प्रस्तुत करेगी और उसकी एक प्रति लोकपाल को भेजेगी।

(7) लोकपाल के कम से कम तीन सदस्यों वाली एक पीठ किसी भी एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना सहित) से उप-धारा (6) के तहत प्राप्त प्रत्येक रिपोर्ट पर विचार करेगी और सक्षम प्राधिकारी और लोक सेवक की टिप्पणियां प्राप्त करने के बाद—

(क) अपने अभियोजन विंग या जांच एजेंसी को आरोप-पत्र दायर करने या लोक सेवक के खिलाफ विशेष न्यायालय के समक्ष रिपोर्ट को बंद करने का निर्देश देने की मंजूरी दे सकती है;

(ख) सक्षम प्राधिकारी को संबंधित लोक सेवक के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही या कोई अन्य उचित कार्यवाई आरंभ करने का निर्देश दे सकता है।

(8) लोकपाल उपधारा (7) के अंतर्गत आरोप-पत्र दाखिल करने के संबंध में निर्णय लेने के पश्चात अपनी अभियोजन शाखा या किसी जांच एजेंसी (दिल्ली विशेष पुलिस सहित) को आरोप-पत्र दाखिल करने का निर्देश दे सकता है।

एजेंसी द्वारा जांचे गए मामलों के संबंध में विशेष न्यायालय में अभियोजन आरंभ करने के लिए लोकपाल (स्थापना) को अधिकृत किया गया है।

(9) लोकपाल, प्रारंभिक जांच या अन्वेषण के दौरान, जैसा भी मामला हो, प्रारंभिक जांच या अन्वेषण से संबंधित दस्तावेजों की सुरक्षित अभिरक्षा के लिए उचित आदेश पारित कर सकता है, जैसा भी मामला हो, जैसा भी वह उचित समझे।

(10) लोकपाल की वेबसाइट समय-समय पर और विनियमों द्वारा निर्दिष्ट तरीके से, जनता को उसके समक्ष लंबित या निपटाए गए शिकायतों की संख्या की स्थिति प्रदर्शित करेगी।

(11) लोकपाल मूल अभिलेखों और साक्ष्यों को अपने पास रख सकता है, जिनकी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण की प्रक्रिया में या उसके द्वारा या विशेष न्यायालय द्वारा किसी मामले के संचालन में आवश्यकता पड़ने की संभावना है।

(12) अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अधिनियम के अधीन प्रारंभिक जांच या अन्वेषण (जिसमें लोक सेवक को उपलब्ध कराई जाने वाली सामग्री और दस्तावेज शामिल हैं) करने का तरीका और प्रक्रिया ऐसी होगी, जैसी विनियमों द्वारा निर्दिष्ट की जा सकती है।

21. जिन व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, उनकी सुनवाई की जाएगी। — यदि कार्यवाही के किसी भी चरण में लोकपाल —

(क) अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के आचरण की जांच करना आवश्यक समझता है; या

(ख) उसकी राय है कि अभियुक्त के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की प्रतिष्ठा पर प्रारंभिक जांच से प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना है, तो लोकपाल उस व्यक्ति को प्रारंभिक जांच में सुनवाई का उचित अवसर देगा और प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के अनुरूप अपने बचाव में साक्ष्य प्रस्तुत करने का अवसर देगा।

22. लोकपाल किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति से सूचना आदि प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकता है। —

इस अधिनियम के प्रावधानों के अधीन, किसी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण के प्रयोजन के लिए, लोकपाल या जांच एजेंसी, जैसा भी मामला हो, किसी लोक सेवक या किसी अन्य व्यक्ति से, जो उसकी राय में, ऐसी प्रारंभिक जांच या अन्वेषण से संबंधित सूचना प्रस्तुत करने या दस्तावेज प्रस्तुत करने में सक्षम है, ऐसी कोई सूचना प्रस्तुत करने या कोई दस्तावेज प्रस्तुत करने की अपेक्षा कर सकती है।

23. अभियोजन आरंभ करने के लिए मंजूरी देने की लोकपाल की शक्ति—

(1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 197 या दिल्ली विशेष पुलिस स्थापना अधिनियम, 1946 (1946 का 25) की धारा 6ए या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) की धारा 19 में निहित किसी बात के होते हुए भी, लोकपाल को धारा 20 की उपधारा (7) के खंड (ए) के अंतर्गत अभियोजन के लिए मंजूरी देने की शक्ति होगी।

(2) उपधारा (1) के अंतर्गत कोई अभियोजन किसी ऐसे लोक सेवक के विरुद्ध आरंभ नहीं किया जाएगा, जिस पर उसके द्वारा अपने पदीय कर्तव्य के निर्वहन में कार्य करते समय या कार्य करने का अभिप्राय रखते हुए किए गए

किसी अपराध का आरोप है और कोई भी न्यायालय ऐसे अपराध का संज्ञान लोकपाल की पूर्व मंजूरी के बिना नहीं लेगा।

(3) उपधारा (1) और (2) में निहित कोई भी बात संविधान के प्रावधानों के अनुसरण में पद धारण करने वाले व्यक्तियों के संबंध में लागू नहीं होगी और जिनके संबंध में ऐसे व्यक्ति को हटाने की प्रक्रिया उसमें निर्दिष्ट की गई है।

(4) उपधारा (1), (2) और (3) में निहित प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 311 और अनुच्छेद 320 के खंड (3) के उप-खंड (सी) में निहित प्रावधानों की व्यापकता के प्रतिकूल नहीं होंगे।

24. प्रधानमंत्री, मंत्री या संसद सदस्य जैसे लोक सेवक के विरुद्ध जांच पर कार्रवाई। — जहां जांच के समापन के बाद लोकपाल के निष्कर्षों से पता चलता है कि धारा 14 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) या खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी लोक सेवक द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) के अंतर्गत कोई अपराध किया गया है, वहां लोकपाल विशेष न्यायालय में मामला दर्ज कर सकेगा और रिपोर्ट की एक प्रति अपने निष्कर्षों के साथ सक्षम प्राधिकारी को भेजेगा।

प्रश्न न० 8— न्यायिक सक्रियता से आप क्या समझते हैं? समाज को उच्चिकृत करने के लिए यह किस प्रकार आवश्यक है? विवेचना कीजिए।

उत्तर— न्यायिक सक्रियता — जानें इसका क्या मतलब है। न्यायपालिका किसी देश में नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और देश की संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था को बनाए रखने में न्यायपालिका की सक्रिय भूमिका को न्यायिक सक्रियता के रूप में जाना जाता है।

न्यायिक सक्रियता समाज के उत्थान के लिए आवश्यक हो सकती है क्योंकि यह नागरिकों के अधिकारों को बनाए रखने और बढ़ावा देने तथा देश की संवैधानिक और कानूनी व्यवस्था को संरक्षित करने में मदद कर सकती है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसे फैसले जिन्हें न्यायिक सक्रियता माना गया है, उन्होंने समाज में महिलाओं की स्थिति को बढ़ाया है, पर्यावरण की रक्षा की है, बंधुआ मजदूरों की रक्षा की है और जेल में अमानवीय व्यवहार से सुरक्षा प्रदान की है।

न्यायिक सक्रियता का दायरा इतना व्यापक है कि इसकी कोई सटीक परिभाषा मौजूद नहीं है। इसकी कोई वैधानिक परिभाषा नहीं है क्योंकि प्रत्येक न्यायविद या विद्वान इसे अलग-अलग तरीके से परिभाषित करता है। न्यायिक सक्रियता के समर्थक इसे न्यायिक समीक्षा का उचित रूप मानते हैं। इसके विपरीत, थॉमस जेफरसन इसे संघीय न्यायाधीशों की शनिरंकुश शक्ति के रूप में संदर्भित करते हैं। वीडी कुलश्रेष्ठ के अनुसार, न्यायिक सक्रियता तब होती है जब न्यायपालिका को वास्तव में कानून बनाने की प्रक्रिया में भाग लेने का काम सौंपा जाता है और बाद में वह कानूनी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण खिलाड़ी के रूप में उभरती है।

‘न्यायिक सक्रियता’ की अवधारणा न्यायिक संयम के विचार के विपरीत है। इन दोनों शब्दों का इस्तेमाल अक्सर न्यायिक शक्ति की मुखरता का वर्णन करने के लिए किया जाता है, और इनका इस्तेमाल व्यक्तिगत और पेशेवर दृष्टिकोण से भी किया जाता है, जिससे अदालतें उचित भूमिका निभाने के लिए किसी एक दृष्टिकोण की ओर झुक सकती हैं। ‘न्यायिक सक्रियता’, ‘न्यायिक सर्वोच्चता’, ‘न्यायिक निरंकुशता’, ‘न्यायिक अराजकता’ और अन्य शब्दों का इस्तेमाल अक्सर संयुक्त राज्य अमेरिका में एक दूसरे के स्थान पर किया जाता है। ‘न्यायिक सक्रियता’ शब्द को भी आरोपित माना जाता है। इसका मतलब है कि न्यायाधीशों का प्रदर्शन उनकी विचारधाराओं, राय, मूल्यों और हितों पर आधारित होता है।

न्यायिक सक्रियता की उत्पत्ति और विकास

न्यायिक सक्रियता का सिद्धांत यूनाइटेड किंगडम में न्यायिक समीक्षा प्रक्रिया के दौरान उभरा। ब्रिटिश संविधान एक अलिखित संविधान का उदाहरण है जो न्यायिक सक्रियता की अनुमति देता है। स्टुअर्ट के शासनकाल (1603–1688) के दौरान, अलिखित संविधान ने न्यायिक समीक्षा की संभावना पैदा की, और इस प्रकार न्यायिक सक्रियता का जन्म हुआ। न्यायिक समीक्षा सिद्धांत की स्थापना 1610 में जस्टिस एडवर्ड कोक ने की थी। थॉमस बोनहम बनाम कॉलेज ऑफ फिजिशियन केस (1610) में, उन्होंने यह निर्णय दिया कि संसद द्वारा पारित कोई भी कानून जो सामान्य कानून या तर्क के विरुद्ध है, उसकी समीक्षा की जा सकती है और उसे न्यायालयों द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है। न्यायिक समीक्षा और, तदनुसार, न्यायिक सक्रियता के इस सिद्धांत का समर्थन सर हेनरी होबार्ट ने किया, जो 1615 में सर एडवर्ड कोक के बाद कोर्ट ऑफ कॉमन प्लीज के मुख्य न्यायाधीश बने। न्यायिक समीक्षा के विचार से जुड़ा पहला महत्वपूर्ण मामला मैडबरी बनाम मैडिसन (1803) था, जिसमें अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट ने 1801 के न्यायपालिका अधिनियम के कुछ प्रावधानों को स्पष्ट रूप से असंवैधानिक घोषित किया था। अमेरिकी इतिहास में पहली बार, किसी अदालत ने किसी कानून को असंवैधानिक घोषित किया। जब से सुप्रीम कोर्ट ने फैसला सुनाया है कि संघीय अदालतों के पास असंवैधानिक कानूनों को अमान्य करने का अधिकार है, तब से न्यायिक समीक्षा ने संयुक्त राज्य अमेरिका में लोकप्रियता हासिल की है। हालाँकि, सटीक वाक्यांश ‘न्यायिक सक्रियता’ का इस्तेमाल आर्थर श्लेसिंगर जूनियर ने अपने लेख ‘द सुप्रीम कोर्ट्स 1947’ में किया था, जो फॉर्च्यून पत्रिका के जनवरी 1947 के अंक में छपा था। उन्होंने उस समय अमेरिकी सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीशों को न्यायिक कार्यकर्ता, आत्म-संयम के चैंपियन और दो वर्गों के बीच के न्यायाधीशों के रूप में वर्गीकृत करने के लिए इस वाक्यांश का इस्तेमाल किया।

सकाल न्यूजपेपर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम भारत संघ (1962) के मामले में, सरकार ने समाचार पत्र अधिनियम 1956 और 1960 के आदेश के अनुसार समाचार पत्र की कीमत के संबंध में पृष्ठों की संख्या को विनियमित करने की मांग की। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि समाचार पत्र अन्य व्यवसायों के समान विनियमन के अधीन नहीं हो सकते क्योंकि वे विचारों और सूचनाओं के आदान-प्रदान के लिए एक मंच के रूप में कार्य करते हैं। इस निर्णय ने संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) द्वारा प्रदान की गई मुक्त अभिव्यक्ति की सुरक्षा को व्यापक बनाया।

आरक्षण नीति—बालाजी बनाम मैसूर राज्य (1963) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि आर्थिक पिछड़ापन सामाजिक पिछड़ेपन का मूल कारण है। न्यायालय ने जाति को वर्ग से अलग किया और फैसला सुनाया कि पिछड़ेपन का आकलन करने के लिए जाति का उपयोग नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यह निर्णय लिया गया कि कुल में आरक्षित श्रेणी का प्रतिशत 50: से अधिक नहीं होना चाहिए। यह निर्णय लिया गया कि अनुच्छेद 14, साथ ही अनुच्छेद 15 और 16 के उपसमूहों का अनुपालन किया जाना चाहिए। चित्रलेखा बनाम मैसूर राज्य (1964) के मामले में न्यायालय द्वारा आरक्षण पर इसी तरह की सीमाएँ लगाई गई थीं।

भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत— भावी अधिनिर्णय का सिद्धांत सबसे पहले अमेरिकी कानूनी प्रणाली में सामने आया। इसमें कहा गया है कि किसी विशिष्ट मामले में लिया गया निर्णय केवल भविष्य को प्रभावित करेगा और पिछले निर्णयों पर इसका कोई पूर्वव्यापी प्रभाव नहीं होगा। गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य (1971) में, भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने संविधान के 17वें संशोधन की संवैधानिक वैधता को संबोधित करते हुए भावी अधिनिर्णय के विचार का बीड़ा उठाया और निर्धारित किया कि संसद के पास संविधान के भाग 3 में संशोधन करने या किसी भी मौलिक अधिकार को कम करने का अधिकार नहीं है।

मूल संरचना का सिद्धांत— केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973) के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने एक ऐसा निर्णय जारी किया जिसे भारतीय संवैधानिक न्यायशास्त्र में एक महत्वपूर्ण क्षण माना जाता है। संविधान के अनुच्छेद 368 द्वारा प्रदत्त संशोधन शक्ति के दायरे को संबोधित करते हुए, न्यायालय ने मूल संरचना का सिद्धांत विकसित किया। 7रू6 बहुमत से, 13 न्यायाधीशों की एक पीठ ने फैसला सुनाया कि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की व्यापक शक्तियाँ हैं, लेकिन उस शक्ति को संविधान के मूल ढांचे या बुनियादी ढांचे को कम या नष्ट नहीं करना चाहिए।

बंदी प्रत्यक्षीकरण मामला— एडीएम जबलपुर बनाम शिवकांत शुक्ला (1976) का मामला, जिसमें अनुच्छेद 21 को उठाया गया था, न्यायिक सक्रियता के बारे में सर्वोच्च न्यायालय का सबसे विवादास्पद निर्णय था। एडीएम जबलपुर के मामले की सुनवाई करने वाली पीठ के बहुमत ने माना कि गंभीर आपात स्थितियों के मामलों में, जैसे कि 1975 और 1977 के बीच मौजूद थे, एक कानूनी प्रक्रिया स्थापित की जा सकती है, जिसके बाद मानव जीवन भी समाप्त हो सकता है। हालाँकि, निर्णय लिखने वाले न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ को सरकार के पक्ष में राय लिखने के लिए आलोचना का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने जो कानूनी सिद्धांत प्रस्तुत किया वह न्यायिक सक्रियता का एक उत्कृष्ट उदाहरण था। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने अनुच्छेद 21 की इस तरह से व्याख्या की है और देश की संप्रभुता को बनाए रखने के लिए स्वीकृति की आवश्यकता वाले कानून की वैधता को बरकरार रखा है, अगर इसे आंतरिक या बाहरी आक्रमण से खतरा है।

सक्रियता से अति-पहुंच तक परिवर्तन— संसद ने न्यायपालिका पर न्यायिक हस्तक्षेप का आरोप बार-बार लगाया है। संसद के अनुसार न्यायपालिका अपने संवैधानिक अधिकार के बाहर काम कर रही है। न्यायिक सक्रियता जो सभी न्यायोचित सीमाओं से परे जाती है उसे 'न्यायिक अतिक्रमण' कहा जाता है। न्यायिक अतिक्रमण तब होता है जब न्यायालय मनमाने ढंग से, अत्यधिक और बार-बार विधायिका और कार्यपालिका के अधिकार क्षेत्र में दखल देते हैं।

हालाँकि न्यायिक सक्रियता और अतिक्रमण के बीच अंतर सूक्ष्म है, लेकिन समाज पर उनके प्रभाव पूरी तरह से अलग हैं। न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता के विपरीत, न्यायिक अतिक्रमण का इरादा वास्तविक नहीं है। अतिक्रमण एक स्वस्थ लोकतंत्र की संस्थाओं के कामकाज में बाधा डालता है।

मुख्य न्यायाधीश जेएस वर्मा के अनुसार, "न्यायिक सक्रियता तब उचित है जब यह वैध न्यायिक समीक्षा के दायरे में हो। इसमें कोई न्यायिक अत्याचार या तदर्थवाद नहीं होना चाहिए।"

भारत में न्यायिक सक्रियता क्यों आवश्यक है?

भारत में कानून बनाने का अधिकार विधायिका के पास है और न्यायपालिका को इसमें हस्तक्षेप करने की अनुमति नहीं है। हालाँकि, ऐसे कई उदाहरण हैं जब विधायिका ने कानून पारित करने में विफल रही है, जबकि इसकी आवश्यकता थी। ऐसे मामलों में, न्यायपालिका लोगों को न्याय दिलाने के लिए न्यायिक सक्रियता की अवधारणा का उपयोग कर सकती है, जिसके लिए सक्रियता की आवश्यकता होती है।

प्रश्न नं० 9—सूचना पाने का अधिकार एक नागरिक को संवैधानिक अधिकारों के प्रभावी प्रवर्तन के लिए आवश्यक है। विवेचना कीजिए।

उत्तर— सूचना का अधिकार सरकार के रिकॉर्ड को सार्वजनिक जांच के लिए खोल देता है, जिससे नागरिकों को यह जानकारी देने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण मिल जाता है कि सरकार क्या करती है और कितने प्रभावी ढंग

से काम करती है, जिससे सरकार अधिक जवाबदेह बनती है। अनावश्यक गोपनीयता को हटाकर सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा निर्णय लेने में सुधार होता है।

अधिनियम की धारा 2(ए) में 'उपयुक्त सरकार' की परिभाषा दी गई है। उपयुक्त सरकार का तात्पर्य सूचना के अधिकार से संबंधित किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के साथ सरकार के संबंध से है। केंद्र सरकार, केंद्र शासित प्रदेश प्रशासन या राज्य सरकारें ऐसी शक्ति की स्थापना, गठन, अधिकार, प्रबंधन या वित्तपोषण करती हैं।

इस प्रकार, उपर्युक्त तरीके से केंद्र सरकार/संघ शासित प्रदेश प्रशासन से संबद्ध सार्वजनिक प्राधिकरण की स्थिति में संबंधित सरकार "केंद्र सरकार" है। जबकि उपर्युक्त तरीके से राज्य सरकार से संबद्ध सार्वजनिक प्राधिकरण की स्थिति में उपयुक्त सरकार "राज्य सरकार" है।

सक्षम प्राधिकारी धारा 2(ई), अधिनियम की धारा 2(ई) में 'सक्षम प्राधिकारी' की परिभाषा दी गई है। सक्षम प्राधिकारी वह प्राधिकारी है जो संविधान की आवश्यकताओं के अनुसार काम करने वाली स्वायत्त संस्थाओं को नियंत्रित करता है। यह प्राधिकारी अंततः उन संस्थाओं में आरटीआई अधिनियम को लागू करने के लिए जिम्मेदार है। उदाहरण के लिए, भारत के सर्वोच्च न्यायालय के मामले में, भारत के मुख्य न्यायाधीश सक्षम प्राधिकारी हैं।

सूचना धारा 2(एफ), धारा 2(एफ) में सूचना के अधिकार के तहत प्राप्त की जा सकने वाली जानकारी के प्रकार को निर्दिष्ट किया गया है। "सूचना" शब्द किसी भी रूप में किसी भी सामग्री को संदर्भित करता है, जिसमें शामिल हैं—

अभिलेख (किसी सरकारी निकाय से संबंधित किसी अधिनियम, नीति या निर्णय का कोई नक्शा, चित्र आदि सहित लिखित जानकारी), दस्तावेज (किसी अभिलेख का एक भाग या एक अलग दस्तावेज या किसी विशिष्ट विषय या सरकारी प्राधिकरण के निर्णय पर विवरण देने वाली सूचना का एक भाग), ज्ञापन (ये किसी विशेष विषय पर पत्र या नोट के रूप में हो सकते हैं), ई-मेल, राय (सरकारी रिकॉर्ड के भाग के रूप में सरकारी मामलों में प्रेषित किसी सरकारी एजेंसी या सरकारी कार्मिक की राय), सलाह (आधिकारिक रिकॉर्ड का हिस्सा बनने वाले आधिकारिक मामलों पर सलाह), प्रेस में प्रकाशन (आधिकारिक क्षमता में जारी किए गए आधिकारिक मामलों पर प्रेस ब्रीफिंग या प्रेस नोट), परिपत्र (सरकारी/सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा आधिकारिक क्षमता में प्रसारित परिपत्र जो किसी निश्चित निर्णय या नीति की जानकारी देते हैं), आदेश (सरकारी प्राधिकरण द्वारा आधिकारिक क्षमता में जारी किया गया कोई भी आदेश), लॉगबुक (सार्वजनिक प्राधिकरण की किसी विशेष परियोजना की जानकारी, अवलोकन और आंकड़े युक्त दस्तावेज), अनुबंध (सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा किए गए आधिकारिक अनुबंध और उनकी विशिष्टताएं), रिपोर्ट (परीक्षण परिणाम, जांच रिपोर्ट और किसी निश्चित विषय पर विशेषज्ञ रिपोर्ट सहित आधिकारिक मुद्दों के बारे में रिपोर्ट), पत्र (कार्यवाही पर चर्चा करने वाले पत्र), नमूने (सरकारी प्रयोजनों के लिए खरीदी/उपभोग की जाने वाली वस्तुओं के नमूने), मॉडल (कार्यक्रमों और परियोजनाओं के मॉडल), किसी भी इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में रखा गया डेटा (कंप्यूटर, पेन ड्राइव, सीडी में संग्रहीत डेटा), किसी भी निजी संगठन के बारे में जानकारी जो कोई सार्वजनिक प्राधिकरण किसी अन्य कानून के तहत प्राप्त कर सकता है, अब प्रभावी है।

सार्वजनिक प्राधिकरण धारा 2(एच), 'सार्वजनिक प्राधिकरण' शब्द को धारा 2(एच) के तहत परिभाषित किया गया है। सार्वजनिक प्राधिकरण एक स्वशासी प्राधिकरण, निकाय या संगठन है जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सरकार से जुड़ा होता है। ऐसा प्राधिकरण निम्नलिखित तरीकों से सरकार से जुड़ा हो सकता है—

(1) यह संविधान के तहत स्थापित या निर्मित है। (2) इसकी स्थापना संसद के एक अधिनियम द्वारा की जाती है। (3) इसकी स्थापना राज्य विधानमंडल अधिनियम द्वारा की जाती है। (4) यह उपयुक्त सरकार द्वारा जारी नोटिस या आदेश द्वारा स्थापित या गठित होता है। (5) कोई भी संस्था जो उपयुक्त सरकार के स्वामित्व में हो, प्रबंधित हो, या पर्याप्त रूप से वित्तपोषित हो; (6) कोई भी संस्था जो उपयुक्त सरकार के स्वामित्व में हो, प्रबंधित हो, या पर्याप्त रूप से वित्तपोषित हो।

रिकॉर्ड धारा 2(प), अधिनियम की धारा 2(प) में परिभाषित अनुसार, रिकॉर्ड में निम्नलिखित में से कुछ भी शामिल हो सकता है—

दस्तावेज—यह किसी भी सूचना के टुकड़े या किसी निश्चित विषय पर जानकारी देने वाले दस्तावेजों के संग्रह को संदर्भित कर सकता है।

पाण्डुलिपि—अपने मूल रूप में हस्तलिखित पाठ, मानचित्र या रेखाचित्र।

फाइल—किसी निश्चित विषय पर कागजात या संबंधित दस्तावेजों का संग्रह। माइक्रोफिल्म, माइक्रोफिच और फ़ैक्सीमिली प्रतिलिपि के रूप में डिजिटल दस्तावेज। इलेक्ट्रॉनिक दस्तावेजों को छवियों के रूप में पुनरुत्पादित किया जाता है। कंप्यूटर या अन्य डिवाइस द्वारा निर्मित या उत्पन्न कोई भी अतिरिक्त सामग्री

सूचना का अधिकार धारा 2(जे), 'सूचना का अधिकार' शब्द को धारा 2(र) में परिभाषित किया गया है। यह आरटीआई अधिनियम के तहत उपलब्ध जानकारी प्राप्त करने के अधिकार को संदर्भित करता है जो किसी भी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा रखी या नियंत्रित की जाती है। इन अधिकारों में शामिल हैं—

निरीक्षण का अधिकार—

यह कागजात, काम और अभिलेखों की जांच और छानबीन करने के अधिकार को संदर्भित करता है। इस मामले में, कोई दस्तावेज या दस्तावेज की प्रतिलिपि प्राप्त नहीं की जाती है, और जानकारी को केवल देखा और जांचा जाता है।

नोट्स, अंश आदि लेने का अधिकार— नोट्स या अंश लेने का मतलब है कागजात से खास जानकारी को नोट करना। कागजात से महत्वपूर्ण जानकारी यहाँ लिखी जाती है, और दस्तावेजों से प्रामाणिक अंश भी कॉपी किए जा सकते हैं।

सत्यापित सामग्री के नमूने प्राप्त करने का अधिकार— किसी नागरिक को सरकार द्वारा खरीदी गई सामग्री या सरकार द्वारा उपयोग की जाने वाली सामग्री के सत्यापित नमूने प्राप्त करने का अधिकार है।

इलेक्ट्रॉनिक प्रारूप में जानकारी प्राप्त करने का अधिकार—जब मांगी गई सूचना कंप्यूटर या अन्य इलेक्ट्रॉनिक उपकरण पर दर्ज की जाती है, तो सूचना का अधिकार अधिनियम नागरिकों को इसे इलेक्ट्रॉनिक रूपों में प्राप्त करने की अनुमति देता है, जैसे टेप, वीडियो कैसेट, फ्लॉपी डिस्क, डिस्कट, प्रिंटआउट आदि।

प्रश्न नं 10— निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

उत्तर— (1) लोकनीति का उल्लंघन— सार्वजनिक नीति के उल्लंघन का तात्पर्य यह है कि भले ही किसी निश्चित व्यवहार को कानून द्वारा स्पष्ट रूप से मान्यता न दी गई हो, लेकिन अदालतों ने पहले भी इसे बरकरार रखा है। जब किसी कर्मचारी को संवैधानिक या वैधानिक अधिकार का प्रयोग करने के लिए निकाल दिया जाता है, तो सार्वजनिक नीति का उल्लंघन हो सकता है।

सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी

प्राथमिक टैब—सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी (या बर्खास्तगी) के लिए कार्रवाई से बर्खास्त कर्मचारी को गलत तरीके से बर्खास्तगी के लिए अपने पूर्व नियोक्ता के खिलाफ कार्रवाई करने का अधिकार मिलता है। हालाँकि रोजगार संबंध आम तौर पर इच्छा पर आधारित होते हैं, और इसलिए किसी भी पक्ष द्वारा बिना किसी कारण के समाप्त किए जा सकते हैं, गलत तरीके से बर्खास्तगी के लिए यह कार्रवाई इच्छा सिद्धांत के लिए एक संकीर्ण अपवाद के रूप में कार्य करती है।

सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी का दावा करने के लिए वादी को यह दिखाना होगा कि—

- (1) स्पष्ट सार्वजनिक नीति अस्तित्व में थी और वह राज्य या संघीय संविधान, कानून या प्रशासनिक विनियमन, या सामान्य कानून में अभिव्यक्त होती थी;
- (2) वादी की बर्खास्तगी जैसी परिस्थितियों में कर्मचारियों को बर्खास्त करने से सार्वजनिक नीति खतरे में पड़ जाएगी;
- (3) वादी की बर्खास्तगी सार्वजनिक नीति से संबंधित आचरण से प्रेरित थी; तथा
- (4) नियोक्ता के पास बर्खास्तगी के लिए कोई वैध व्यावसायिक औचित्य नहीं था।

कर्मचारी आमतौर पर निम्नलिखित कारणों से नौकरी से निकाले जाने के बाद यह दावा कर सकते हैं—

- (1) कानूनी अधिकार का प्रयोग करते हुए,
- (2) कोई अवैध कार्य करने से इंकार करना, या
- (3) अवैध आचरण की रिपोर्ट करना।

उदाहरण के लिए, कैलिफोर्निया ने माना है कि अप्रवासन सुधार और नियंत्रण अधिनियम (आईआरसीए) का उल्लंघन करते हुए, बिना दस्तावेज वाले कर्मचारियों को नियुक्त करने की कंपनी की प्रथा की रिपोर्ट करने के लिए कर्मचारियों को बर्खास्त करना, सार्वजनिक नीति का उल्लंघन करते हुए गलत तरीके से बर्खास्तगी थी। ऐसा इसलिए है क्योंकि आईआरसीए निम्नलिखित सार्वजनिक नीतियों पर आधारित था—

- (1) दस्तावेज वाले श्रमिकों को रोजगार भेदभाव से बचाना, और
- (2) सभी प्रमाणित श्रमिकों को उन अनिर्धारित श्रमिकों से प्रतिस्पर्धा से बचाना, जिनकी कम मजदूरी स्वीकार करने की इच्छा से श्रमिक संघों की प्रभावशीलता कम हो जाएगी।

परिणामस्वरूप, अधिनियम के उल्लंघन की रिपोर्ट करने वाले कर्मचारियों को नौकरी से निकालने से अधिनियम के नीतिगत उद्देश्यों को सीधे तौर पर खतरा पैदा हो जाएगा।

चूँकि सार्वजनिक नीति के उल्लंघन में गलत तरीके से बर्खास्तगी को आम तौर पर टोर्ट कानून के तहत मान्यता दी जाती है, इसलिए अदालतों ने वादी को प्रतिपूरक और दंडात्मक हर्जाने की वसूली की अनुमति दी है। हालाँकि, अर्कासस जैसे कुछ अधिकार क्षेत्र इस कार्रवाई को विशेष रूप से अनुबंध कानून पर आधारित मानते हैं, और परिणामस्वरूप, दंडात्मक हर्जाने की वसूली की अनुमति नहीं देते हैं।

(2) नैसर्गिक न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन— प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन तब होता है जब कोई न्यायाधिकरण किसी मामले का फैसला किसी ऐसे आधार पर करता है जो पक्षों ने नहीं उठाया या विचारित नहीं किया है। इसके अलावा, अगर मुद्दों पर पक्षों द्वारा किए गए तर्कों और प्रस्तुतियों पर विचार किए बिना फैसला किया जाता है, तो भी यह प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन माना जाएगा। हालाँकि, अगर निर्णायक ने किसी प्रस्तुतिकरण पर विचार न करने की वजह बताई है और यह वजह सद्भावनापूर्ण है, तो यह प्राकृतिक न्याय का उल्लंघन नहीं होगा। ऐसा तब हो सकता है जब प्रस्तुतिकरण गलती से छूट गए हों या इतने अविश्वसनीय हों कि निर्णायक को अपने निष्कर्षों को स्पष्ट रूप से बताने की जरूरत न लगे।

प्राकृतिक न्याय के कुछ और उदाहरण—

- (1) अनुशासनात्मक जांच के बिना किसी कर्मचारी की सेवाओं को खत्म करना।

- (2) किसी व्यक्ति के बारे में किसी भी कारण से पूर्व राय बनाना
- (3) किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर फैसला करना
- (4) किसी समुदाय या संस्था के लिए पूर्वाग्रह पर आधारित नियम या कानून बनाना
- (5) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन होने पर, वैकल्पिक उपाय के तौर पर राज्य के सर्वोच्च न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया जा सकता है।

(3) राज्य के संविदात्मक दायित्व— राज्य का संविदात्मक दायित्व, किसी समझौते के परिणामस्वरूप लागू होने वाले कानूनी रूप से मान्य दायित्वों को संदर्भित करता है। संविदात्मक दायित्व, अनुबंध के नियमों और शर्तों में निर्धारित जिम्मेदारियों और कर्तव्यों को कहते हैं, जिन्हें अनुबंध में शामिल पक्ष कानूनी रूप से पूरा करने के लिए सहमत होते हैं। ये दायित्व, सहमत लक्ष्यों को पूरा करने के लिए हर पक्ष को उठाए जाने वाले विशिष्ट कार्यों को निर्देशित करते हैं। संविदात्मक दायित्व, किसी भी अनुबंध की रीढ़ होते हैं। अगर इन दायित्वों को स्पष्ट रूप से बताया जाए, तो इससे विवादों को रोका जा सकता है और मुद्दों को जल्दी से सुलझाया जा सकता है। संविधान के अनुच्छेद 299 में सरकार पर संविदात्मक दायित्व के साथ बाध्यता की औपचारिकताओं से जुड़ी बातें कही गई हैं। अगर कोई लोक प्राधिकरण, कानून द्वारा उसे सौंपे गए कर्तव्य को पूरा करने में विफल रहता है, तो उसे परमादेश रिट जारी की जाती है। संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत उपचार सार्वजनिक कानून उपचार हैं, जिनकी मदद से यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सार्वजनिक प्राधिकरण अपने संबंधित क्षेत्रों में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करें।

B.A.LL.B.-10th Sem. Paper-II Intellectual Property Law

प्रश्न न० 1— बौद्धिक सम्पत्ति क्या है? बौद्धिक सम्पत्ति की प्रकृति एवं विवेचना कीजिए।

उत्तर— बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) किसी व्यक्ति/कंपनी के स्वामित्व वाली अमूर्त संपत्ति से जुड़े अधिकार हैं और बिना सहमति के उपयोग के खिलाफ संरक्षित हैं। इस प्रकार, बौद्धिक संपदा के स्वामित्व से संबंधित अधिकारों को बौद्धिक संपदा अधिकार कहा जाता है। इन अधिकारों का उद्देश्य ट्रेडमार्क, पेटेंट या कॉपीराइट किए गए कार्यों के रचनाकारों को उनकी रचनाओं से लाभ उठाने की अनुमति देकर बौद्धिक संपदा (मानव बुद्धि की रचनाएँ) की रक्षा करना है। मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (UDHR) भी अनुच्छेद 27 के तहत बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लेख करती है जिसमें कहा गया है कि “प्रत्येक व्यक्ति को किसी भी वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक उत्पादन से उत्पन्न नैतिक और भौतिक हितों की सुरक्षा का अधिकार है, जिसका वह लेखक है।”

बौद्धिक संपदा का अर्थ और प्रकृति

बौद्धिक संपदा (आईपी) एक अमूर्त संपत्ति है जो मानव बुद्धि के माध्यम से अस्तित्व में आती है। यह मन की रचनाओं या मानव बुद्धि के उत्पादों जैसे आविष्कारों, डिजाइनों, साहित्यिक और कलात्मक कार्यों, वाणिज्य में उपयोग किए जाने वाले प्रतीकों, नामों और छवियों को संदर्भित करता है।

विश्व बौद्धिक संपदा संगठन की स्थापना करने वाले अभिसमय में कहा गया है कि ‘बौद्धिक संपदा’ में निम्नलिखित से संबंधित अधिकार शामिल होंगे: —

- (1) साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्य,
- (2) प्रदर्शन कलाकारों के प्रदर्शन, फोनोग्राम और प्रसारण,
- (3) मानव प्रयास के सभी क्षेत्रों में आविष्कार,
- (4) वैज्ञानिक खोजें,
- (5) औद्योगिक डिजाइन,
- (6) ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम,
- (7) अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध संरक्षण, और
- (8) औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न सभी अन्य अधिकार।

बौद्धिक संपदा की अन्य श्रेणियों में भौगोलिक संकेत, तकनीकी जानकारी या अघोषित सूचना के संबंध में अधिकार, तथा एकीकृत सर्किट के लेआउट डिजाइन शामिल हैं।

सामण्ड के अनुसार बौद्धिक सम्पदा वे भौतिक वस्तुएँ हैं जो विधि द्वारा मानव प्रवीणता और श्रम के अभौतिक उत्पाद के रूप में मान्यता प्राप्त करती है।

लॉक का कथन कि शरीर, शारीरिक श्रम और हस्त कौशल व्यक्ति के सम्पूर्ण विश्व के विरुद्ध अपवर्जी स्वतत्त्व है। लॉक के सिद्धान्त जिन वस्तुओं को रेखांकित करना चाहते हैं, वे हैं—

- (1) मनुष्य का शरीर उसकी सम्पत्ति है, और
- (2) उसके शरीर के श्रम तथा हाथों किये गये कार्य उचित रूप से उसी के हैं।

चूँकि बुद्धि व्यक्ति के शरीर और व्यक्ति अपजर्जी स्वतत्त्व माना जा सकता है।

ब्लैकस्टोन के अनुसार “अन्य मूर्त सम्पत्तियों की भाँति बौद्धिक सम्पदा, जिसका स्वरूप अमूर्त होता है, को राज्य ने राज्य ने विधि के माध्यम से सम्पत्ति की सामान्य व्याख्या के अन्तर्गत मान्यता प्रदान की है। जब कोई व्यक्ति अपनी विवेकशील क्षमता के प्रयोग से किसी मौलिक कृति का उत्पादन करता है तो वह अपनी इच्छानुसार उस मौलिक कृति के व्ययन का अधिकार रखना चाहता है और उसके द्वारा की गई व्यवस्था से भिन्न कोई प्रयत्न उसके अधिकारों पर अतिक्रमण प्रतीत होता है।”

प्रकृति— बौद्धिक संपदा (आईपी) संपत्ति की एक श्रेणी जिसमें मानव बुद्धि की अमूर्त रचनाएँ शामिल हैं, जैसे कि आविष्कार, साहित्यिक और कलात्मक कार्य, डिजाइन, प्रतीक, नाम और वाणिज्य में उपयोग की जाने वाली छवियाँ। पेटेंट, कॉपीराइट और ट्रेडमार्क के माध्यम से कानून द्वारा संरक्षित किया जाता है, जो लोगों को उनकी रचनाओं से मान्यता या वित्तीय लाभ अर्जित करने की अनुमति देता है। पेटेंट प्रणाली का उद्देश्य ऐसे माहौल को बढ़ावा देकर नवोन्मेषकों के हितों को सार्वजनिक हित के साथ संतुलित करना है जहाँ रचनात्मकता और नवाचार पनप सकें।

आईपी को आम तौर पर गैर-भौतिक संपत्ति के रूप में परिभाषित किया जाता है जो मूल विचार का उत्पाद है। आईपी अधिकार अमूर्त गैर-भौतिक इकाई के बजाय विचारों की भौतिक अभिव्यक्तियों या अभिव्यक्तियों के नियंत्रण को घेरते हैं। उदाहरण के लिए, ट्रेडमार्क स्वामी की एक विपणन योग्य और वाणिज्यिक संपत्ति है जो उन्हें हमेशा के लिए उपलब्ध है, कॉपीराइट के विपरीत जिसकी एक सीमित समय अवधि होती है।

अलग-अलग देश अलग-अलग तरह के आईपी को अलग-अलग तरीकों से पहचानते और संरक्षित करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में ट्रेडमार्क से जुड़े किसी भी मुद्दे को ट्रेडमार्क अधिनियम, 1999 के तहत निपटाया जाता है।

बौद्धिक सम्पदा का वर्गीकरण— बौद्धिक संपदा से तात्पर्य ऐसे कानूनी अधिकारों से है जो साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक और औद्योगिक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न होते हैं। सामान्यतः, कार्यक्षेत्र की दृष्टि से बौद्धिक संपदा को निम्नलिखित दो वर्षों में विभाजित किया जाता है

(1) कॉपीराइट और संबंधित अधिकार—साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कार्य कॉपीराइट के अंतर्गत आते हैं। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 13(1) के अनुसार, कॉपीराइट निम्नलिखित वर्षों के कार्यों में विद्यमान है—

(क) साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय और कलात्मक कार्य।

(ख) चलचित्र फिल्मय और

(ग) मूल्यांकन।

संबद्ध अधिकार उन अधिकारों को कहते हैं जो कॉपीराइट के समान होने के साथ-साथ कॉपीराइट से संबंधित भी होते हैं। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 37 और 38 के अंतर्गत क्रमशः प्रसारण संगठन और प्रस्तुतकर्ता के अधिकारों के संबंध में प्रावधान किया गया था, जो संबद्ध अधिकारों की श्रेणी में आते हैं।

(2) औद्योगिक संपत्ति— औद्योगिक संपत्ति की श्रेणी में निम्नलिखित आते हैं—

(i) पेटेंट

(ii) औद्योगिक डिजाइन

(iii) ट्रेडमार्क

(iv) भौगोलिक संकेत

अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन के अनुच्छेद। खंड (2) के अंतर्गत अनुचित प्रतिस्पर्धा के दमन को औद्योगिक संपत्ति संरक्षण के क्षेत्र में शामिल किया गया है। कोई भी प्रतिस्पर्धी कार्य जो औद्योगिक और वाणिज्यिक मामलों में निष्पक्ष व्यवहार के विपरीत हो, अनुचित प्रतिस्पर्धा कहलाता है।

इस प्रकार, 'औद्योगिक संपत्ति' शब्द में मुख्य रूप से आविष्कार और औद्योगिक डिजाइन शामिल हैं। इसके अलावा, ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम जिसमें स्रोत और मूल नाम का संकेत और अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध सुरक्षा शामिल है, को भी शामिल किया गया है।

औद्योगिक संपत्ति के विषय—वस्तु के अंतर्गत शामिल किया गया है।

इसके अलावा कला, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी तथा संचार क्रांति के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति के परिणामस्वरूप बौद्धिक संपदा के अंतर्गत नए विषय— कम्प्यूटर प्रोग्राम, भौगोलिक संकेत, नई पादप किस्मों की सुरक्षा एवं कृषकों के अधिकार, जैव विविधता का संरक्षण, गोपनीय सूचना एवं सूचना प्रौद्योगिकी आदि से संबंधित अधिकार अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की संस्तुतियों के आधार पर शामिल किए गए हैं। कॉपीराइट एवं गोपनीय सूचना बौद्धिक संपदा की विशिष्ट प्रकृति को और अधिक स्पष्ट करते हैं। ट्रेडमार्क का बौद्धिक सृजनात्मकता से कोई निकट संबंध नहीं है, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि पेटेंट, डिजाइन एवं कॉपीराइट अनुप्रयुक्त कला, प्रौद्योगिकी एवं ललित कला के क्षेत्र में बौद्धिक प्रयास एवं सृजनात्मक गतिविधि का परिणाम हैं। एक ओर लेखकों, आविष्कारकों, वैज्ञानिकों आदि के माध्यम से नए मौलिक विचार एवं आविष्कार अस्तित्व में आ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर बौद्धिक संपदा के प्रकार एवं दायरा निरंतर बढ़ रहा है।

प्रश्न न0 2— बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के संरक्षण में विश्व बौद्धिक सम्पत्ति संगठन के योगदान की व्याख्या कीजिए।

उत्तर— सामान्य अर्थ में अधिकार का तात्पर्य कतिपय क्षेत्र के अन्तर्गत अनुज्ञात कार्य के मानक से है। विधिक तौर पर इसका अर्थ विधि द्वारा अनुज्ञात कार्य के मानक से लिया जाता है।

आस्टिन के अनुसार, एक व्यक्ति का अधिकार तब उत्पन्न होता है जब कोई दूसरा या दूसरे लोग उसके सम्बन्ध में कुछ करने या कुछ न करने से विरत रहने के लिए विधि द्वारा बाध्य या दायित्वाधीन हों। **हालेण्ड के अनुसार,** विधिक अधिकार राज्य की अनुमति तथा सहयोग द्वारा दूसरे कार्यों को नियंत्रित करने की किसी व्यक्ति में निहित क्षमता है। **ग्रे के अनुसार,** समाज द्वारा एक या अधिक व्यक्तियों पर विधिक अधिकार कर्तव्य लागू करने के फलस्वरूप जब किसी व्यक्ति को दूसरे या दूसरों को कोई कार्य करने या न करने पर बाध्य करने की क्षमता प्राप्त होती है तो ऐसी क्षमता को विधिक अधिकार कहते हैं। अधिकार हितों से सम्बन्धित होते हैं।

सामण्ड के अनुसार, मनुष्य के साम्प्रतिक अधिकारों का समुच्चय उसकी सम्पत्ति निर्मित करती है। जिसमें उसकी आस्तियाँ और विभिन्न अर्थों में कोई सम्पत्ति सम्मिलित माने जाते हैं, दूसरी ओर मनुष्य के व्यक्तिगत हितों का योग उसकी प्रास्थिति और व्यक्तिगत दशाओं का निर्माण करता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति द्वारा अपने स्वामित्व में रखी गई भूमि या चल सम्पत्ति या पेमेन्ट अधिकार या व्यवसाय का गुडविल या कम्पनी में अंशपूँजी और अपने प्रति वर्ष के देनदारी सभी उसकी सम्पत्ति या सम्पदा से सम्बन्धित हैं। साम्प्रतिक अधिकार को निकाल देने के बाद जो बच जाता है, वह सब अधिकार है। कुछ लोगों का विचार है कि साम्प्रतिक अधिकार अन्तरणीय होते हैं, जबकि व्यक्ति अधिकार अन्तरणीय नहीं होते हैं। वर्तमान समय में यह प्रवृत्ति बढ़ रही है कि व्यक्ति अधिकारों के संरक्षण के लिये सम्पत्ति के तत्व पर बल दिया जाए, जिस पर संरक्षण को आधारित किया जा सके।

विधिक अर्थ में, बौद्धिक सम्पदा से तात्पर्य अधिकारों के समूह से है जिसे विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को सम्पदा के रूप में इन अधिकारों का प्रयोग करने का अनन्य अधिकार प्राप्त हो।

विधिक अर्थ में बौद्धिक सम्पदा से तात्पर्य अधिकारों के समूह से है जिसे विधि द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को सम्पदा के रूप में इन अधिकारों का प्रयोग करने का अनन्य अधिकार प्राप्त होता है। जिस प्रकार मूर्त सम्पत्ति के स्वामी को सम्पत्ति पर अधिकार प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार बौद्धिक सम्पदा के स्वामी को भी वही अधिकार प्राप्त है। इस प्रकार बौद्धिक सम्पदा का स्वामी बौद्धिक को समनुदेशित, अभ्यर्पित, अन्तरित या वसीयत करने का अधिकार रखता है। बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की विशिष्ट प्रकृति होती है इस कारण इसको पृथक विधान द्वारा मान्यता एवं संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन को स्थापित करने वाले अभिसमय के अनुच्छेद (VII) के अनुसार बौद्धिक सम्पदा में निम्न से सम्बन्धित है—

- (1) साहित्यिक, कलात्मक और वैज्ञानिक कृतियाँ,
- (2) वैज्ञानिक खोजें, औद्योगिक डिजाइन
- (3) ट्रेडमार्क, सेवा चिह्न, वाणिज्यिक नाम और पदनाम,
- (4) मानवीय प्रयासों के सभी क्षेत्रों में आविष्कार,
- (5) अनुचित प्रतिस्पर्धा के विरुद्ध संरक्षण, और
- (6) औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक गतिविधि से उत्पन्न सभी अन्य अधिकार।

बौद्धिक सम्पदा अधिकार वे विधिक अधिकार होते हैं जो मानवीय बुद्धि के उत्पादों के उपयोग को विनिमित्त करते हैं। यह अधिकार स्वामी के स्पष्ट अनुमोदन के बिना किसी अन्य व्यक्ति किसी किसी अन्य व्यक्ति को विषय-वस्तु का लाभ उठाने को निषेध करती है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार लेखकों, आविष्कारों आदि की बौद्धिक रचनात्मकता और आविष्कारशीलता को प्रोत्साहित, सम्बधिति एवं संरक्षित करता है और गुणवत्तायुक्त माल और सेवाओं के विपणन को सरल बनाते हुए उपभोक्ताओं के हितों का भी संरक्षण करता है।

इस तरह बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के अन्तर्गत उन विचारों, व्यवहार-ज्ञान, गोपनीय जानकारी आदि को संरक्षण प्रदान किया जाता है जो वाणिज्यिक तौर पर मूल्यांकन होते हैं।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की प्रकृति— बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की प्रकृति प्राथमिक तौर पर नकारात्मक होती है। बौद्धिक सम्पदा अधिकार ऐसे अधिकार हैं जिनके आधार पर प्रतिलिप्यधिकार स्वामी के अतिरिक्त अन्य के द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकार चूँकि विचार का स्वतत्वाधिकार है, इसलिए यह विचार के साथ ही गतिमान रहता है और जिस वस्तु को विचार आच्छदित करता है उसे यह अधिकार भी आच्छदित करता है अर्थात् यह विचार, जो एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार की विषय-वस्तु है, किसी मूर्त वस्तु पर अनुप्रयुक्त होता है, तो ऐसी वस्तु प्रश्नगत बौद्धिक सम्पदा अधिकार से आच्छदित होगी। यदि एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार को एक भौतिक वस्तु में निहित माना जाय तो इसके इस तरह निहित होने का कारण सिर्फ यह है कि जिस विचार को यह अधिकार अपनी विषय-वस्तु के रूप में आच्छदित किये हैं वही विचार इस भौतिक वस्तु में अनप्रयुक्त है।

इस प्रकार देखते हैं भले ही एक बौद्धिक सम्पदा अधिकार एक भौतिक वस्तु में निहित हो, इसे उस भौतिक वस्तु के रूप में नहीं पहचाना जा सकता, बल्कि इसे उस विचार से जाना जा सकता है अर्थात् वह विचार जो इस अधिकार की विषय-वस्तु है। कुछ सकारात्मक अधिकार अधिकार भी विधि द्वारा बौद्धिक सम्पदा अधिकारों गये हैं, जैसे—अधिनियम द्वारा अपेक्षित शर्तों का पालन किये जाने पर प्रतिलिप्यधिकार को समनुदेशित या अनुज्ञापित करने का अधिकार, पेटेंट प्राप्त करने का अधिकार, ट्रेडमार्क के रजिस्ट्रीकरण का अधिकार तथा अतिलघन की स्थिति में उपचार प्राप्त करने का अधिकार आदि।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन— विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (डब्ल्यूआईपीओ) का घटक दस्तावेज, डब्ल्यूआईपीओ कन्वेंशन, 14 जुलाई 1967 को स्टॉकहोम में हस्ताक्षरित किया गया था, जो 1970 में लागू हुआ और 1979 में संशोधित किया गया। डब्ल्यूआईपीओ एक अंतर-सरकारी संगठन है, जो 1974 में संयुक्त राष्ट्र संगठन प्रणाली की विशेष एजेंसियों में से एक बन गया।

WIPO की शुरुआत 1883 और 1886 में हुई थी, जब औद्योगिक संपत्ति के संरक्षण के लिए पेरिस कन्वेंशन और साहित्यिक और कलात्मक कार्यों के संरक्षण के लिए बर्न कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए गए थे। दोनों कन्वेंशन में एक 'अंतर्राष्ट्रीय ब्यूरो' की स्थापना का प्रावधान था। 1893 में दोनों ब्यूरो को एकीकृत कर दिया गया और 1970 में WIPO कन्वेंशन के आधार पर विश्व बौद्धिक संपदा संगठन द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया।

डब्ल्यूआईपीओ के दो मुख्य उद्देश्य हैं—

- (i) विश्व भर में बौद्धिक संपदा के संरक्षण को बढ़ावा देना; और
- (ii) डब्ल्यूआईपीओ द्वारा प्रशासित संधियों द्वारा स्थापित बौद्धिक संपदा संघों के बीच प्रशासनिक सहयोग सुनिश्चित करना। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए, डब्ल्यूआईपीओ, यूनियनों के प्रशासनिक कार्यों को करने के अलावा, कई गतिविधियों को भी अंजाम देता है, जिनमें शामिल हैं—
- (i) मानक गतिविधियाँ, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय संधियों के समापन के माध्यम से बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण और प्रवर्तन के लिए मानदंडों और मानकों को निर्धारित करना शामिल है;
- (ii) कार्यक्रम गतिविधियाँ, जिसमें बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में राज्यों को कानूनी और तकनीकी सहायता शामिल है;
- (iii) अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण और मानकीकरण गतिविधियाँ, जिसमें पेटेंट, ट्रेडमार्क और औद्योगिक डिजाइन प्रलेखन के संबंध में औद्योगिक संपत्ति कार्यालयों के बीच सहयोग शामिल है; और

(iv) पंजीकरण और दाखिल गतिविधियां, जिसमें आविष्कारों के लिए पेटेंट के लिए अंतर्राष्ट्रीय आवेदनों और चिह्नों और औद्योगिक डिजाइनों के पंजीकरण से संबंधित सेवाएं शामिल हैं।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन के कार्य—डब्ल्यूआईपीओ के मुख्य कार्यों में शामिल हैं—

- (1) पूरे विश्व में आईपी संरक्षण में सुधार लाने तथा इस क्षेत्र में राष्ट्रीय कानून को सुसंगत बनाने के लिए अभियान विकास में सहायता करना,
- (2) बौद्धिक संपदा संरक्षण पर अंतर्राष्ट्रीय समझौतों पर हस्ताक्षर,
- (3) पेरिस और बर्न यूनियनों के प्रशासनिक कार्यों को लागू करना ,
- (4) बौद्धिक संपदा के क्षेत्र में तकनीकी और कानूनी सहायता प्रदान करना,
- (5) जानकारी एकत्रित करना और उसका प्रसार करना, अनुसंधान करना और उनके परिणाम प्रकाशित करना,
- (6) अंतर्राष्ट्रीय आईपी संरक्षण को सुविधाजनक बनाने वाली सेवाओं के काम को सुनिश्चित करना,
- (7) कोई अन्य उपयुक्त कार्रवाई लागू करना।

बहुपक्षीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों का प्रशासन करना डब्ल्यूआईपीओ द्वारा किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, जिसमें संधियों को जमा करना, राज्यों के संघर्ष निपटान के साधन, संधियों की समीक्षा सुनिश्चित करना आदि शामिल हैं। WIPO वर्ल्डवाइड अकादमी 1998 से आईपी सुरक्षा के क्षेत्र में मानव संसाधन तैयार कर रही है। यह अकादमी एक दूरस्थ शिक्षा केंद्र प्रदान करती है जहाँ आप इंटरनेट की मदद से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। WIPO मध्यस्थता और मध्यस्थता केंद्र 1994 में बनाया गया था, यह विवादों को निपटाने/समाधान करने में मदद करता है।

विश्व बौद्धिक सम्पदा संगठन की सदस्यता—विश्व बौद्धिक संपदा संगठन (WIPO) संयुक्त राष्ट्र की एक विशेष एजेंसी है जिसका उद्देश्य एक संतुलित अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपदा (IP) प्रणाली विकसित करना है। WIPO का मिशन यह सुनिश्चित करके नवोन्मेषकों और रचनाकारों का समर्थन करना है कि उनके विचार सुरक्षित रूप से बाजार तक पहुँच सकें और जीवन में सुधार हो सकें। WIPO ने 193 सदस्य देश, जिनमें 190 संयुक्त राष्ट्र सदस्य देश, कुक आइलैंड्स, होली सी और नियू शामिल हैं फिलिस्तीन को स्थायी पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है, तथा अन्य संगठनों को डब्ल्यूआईपीओ बैठकों में आधिकारिक पर्यवेक्षक का दर्जा प्राप्त है।

सदस्य बनने के लिए, किसी राज्य को महानिदेशक के पास अनुसमर्थन या परिग्रहण का एक दस्तावेज जमा करना होगा। सदस्य राज्य निर्णय लेने वाले निकायों के माध्यम से संगठन की दिशा, बजट और गतिविधियों को निर्धारित करते हैं। अधिकांश संयुक्त राष्ट्र संगठनों के विपरीत, WIPO सदस्य राज्यों से स्वैच्छिक योगदान पर बहुत अधिक निर्भर नहीं है, और इसके बजाय अपने बजट का 95: अपनी वैश्विक सेवाओं से संबंधित शुल्क से प्राप्त करता है।

प्रश्न न0 3— पेटेंट प्राप्त करने की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। पेटेंट अतिलंघन की कार्यवाही में प्रतिवादी को कौन-कौन से बचाव उपलब्ध है?

उत्तर— पेटेंट अधिनियम में पेटेंट प्राप्त करने की प्रक्रिया निम्न चरणों में व्यवस्थित है—

- (1) आवेदन निवेदित करना
- (2) आवेदन का परीक्षण करना
- (3) पूर्ण विनिर्देश के प्रतिगृहीत करने पर विरोध
- (4) पक्षकारों की सुनवाई
- (5) पेटेंट का अनुदान एवं मुद्रण

अधिनियम की धारा 6 वर्णन करती है कि कौन-कौन व्यक्ति पेटेंट हेतु आवेदन कर सकते हैं—

- (1) ऐसे व्यक्ति जो स्वयं को सत्य एवं प्रथम आविष्कारक होने का दावा करते हैं।
- (2) अथवा उनका समनुदेशिनी

- (3) किसी मृतक व्यक्ति के विधिक प्रतिनिधि जो स्वयं आवेदन कर सकता है अपना मृत्यु के पूर्व

1.आवेदन सम्बन्धी उपबन्ध— (धारा 7)— (1) पेटेंट के लिए प्रत्येक आवेदन केवल एक आविष्कार के लिए होगा और निर्धारित प्रपत्र में किया जाएगा तथा पेटेंट कार्यालय में दाखिल किया जाएगा।

(क) पेटेंट सहयोग संधि के अधीन पेटेंट के लिए प्रत्येक अंतरराष्ट्रीय आवेदन, जो भारत को नामित करते हुए फाइल किया जा सकता है, इस अधिनियम के अधीन आवेदन समझा जाएगा, यदि भारत में नियंत्रक के समक्ष भी एक तत्स्थानी आवेदन फाइल किया गया है।,

(ख) उपधारा (1क) में निर्दिष्ट आवेदन की फाइलिंग तारीख और पेटेंट कार्यालय द्वारा अभिहित कार्यालय या निर्वाचित कार्यालय के रूप में संसाधित इसकी पूर्ण विशिष्टता, पेटेंट सहयोग संधि के अधीन दी गई अंतर्राष्ट्रीय फाइलिंग तारीख होगी।,

(2) जहां आवेदन आविष्कार के लिए पेटेंट के लिए आवेदन करने के अधिकार के समनुदेशन के आधार पर किया जाता है, वहां आवेदन के साथ, या आवेदन भरने के पश्चात् विहित अवधि के भीतर, आवेदन करने के अधिकार का सबूत प्रस्तुत किया जाएगा।

(3) इस धारा के अधीन प्रत्येक आवेदन में यह कहा जाएगा कि आवेदक के पास आविष्कार है और वह उस व्यक्ति का नाम बताएगा जो सच्चा और प्रथम आविष्कारक होने का दावा करता है और जहां ऐसा दावा करने वाला

व्यक्ति आवेदक या आवेदकों में से एक नहीं है, वहां आवेदन में यह घोषणा होगी कि आवेदक का मानना है कि इस प्रकार नामित व्यक्ति सच्चा और प्रथम आविष्कारक है।

(4) प्रत्येक ऐसे आवेदन के साथ (जो अभिसमय आवेदन या भारत को नामित करने वाली पेटेंट सहयोग संधि के अधीन दाखिल आवेदन नहीं हैं) अनंतिम या पूर्ण विनिर्देश संलग्न किया जाएगा।

प्रक्रिया— पेटेंट प्राप्त करने के लिए आवेदन पत्र विहित फार्म वर विहित फीस के साथ उचित कार्यालय में जमा किया जाना चाहिए। यदि इस आवेदन-पत्र के साथ पूर्ण विनिर्देश नहीं जमा किया गया है तो आवेदन देने के 12 महीने के अन्दर पूर्ण विनिर्देश जमा कर देना चाहिए यदि ऐसा नहीं किया जाता तो आवेदन पत्र रद्द मान लिया जायेगा।

आवेदन की परीक्षा— (1) जब धारा 11ख की उपधारा (1) या उपधारा (3) के अधीन निर्धारित तरीके से पेटेंट के लिए आवेदन के संबंध में जांच का अनुरोध किया गया है, तो आवेदन और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेजों को नियंत्रक द्वारा यथाशीघ्र परीक्षक को निम्नलिखित विषयों के संबंध में रिपोर्ट देने के लिए भेजा जाएगा, अर्थात्—

(क) क्या आवेदन पत्र और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेज इस अधिनियम और इसके अधीन बनाए गए किसी नियम की अपेक्षाओं के अनुरूप हैं;

(ख) क्या आवेदन के अनुसरण में इस अधिनियम के अधीन पेटेंट प्रदान करने पर आपत्ति का कोई विधिपूर्ण आधार है;

(ग) धारा 13 के अधीन की गई जांच का परिणाम; और

(घ) कोई अन्य विषय जो विहित किया जा सके।

(2) वह परीक्षक, जिसे उपधारा (1) के अधीन आवेदन और विनिर्देश तथा उससे संबंधित अन्य दस्तावेज निर्दिष्ट किए गए हैं, सामान्यतया नियंत्रक को ऐसी अवधि के भीतर रिपोर्ट देगा, जो विहित की जाए।

एक बार जब पेटेंट आवेदन दाखिल और प्रकाशित हो जाता है, तो अगला कदम पेटेंट आवेदन की जांच करना होगा। आवेदक को आवेदन दाखिल करने की तारीख या प्राथमिकता तिथि जो भी पहले हो, से छड़तालीस महीने के भीतर जांच के लिए अनुरोध दायर करना होगा।

आपत्ति (धारा 9 25(1))— (1) जहां पेटेंट के लिए आवेदन प्रकाशित किया गया है, किन्तु पेटेंट प्रदान नहीं किया गया है, वहां कोई भी व्यक्ति नियंत्रक के समक्ष पेटेंट प्रदान किए जाने के विरुद्ध लिखित रूप में निम्नलिखित आधार पर विरोध प्रस्तुत कर सकता है—

(क) कि पेटेंट के लिए आवेदक या वह व्यक्ति जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, ने आविष्कार या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, गलत तरीके से प्राप्त किया है;

(ख) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व प्रकाशित हो चुका है—

(i) 1 जनवरी, 1912 को या उसके पश्चात भारत में किए गए पेटेंट के लिए आवेदन के अनुसरण में दायर किसी विनिर्देश में; या

(ii) भारत में या अन्यत्र किसी अन्य दस्तावेज में—

बशर्ते कि उप-खंड (ii) में निर्दिष्ट आधार उपलब्ध नहीं होगा, जहां ऐसा प्रकाशन धारा 29 की उप-धारा (2) या उप-धारा (3) के आधार पर आविष्कार की प्रत्याशा का गठन नहीं करता है;

(ग) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि को या उसके पश्चात प्रकाशित पूर्ण विनिर्देश के दावे में दावा किया गया है और भारत में पेटेंट के लिए आवेदन के अनुसरण में दायर किया गया है, जो ऐसा दावा है जिसकी प्राथमिकता तिथि आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले की है;

(घ) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, वह आविष्कार उस दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व भारत में सार्वजनिक रूप से ज्ञात था या सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त था।

स्पष्टीकरण— इस खंड के प्रयोजनों के लिए, किसी प्रक्रिया से संबंधित आविष्कार, जिसके लिए पेटेंट का दावा किया गया है, दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले भारत में सार्वजनिक रूप से ज्ञात या सार्वजनिक रूप से प्रयुक्त माना जाएगा, यदि उस प्रक्रिया द्वारा बनाया गया उत्पाद उस तारीख से पहले ही भारत में आयात किया जा चुका है, सिवाय इसके कि ऐसा आयात केवल युक्तियुक्त परीक्षण या प्रयोग के प्रयोजन के लिए किया गया हो;

(ई) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी भी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार स्पष्ट है और इसमें स्पष्ट रूप से कोई आविष्कारात्मक कदम शामिल नहीं है, खंड (बी) में उल्लिखित प्रकाशित मामले को ध्यान में रखते हुए या आवेदक के दावे की प्राथमिकता तिथि से पहले भारत में क्या उपयोग किया गया था, इसे ध्यान में रखते हुए;

(च) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे का विषय इस अधिनियम के अर्थ में कोई आविष्कार नहीं है, या इस अधिनियम के अधीन पेटेंट योग्य नहीं है;

(छ) कि पूर्ण विनिर्देशन आविष्कार या उस विधि का पर्याप्त और स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं करता है जिसके द्वारा इसे निष्पादित किया जाना है;

(ज) आवेदक नियंत्रक को धारा 8 द्वारा अपेक्षित सूचना प्रकट करने में असफल रहा है या उसने ऐसी सूचना दी है जो किसी भी महत्वपूर्ण विवरण में उसके ज्ञान के अनुसार मिथ्या थी;

(2) पेटेंट प्रदान किए जाने के पश्चात् किसी भी समय, किन्तु पेटेंट प्रदान किए जाने के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति के पूर्व, कोई भी हितवद्ध व्यक्ति, निम्नलिखित में से किसी भी आधार पर नियंत्रक को विहित तरीके से विरोध की सूचना दे सकेगा, अर्थात्—

(क) कि पेटेंटधारक या वह व्यक्ति जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, ने आविष्कार या उसके किसी भाग को उससे या ऐसे व्यक्ति से जिसके अधीन या जिसके माध्यम से वह दावा करता है, गलत तरीके से प्राप्त किया है

(ख) कि पूर्ण विनिर्देश के किसी दावे में जहां तक दावा किया गया है, आविष्कार दावे की प्राथमिकता तिथि से पूर्व प्रकाशित हो चुका है।

(3) (क) जहां उपधारा (2) के अधीन विरोध की ऐसी कोई सूचना विधिवत् दी जाती है, वहां नियंत्रक पेटेंटधारक को अधिसूचित करेगा।

(4) विरोध बोर्ड की सिफारिश प्राप्त होने पर तथा पेटेंटधारक और विरोधी को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् नियंत्रक पेटेंट को बनाए रखने या संशोधित करने या रद्द करने का आदेश देगा।

(5) उपधारा (2) के खंड (घ) या खंड (ङ) में उल्लिखित आधार के संबंध में उपधारा (4) के अधीन आदेश पारित करते समय नियंत्रक किसी व्यक्तिगत दस्तावेज या गुप्त परीक्षण या गुप्त उपयोग को ध्यान में नहीं रखेगा।

(6) यदि नियंत्रक उपधारा (4) के अधीन आदेश जारी करता है कि पेटेंट विनिर्देश या किसी अन्य दस्तावेज में संशोधन के अधीन बनाए रखा जाएगा, तो पेटेंट तदनुसार संशोधित माना जाएगा।

पक्षकारों को सुनवायी— नियंत्रक द्वारा विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग। इस अधिनियम में निहित किसी प्रावधान पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, जिसके अंतर्गत नियंत्रक को उसके अधीन कार्यवाही में किसी पक्षकार को सुनने या किसी ऐसे पक्षकार को सुनवाई का अवसर देने की आवश्यकता है, नियंत्रक किसी पेटेंट के लिए या किसी विनिर्देश के संशोधन के लिए किसी आवेदक को (यदि आवेदक निर्धारित समय के भीतर ऐसी मांग करता है) इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन नियंत्रक में निहित किसी विवेकाधिकार का आवेदक के विरुद्ध प्रतिकूल रूप से प्रयोग करने से पहले सुनवाई का अवसर देगा।

बशर्ते कि सुनवाई की इच्छा रखने वाला पक्ष, कार्यवाही के संबंध में विनिर्दिष्ट समय—सीमा की समाप्ति से कम से कम दस दिन पूर्व नियंत्रक से ऐसी सुनवाई के लिए अनुरोध करेगा।

प्रश्न न० 4— प्रतिलिप्याधिकार का स्वामी कौन होता है? प्रतिलिप्याधिकार की अनुज्ञप्ति से आप क्या समझते हैं स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17, लेखक के कॉपीराइट का प्रथम स्वामी होने के सामान्य नियम का अपवाद है। यह धारा केवल यह निर्धारित करती है कि जो व्यक्ति किए जाने वाले कार्य के लिए प्रतिफल का भुगतान करता है, वह कॉपीराइट का प्रथम स्वामी बन जाएगा। आइए इस धारा के बारे में विस्तार से जानें।

कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17 (ए)— साहित्यिक, नाटकीय और कलात्मक कार्य

धारा 17 का यह खंड साहित्यिक, नाटकीय और कलात्मक कार्यों के बारे में बात करता है। इसमें कहा गया है कि जब भी कोई लेखक किसी समाचार पत्र, पत्रिका, पुस्तक आदि के मालिक के साथ रोजगार या सेवा के दौरान ऐसे काम को प्रकाशित करने के लिए अनुबंध के तहत बनाता है, तो इसके विपरीत किसी समझौते के अधीन, ऐसे समाचार पत्र या पत्रिका का मालिक कॉपीराइट का पहला मालिक बन जाएगा।

चित्रण— यदि 'ए' मिरर नाउ नामक समाचार पत्र एजेंसी में कार्यरत पत्रकार है, तो उसे केवल उस लेख पर लेखकीय अधिकार प्राप्त होगा। लेख का पहला मालिक मिरर नाउ का मालिक होगा।

अधिनियम की धारा 17(बी) अनुसार, जहां किसी व्यक्ति के कहने पर मूल्यवान प्रतिफल के लिए कोई फोटोग्राफ लिया जाता है या कोई पेंटिंग या चित्र बनाया जाता है, या कोई उत्कीर्णन या सिनेमैटोग्राफ फिल्म बनाई जाती है, तो ऐसा व्यक्ति, इसके विपरीत किसी भी समझौते के अभाव में, उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा। चिदंबरे बनाम रेंगा में, जहां कोई व्यक्ति कुछ करने के लिए बाध्य होता है, और ऐसे दायित्व के निर्वहन में, वह कुछ हितों को हस्तांतरित करता है, ऐसा हस्तांतरण मूल्यवान प्रतिफल के लिए होता है।

धारा 17 (सी) में यह प्रावधान है कि सेवा या प्रशिक्षुता के अनुबंध के तहत लेखक के रोजगार के दौरान किए गए कार्य के मामले में, जिस पर खंड (ए) या खंड (बी) लागू नहीं होता है, नियोक्ता, इसके विपरीत किसी भी समझौते की अनुपस्थिति में, उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा। एक लेखक स्वतंत्र रूप से एक कार्य बना सकता है, या वह सेवा के अनुबंध या सेवा के लिए अनुबंध के तहत एक कार्य बना सकता है।

धारा 17(सीसी) में प्रावधान है कि सार्वजनिक रूप से दिए गए किसी संबोधन या भाषण के मामले में, वह व्यक्ति जिसने ऐसा संबोधन या भाषण दिया है या यदि ऐसे व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति की ओर से ऐसा संबोधन या भाषण दिया है, तो ऐसा अन्य व्यक्ति उसमें कॉपीराइट का पहला मालिक होगा, भले ही वह व्यक्ति जो ऐसा संबोधन या भाषण देता है, या, जैसा भी मामला हो, वह व्यक्ति जिसकी ओर से ऐसा संबोधन या भाषण दिया जाता है, किसी

अन्य व्यक्ति द्वारा नियोजित है जो ऐसे संबोधन या भाषण की व्यवस्था करता है या जिसकी ओर से या जिसके परिसर में ऐसा संबोधन या भाषण दिया जाता है।

कॉपीराइट अधिनियम, 1957 की धारा 17 (डी) रु सरकार द्वारा सौंपा गया कार्य— मान लीजिए कि यदि कोई कॉपीराइट योग्य कार्य सरकार द्वारा प्रस्तुत किए जाने पर बनाया जाता है, तो ऐसी सरकार ऐसे कार्यों से उत्पन्न होने वाले कॉपीराइट की प्रथम स्वामी होगी, जब तक कि पक्षों के बीच इसके विपरीत कोई समझौता न हो।

चित्रण— यदि 'ए' नामक मूर्तिकार को राज्य सरकार द्वारा सड़क पर लगाए जाने वाले राष्ट्रीय नायकों की मूर्ति बनाने के लिए निविदा दी गई है, तो ऐसी मूर्ति से उत्पन्न कॉपीराइट का पहला स्वामित्व राज्य सरकार का होगा।

डंक बनाम जॉर्ज वालर, (1970) 2 डब्ल्यूएलआर 241, में यह माना गया कि प्रशिक्षु एक छात्र है जो अपने व्यापार को सीखने के उद्देश्य से दूसरे से बंधा हुआ है, अनुबंध इस तरह का है कि गुरु पढ़ाता है और दूसरा सीखने के इरादे से गुरु की सेवा करता है। इसलिए, काम शिक्षक का है।

धारा 2(डी) लेखक को परिभाषित करती है, इसमें कहा गया है कि 'लेखक' का अर्थ है,—

- (1) साहित्यिक या नाटकीय कार्य के संबंध में, कार्य का लेखक
- (2) संगीत कार्य के संबंध में, संगीतकार
- (3) फोटोग्राफ के अलावा कलात्मक कार्य के संबंध में, कलाकार
- (4) फोटोग्राफ के संबंध में, फोटो लेने वाला व्यक्ति, कलाकार
- (5) सिनेमैटोग्राफ फिल्म या ध्वनि रिकॉर्डिंग के संबंध में, निर्माता और
- (6) किसी साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय या कलात्मक कार्य के संबंध में जो कंप्यूटर द्वारा निर्मित है, वह व्यक्ति जो उस कार्य का निर्माण कराता है।

प्रतिलिप्यधिकार द्वारा निम्नलिखित प्रकार के अधिकार का सृजन होता है—

(1) वैधानिक अधिकार— कॉपीराइट स्वामी को इन कार्यों के संबंध में कुछ कार्य करने का विशेष अधिकार देता है, जिसमें कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने का अधिकार भी शामिल है।

मालिक यह नियंत्रित कर सकता है कि काम को सार्वजनिक स्थान पर कब प्रदर्शित किया जाए, जैसे कि जब इसे टेलीविजन या रेडियो के माध्यम से कई स्थानों पर प्रसारित किया जाए। काम को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने का अधिकार निम्न प्रकार के कामों पर लागू होता है—

साहित्यिक कृतियाँ, संगीत कृतियाँ, नाट्य कृतियाँ, नृत्यकला कृतियाँ, पैंटोमाइम्स, चलचित्र और दृश्य-श्रव्य कृतियाँ। कॉपीराइट अधिनियम स्वामी को अन्य अधिकार भी प्रदान करता है, जैसे कि कार्य को वितरित करने का अधिकार। हालाँकि, वितरण का अधिकार हर मामले में अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए, यदि स्वामी कोई पुस्तक बेचता है, तो पुस्तक को वितरित करने का अधिकार पहली बिक्री के बाद समाप्त हो जाता है, और खरीदार पुस्तक को सेकेंडहैंड सामग्री के रूप में फिर से बेच सकता है। दूसरी ओर, यदि स्वामी कोई पुस्तकालय स्थापित करता है और पुस्तकों को पढ़ने के लिए किराया लेता है, तो कानून इस पर रोक नहीं लगाता है, और समाप्ति का नियम लागू नहीं होता है।

(2) नकारात्मक अधिकार— कॉपीराइट एक नकारात्मक अधिकार है, जिसका अर्थ है लेखक या स्वामी का दूसरों को उसके मूल कार्यों की नकल करने से रोकने का अधिकार। यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि किसी कार्य का लेखक हमेशा उसका स्वामी नहीं हो सकता है।

(3) बहुविध अधिकार— पहला अधिकार कॉपीराइट किए गए कार्य को पुनः प्रस्तुत करने का है, दूसरा, कार्य के आधार पर व्युत्पन्न कार्य तैयार करने का अधिकार है, तीसरा, कार्य की प्रतियाँ जनता को वितरित करने का अधिकार है।

(4) आर्थिक अधिकार— आर्थिक अधिकार वे अधिकार हैं जो लेखक को आर्थिक लाभ प्राप्त करने में मदद करते हैं। कॉपीराइट अधिनियम, 1957 (1957 का 14) की धारा 14 के अनुसार, कार्यों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए उनके लिए अलग-अलग अधिकार मान्यता प्राप्त हैं। धारा में प्रावधान है कि इसके तहत दिए गए कार्यों को करना या करने के लिए अधिकृत करना लेखक का एकमात्र अधिकार है। भारतीय कानून के तहत सभी प्रकार के कार्यों द्वारा आम तौर पर मान्यता प्राप्त महत्वपूर्ण अधिकार, जिन्होंने बहुत न्यायिक व्याख्या को आकर्षित किया, उनमें प्रजनन अधिकार, वितरण का अधिकार और जनता को कार्य संप्रेषित करने का अधिकार शामिल हैं।

(5) नैतिक अधिकार— नैतिक अधिकार व्यक्तिगत अधिकार हैं जो रचनाकार और उसके काम के बीच संबंध दर्शाते हैं। वे काम के निर्माण पर नियंत्रण देते हैं। नैतिक अधिकारों को फ्रेंच में *ड्रॉइट मोरल* कहा जाता है। नैतिक अधिकारों से काम के लेखक को कोई सीधा वित्तीय लाभ नहीं मिलता है। वे सामग्री में संशोधन या परिवर्तन से बचने में मदद करते हैं। नैतिक अधिकार लेखक के काम की अखंडता को बनाए रखते हैं। नैतिक अधिकार न तो अनैतिक अधिकारों के विपरीत हैं और न ही कानूनी अधिकारों के।

अनुज्ञप्ति— अनुज्ञप्ति समनुदेशन से भिन्न होती है। अनुज्ञप्ति द्वारा अनुज्ञप्तिधारी अनुज्ञप्ति की शर्तों के अधीन कुछ विशेष अधिकारों को प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त करता है। अनुज्ञप्ति अनुज्ञप्तिधारी को प्रतिलिप्यधिकार में स्वामित्व नहीं प्रदान करती है जबकि समनुदेशन समनुदेशिनी को समनुदेशित हितों का स्वामित्व प्राप्त हो जाता है। अनुज्ञप्ति और समनुदेशन लिखित और सम्पक रूप से हस्ताक्षरित होते हैं।

अधिनियम की धारा 2(जे) के अनुसार कॉपीराइट लाइसेंस अनन्य या गैर-अनन्य हो सकता है। कॉपीराइट अधिनियम की धारा 2(जे) में अनन्य लाइसेंस शब्द को परिभाषित किया गया है, जिसका अर्थ है और इसमें वह लाइसेंस शामिल है जो लाइसेंसधारी और उसके द्वारा अधिकृत व्यक्तियों को, अन्य सभी व्यक्तियों को छोड़कर, किसी कार्य के कॉपीराइट में शामिल कोई भी अधिकार प्रदान करता है।

अनिवार्य अनुज्ञप्ति का प्रदान किया जाना— यदि रचयिता के लिए अपनी कृति का प्रकाशन रोक लेता है तो ऐसी परिस्थिति में अनिवार्य अनुज्ञप्ति प्रदान की जा सकती है। अनुवार्य अनुज्ञप्ति लोकहित में प्रदान की जाती है।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम 1957 की धारा 31 जनता से रोके गए कार्यों में अनिवार्य लाइसेंस—(1) यदि किसी भी समय किसी भी कार्य में कॉपीराइट की अवधि के दौरान, जो सार्वजनिक रूप से प्रकाशित या प्रदर्शित किया गया हो, कॉपीराइट बोर्ड को शिकायत की जाती है कि कार्य में कॉपीराइट का स्वामी—

(ए) कार्य को पुनः प्रकाशित करने या पुनः प्रकाशित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है या कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है, और ऐसे इनकार के कारण कार्य को जनता से दूर रखा गया है; या

(बी) ऐसे कार्य या ध्वनि रिकॉर्डिंग के मामले में, ऐसी ध्वनि रिकॉर्डिंग में रिकॉर्ड किए गए कार्य को, शिकायतकर्ता द्वारा उचित समझी जाने वाली शर्तों पर, प्रसारण द्वारा जनता तक संप्रेषित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया है, कॉपीराइट बोर्ड, कार्य में कॉपीराइट के स्वामी को सुनवाई का उचित अवसर देने के पश्चात् तथा ऐसी जांच करने के पश्चात् जिसे वह आवश्यक समझे, यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है कि ऐसे इनकार के आधार उचित नहीं हैं, तो वह कॉपीराइट रजिस्ट्रार को शिकायतकर्ता को कार्य को पुनः प्रकाशित करने, कार्य को सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित करने या कार्य को प्रसारण द्वारा जनता तक पहुंचाने के लिए, जैसा भी मामला हो, लाइसेंस देने का निर्देश दे सकता है, बशर्ते कि कॉपीराइट के स्वामी को ऐसा मुआवजा दिया जाए तथा ऐसे अन्य निबंधन और शर्तों के अधीन हों, जिन्हें कॉपीराइट बोर्ड निर्धारित करेय और उसके पश्चात् कॉपीराइट रजिस्ट्रार ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को लाइसेंस प्रदान करेगा, जो कॉपीराइट बोर्ड की राय में, कॉपीराइट बोर्ड के निर्देशों के अनुसार ऐसा करने के लिए योग्य है या हैं, ऐसे शुल्क का भुगतान करने पर, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है।

प्रश्न न० 5— व्यापार चिन्ह से आप क्या समझते हैं? व्यापार चिन्ह के कार्य की विवेचना कीजिए। भारत में व्यापार चिन्ह को किस प्रकार संरक्षण प्राप्त है?

उत्तर— व्यापार चिन्ह की आवश्यकता निम्नलिखित प्रयोजनों हेतु है—

- (1) उत्पाद की उत्पत्ति एवं उसके गुणों की जानकारी देने के प्रयोजन के लिए।
- (2) उत्पाद के विज्ञापन के प्रयोजन के लिए।
- (3) उपभोक्ताओं के मन में उत्पाद के प्रति आकर्षण पैदा करने के प्रयोजनों हेतु।
- (4) उत्पाद की बिक्री की बढ़ोत्तरी के लिए।
- (5) उत्पाद की गुणवत्ता की गारण्टी देने के प्रयोजन के लिए।
- (6) एक उत्पाद की दूसरे उत्पाद से पृथक् करने के लिए। (7) उत्पाद की गुडविल को संरक्षण प्रदान करने के प्रयोजन के लिए।

व्यापार चिन्ह अधिनियम, 1999 का उद्देश्य व्यापार चिन्हों के पंजीकरण और बेहतर सुरक्षा के लिए यह अधिनियम बनाया गया है। यह अधिनियम 30 दिसम्बर, 1999 से सम्पूर्ण भारत में लागू हो गया। व्यापार चिन्ह नियमावली, 2002 अधिनियमित की गई है। इसके अलावा ज्जंकम डंतो (Application and Appeals to the Intellectual Property Appellate Board) नियमावली 2003 एवं Intellectual Appellate Board (Procedure) नियमावली 2003 भी पारित किया गया है। व्यापार चिन्ह अधिनियम, 1999 को काफी विस्तृत कर दिया गया है।

इस अधिनियम के निम्नलिखित उद्देश्य हैं—

- (1) व्यापार चिन्ह के पंजीकरण की व्यवस्था।
- (2) व्यापार चिन्ह के उपयोग के अधिकार को बेहतर बनाना।
- (3) कपटपूर्ण व्यापार चिन्हों के स्वत्वधारी के व्यापार चिन्ह को सुरक्षा प्रदान करना।
- (4) माल एवं सेवाओं के लिए व्यापार चिन्हों का रजिस्ट्रेशन करना।
- (5) व्यापार चिन्हों से सम्बन्धित विधि का संशोधन एवं समेकन करना।
- (6) व्यापार चिन्ह के रजिस्टर्ड स्वत्वधारी को रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह में एकाधिकार प्रदान करना।
- (7) व्यापार चिन्ह के उल्लंघन को रोकने के लिए शास्ति (Penalty) का उपबंध करना
- (8) पैकेज (Package),
- (9) अनुज्ञात उपयोग (Permitted Package),
- (10) सेवा (Service),
- (11) पण्य विवरण (Trade Description)
- (12) व्यापार चिन्ह (Trade marks)
- (13) सुविख्यात व्यापार चिन्ह (Well known Trade marks)। सेवाओं की व्यवस्था उस और सेवाओं।

विद्यमान रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह का अर्थ अधिनियम की धारा 2 (4)– इस सम्बन्ध में 2 (4) निम्नलिखित उपबन्ध करती है–

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए श्विद्यमान रजिस्ट्रीकृत व्यापार चिन्ह से इस अधिनियम के प्रारम्भ के ठीक पूर्व, व्यापार और पण्य–वस्तु चिन्ह अधिनियम, 1958 (1958) का 43) के अधीन रजिस्ट्रीकृत व्यापार चिन्ह अभिप्रेरित हैं।

इस प्रकार व्यापार अधिनियम, 1999 के प्रयोजनार्थ विद्यमान रजिस्टर्ड व्यापार चिन्ह से तात्पर्य व्यापार चिन्ह अधिनियम लागू होने के ठीक पूर्व, व्यापार एवं पण्य–वस्तु चिन्ह अधिनियम, 1958 के अधीन

प्रश्न नं० 6–व्यापार चिन्ह अधिनियम 1999 के अन्तर्गत अपीलेंट बोर्ड के गठन, शक्तियाँ और कार्यों की व्याख्या कीजिए।

उत्तर– 1999 के ट्रेडमार्क अधिनियम की धारा 83 बौद्धिक संपदा अपीलीय बोर्ड (IPAB) की स्थापना करती है। IPAB की संरचना, शक्तियाँ और कार्य इस प्रकार हैं–

संघटन

आईपीएबी में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य होते हैं, जिन्हें केन्द्र सरकार नियुक्त कर सकती है।

पॉवर्स– आईपीएबी को ट्रेडमार्क अधिनियम और कॉपीराइट अधिनियम द्वारा क्षेत्राधिकार, शक्तियाँ और प्राधिकार प्राप्त हैं।

कार्य–आईपीएबी अपने अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और अधिकारों का प्रयोग बेंचों के माध्यम से करता है। यदि बेंच के सदस्य किसी मुद्दे पर असहमत हैं, तो उन्हें अपने मतभेदों को बताना चाहिए और मामले को अध्यक्ष के पास भेजना चाहिए। अध्यक्ष या तो मामले की सुनवाई खुद कर सकते हैं या किसी अन्य सदस्य या सदस्यों से इसकी सुनवाई करवा सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय, जिसमें मूल सदस्य भी शामिल हैं, अंतिम निर्णय होगी।

1999 के ट्रेडमार्क अधिनियम की धारा 84 अपीलीय बोर्ड की संरचना, अधिकार क्षेत्र, शक्तियाँ और अधिकार स्थापित करती है। अपीलीय बोर्ड में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और अन्य सदस्य होते हैं जिन्हें केंद्र सरकार उचित समझती है। अपीलीय बोर्ड की बेंच भी अपने अधिकार क्षेत्र, शक्तियों और अधिकार का प्रयोग कर सकती हैं। एक बेंच में एक न्यायिक सदस्य और एक तकनीकी सदस्य होता है, और यह आधिकारिक राजपत्र में केंद्र सरकार द्वारा निर्दिष्ट स्थान पर बैठता है।

अधिनियम की धारा 85 के अनुसार अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या अन्य सदस्यों के रूप में नियुक्ति के लिए योग्यताएं–

(1) कोई व्यक्ति अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा जब तक कि वह–

(ए) किसी उच्च न्यायालय का न्यायाधीश है या रह चुका है; या

(बी) कम से कम दो वर्षों तक उपाध्यक्ष का पद संभाला हो।

(2) कोई व्यक्ति उपाध्यक्ष के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए) कम से कम दो वर्षों तक न्यायिक सदस्य या तकनीकी सदस्य का पद धारण किया हो; या

(बी) भारतीय विधिक सेवा का सदस्य रहा हो तथा उस सेवा के ग्रेड–I या किसी उच्चतर पद पर कम से कम पांच वर्ष तक कार्य किया हो।

(3) कोई व्यक्ति न्यायिक सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए) भारतीय विधिक सेवा का सदस्य रहा हो तथा उस सेवा के ग्रेड–I में कम से कम तीन वर्ष तक पद पर रहा हो; या

(बी) कम से कम दस वर्षों तक सिविल न्यायिक कार्यालय में कार्य किया हो।

(4) कोई व्यक्ति तकनीकी सदस्य के रूप में नियुक्ति के लिए तब तक योग्य नहीं होगा, जब तक कि वह–

(ए) इस अधिनियम के अधीन या व्यापार और पण्य वस्तु चिन्ह अधिनियम, 1958 (1958 का 43) के अधीन या दोनों के अधीन कम से कम दस वर्ष तक न्यायाधिकरण के कार्य किए हों और कम से कम पांच वर्ष तक संयुक्त रजिस्ट्रार के पद से अन्यून पद पर कार्य किया हो; या

(बी) कम से कम दस वर्षों से ट्रेडमार्क कानून में सिद्ध विशेष अनुभव के समर्थक रहे हैं।

(5) उपधारा (6) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और प्रत्येक अन्य सदस्य की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

(6) किसी व्यक्ति की अध्यक्ष के रूप में नियुक्ति भारत के मुख्य न्यायाधीश के परामर्श के बिना नहीं की जाएगी।

अधिनियम की धारा 91 के तहत अपील बोर्ड को अपीलें–

(1) इस अधिनियम या इसके अधीन बनाए गए नियमों के अधीन रजिस्ट्रार के किसी आदेश या निर्णय से व्यथित कोई व्यक्ति, उस तारीख से तीन महीने के भीतर अपील बोर्ड के समक्ष अपील कर सकेगा, जिसको वह आदेश या निर्णय, जिसके विरुद्ध अपील की जानी है, अपील करने वाले ऐसे व्यक्ति को संसूचित कर दिया गया हो।

(2) यदि कोई अपील उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात प्रस्तुत की जाती है तो उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा।

परन्तु यह कि कोई अपील, विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति के पश्चात् भी स्वीकार की जा सकेगी, यदि अपीलकर्ता अपील बोर्ड को यह समाधान कर दे कि उसके पास विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर अपील न करने के लिए पर्याप्त कारण था।

(3) अपीलीय बोर्ड के समक्ष अपील निर्धारित प्रपत्र में की जाएगी और निर्धारित तरीके से सत्यापित की जाएगी तथा उसके साथ उस आदेश या निर्णय की प्रति संलग्न की जाएगी जिसके विरुद्ध अपील की गई है तथा निर्धारित शुल्क भी संलग्न किया जाएगा।

अधिनियम की धारा 92 के तहत अपील बोर्ड की प्रक्रिया और शक्तियाँ।—

(1) अपील बोर्ड सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में अधिकथित प्रक्रिया से आबद्ध नहीं होगा, अपितु प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों द्वारा मार्गदर्शित होगा तथा इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अपील बोर्ड को अपनी सुनवाई के स्थान और समय नियत करने सहित अपनी स्वयं की प्रक्रिया विनियमित करने की शक्तियाँ होंगी।

(2) अपील बोर्ड को इस अधिनियम के अधीन अपने कार्यों के निर्वहन के प्रयोजन के लिए वही शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन निम्नलिखित विषयों के संबंध में किसी वाद का विचारण करते समय सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात्—

(ए) साक्ष्य प्राप्त करना;

(बी) गवाहों की जांच के लिए कमीशन जारी करना;

(सी) किसी भी सार्वजनिक रिकॉर्ड की मांग करना; और

(डी) कोई अन्य विषय जो निर्धारित किया जा सकता है।

(3) अपील बोर्ड के समक्ष कोई कार्यवाही भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 193 और 228 के अर्थ में तथा धारा 196 के प्रयोजन के लिए न्यायिक कार्यवाही समझी जाएगी और अपील बोर्ड दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 195 और अध्याय 26 के सभी प्रयोजनों के लिए सिविल न्यायालय समझा जाएगा।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 की धारा 92(2) में कहा गया है कि अपीलीय बोर्ड के पास सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के तहत किसी मुकदमे की सुनवाई करते समय सिविल कोर्ट के समान अधिकार हैं। इन शक्तियों में शामिल हैं साक्ष्य प्राप्त करना, गवाहों की जांच करने के लिए कमीशन जारी करना, सार्वजनिक रिकॉर्ड का अनुरोध करना, और कोई अन्य मामले जो निर्धारित किए जा सकते हैं।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 में अपीलीय बोर्ड की संरचना के बारे में भी प्रावधान शामिल हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी बेंच के सदस्य किसी मुद्दे पर असहमत हैं, तो उन्हें उस मुद्दे को बताना चाहिए और उसे अध्यक्ष को संदर्भित करना चाहिए। अध्यक्ष या तो मुद्दों को सुन सकते हैं या मामले को सुनवाई के लिए किसी अन्य सदस्य या सदस्यों को सौंप सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय परिणाम निर्धारित करेगी।

(2) अपील बोर्ड को इस अधिनियम के अधीन अपने कृत्यों के निर्वहन के लिए वही शक्तियाँ प्राप्त होंगी जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन किसी वाद का विचारण करते समय निम्नलिखित विषयों के संबंध में सिविल न्यायालय में निहित होती हैं, अर्थात्— (क) साक्ष्य प्राप्त करना (ख) साक्ष्य के लिए कमीशन जारी करना।

ट्रेड मार्क्स अधिनियम, 1999 की धारा 92(3) में कहा गया है कि अपीलीय बोर्ड के समक्ष कोई भी कार्यवाही न्यायिक मानी जाएगी। अपीलीय बोर्ड के पास निम्नलिखित शक्तियाँ और कार्य हैं साक्ष्य प्राप्त करना, गवाहों की जांच के लिए कमीशन जारी करना और सार्वजनिक रिकॉर्ड की मांग करना।

यदि किसी बेंच के सदस्यों की किसी मुद्दे पर अलग-अलग राय है, तो उन्हें अपने मतभेदों को बताना चाहिए और मामले को अध्यक्ष के पास भेजना चाहिए। अध्यक्ष या तो खुद मुद्दों पर सुनवाई कर सकते हैं या किसी अन्य सदस्य से मामले की सुनवाई करवा सकते हैं। मामले की सुनवाई करने वाले सदस्यों की बहुमत की राय, जिसमें पहले सुनवाई करने वाले सदस्य भी शामिल हैं, निर्णय निर्धारित करेगी।

अधिनियम की धारा 93 के अन्तर्गत अधिनियम की धारा 91 (1) में वर्णित रजिस्ट्रार के आदेश या निर्णय के विरुद्ध अपील के सम्बन्ध में अपील बोर्ड के अतिरिक्त कोई न्यायालय या प्राधिकारी अपनी अधिकारिता, शक्तियों या प्राधिकार का प्रयोग करने के लिए अधिकृत नहीं होता है।

पद धारण न करने पर सभापति, उपसभापति या अन्य सदस्य अपील बोर्ड या रजिस्ट्रार के समक्ष हाजिर नहीं होते हैं। (धारा 94)

अपील बोर्ड के अन्तरिम आदेश जारी करने की शक्ति प्राप्त है, लेकिन बोर्ड द्वारा अपील या इससे सम्बन्धित किसी कार्यवाही में व्यादेश या रोक या आदेश या किसी अन्य राति से कोई अन्तिम आदेश तक नहीं जारी किया जाता है जब तक कि ऐसी अपील और ऐसे अन्तरिम आदेश के अभिभावक के समर्थन में सभी दस्तावेजों की प्रतियाँ उस पक्षकार को नहीं दे दी जाती हैं, जिसके विरुद्ध अपील की गई है या किया जाना प्रस्तावित है। अन्तरिम आदेश जारी करने से पूर्व अपील बोर्ड द्वारा पक्षकार को सुनवाई का अवसर प्रदान किया जाता है।

प्रश्न न0 7— समनुदेशन क्या है? प्रतिलिप्याधिकार अधिनियम, 1957 में प्रावधानित समनुदेशन के ढंग का वर्णन कीजिए।

उत्तर— प्रतिलिप्यधिकार का समकिसी भी व्यक्ति को निर्माता की अनुमति के बिना किसी मूल लेखन, पेंटिंग, नाटकीय उत्पादन, मूर्तिकला आदि की नकल करने, पुनरुत्पादन करने, प्रकाशित करने या बेचने का अधिकार नहीं

हैं। इस प्रकार, कानून कॉपीराइट के स्वामी (यानी निर्माता) को कॉपीराइट के स्वामित्व को किसी तीसरे पक्ष को हस्तांतरित करने का अधिकार प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, एक पूरी फिल्म बनाने के मामले में — सभी रचनात्मक व्यक्ति अपने विचार के साथ प्रासंगिक कार्यों में बदल कर निर्माता के पास आते हैं, रॉयल्टी के बदले में अपने काम में मौजूद अपने अधिकारों को सौंपते हैं। फिर इन कार्यों को एक पूरी फिल्म बनाने के लिए सारांशित किया जाता है। हाँ, यह प्रक्रिया इतनी आसान नहीं है और इसमें कई सवाल शामिल हैं जो असाइनमेंट के समय और खासकर उसके बाद उठते हैं।

प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम, 1957 की धारा 18 के अन्तर्गत किसी विद्यमान कार्य में कॉपीराइट का स्वामी या किसी भावी कार्य में कॉपीराइट का भावी स्वामी किसी व्यक्ति को कॉपीराइट पूर्णतः या आंशिक रूप से और सामान्य रूप से या सीमाओं के अधीन और कॉपीराइट की संपूर्ण अवधि या उसके किसी भाग के लिए कॉपीराइट सौंप सकता है। बशर्ते कि किसी भी भावी कार्य में कॉपीराइट के हस्तांतरण के मामले में, हस्तांतरण तभी प्रभावी होगा जब कार्य अस्तित्व में आ जाएगा।

चूंकि किसी कॉपीराइट का समनुदेशी कॉपीराइट में समाविष्ट किसी अधिकार का हकदार हो जाता है, इसलिए समनुदेशी को समनुदेशित किए जाने वाले अधिकारों के संबंध में, तथा समनुदेशक को समनुदेशित न किए जाने वाले अधिकारों के संबंध में, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए कॉपीराइट का स्वामी माना जाएगा और इस अधिनियम के उपबंध तदनुसार प्रभावी होंगे।

इस धारा में, किसी भावी कार्य में कॉपीराइट के हस्तांतरण के संबंध में 'असाइनी' पद में असाइनी के विधिक प्रतिनिधि भी शामिल हैं, यदि असाइनी की मृत्यु कार्य के अस्तित्व में आने से पहले हो जाती है।

खेमराय बनाम गर्ग कं. ए0आई0आर0 1975 दिल्ली 130 के मामले में कोर्ट ने स्पष्ट किया है कि अधिनियम की धाराएं 17 और 18 यह सुनिश्चित करती हैं कि कॉपीराइट कहाँ निहित होता है। यदि लेखक द्वारा प्रतिफल के बदले प्रकाशक के लिए कृति की रचना की जाती है तो ऐसी कृति में कॉपीराइट, किसी तत्प्रतिकूल संविदा के अधीन प्रकाशक निहित होता है। धारा 18 के अनुसार यदि कॉपीराइट प्रकाशक को समनुदेशित किया जाता है तो समनुदेशित अधिकारों के बारे में प्रकाशक को प्रतिलिप्यधिकार का स्वामी माना जाता है और प्रतिलिप्यधिकार प्रकाशक में निहित होता है।

यदि किसी प्रतिलिप्यधिकार का समनुदेशी उस प्रतिलिप्यधिकार में समाविष्ट किसी अधिकार का हकदार हो जाता है जो वहाँ ऐसे समनुदेशित अधिकारों के बारे में समनुदेशी को और समनुदेशित न किये गये अधिकारों के बारे में समनुदेशक को कॉपीराइट का स्वामी माना जाता है।

इस धारा में अभिव्यक्त किसी भावी कृति में कॉपीराइट के समनुदेशन के बारे में 'समनुदेशी' के अन्तर्गत उस समनुदेशी का विधिक प्रतिनिधि आता है, यदि समनुदेशी उस कृति के अस्तित्व में आने से पहले मर जाता है।

समनुदेशन का ढंग— प्रतिलिप्यधिकार अधिकार, 1957 की धारा 19(1) के अनुसार, किसी कृति में प्रतिलिप्यधिकार के समनुदेशन को विधिमान्य होने के लिए यह आवश्यक है कि यह लिखित और समनुदेशक या उसके द्वारा सम्यक् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता हस्ताक्षरित हो।

के0ए0 वेणुगोपाल बनाम सूर्यकान्त कामथ, ए0आई0आर0 (1992) कर्नाटक 1 अधिनियम के अन्तर्गत समनुदेशन विलेख में निम्नलिखित का अन्तर्विष्ट किया जाना अधिनियम द्वारा अपेक्षित है—

- (1) धारा 19(2) में जिस कृति के बारे में समनुदेशन किया जाना है उसकी पहचान,
- (2) समनुदेशित अधिकारों और ऐसे समनुदेशन का कालावधि तथा राज्यक्षेत्रीय विस्तार और
- (3) समनुदेशन के चालू रहने के दौरान लेख या उसके विधिक वारिसों को संदेश स्वामित्वों की रकम, यदि कोई हो, और इस बात का उल्लेख होना चाहिये कि समनुदेशन पक्षकारों द्वारा पारम्परिक रूप से तय की गई शर्तों पर संशोधन (रिवीजन) आगे लागू करने या समाप्त करने की शर्त के अधीन होगा।

जहाँ समनुदेशी, समनुदेशन की तारीख के एक वर्ष की अवधि के भीतर इस धारा की अन्य उपधाराओं में से किसी के अधीन उसे समनुदेशित अधिकार का प्रयोग नहीं करता है, तो उन अधिकारों के सम्बन्ध में समनुदेशन को उक्त अवधि को समाप्ति के बाद रद्द हुआ समझा जाएगा जब तक कि उस समनुदेशन में अन्यथा विनिर्दिष्ट नहीं किया गया है। (धारा 19(4))

धारा 19 (5) के अनुसार, यदि समनुदेशन की अवधि का अभिकथन नहीं किया गया है, तो वह समनुदेशन की तारीख से पाँच वर्ष होने के रूप में समझी जायेगी। यदि अधिकारों के समनुदेशन का राज्य क्षेत्रीय विस्तार विनिर्दिष्ट नहीं किया जाता है तो यह समझा जाएगा कि उसका विस्तार भारत के भीतर है। धारा 19(6), धारा 19 की उपधारा (7) के अनुसार, उपर्युक्त प्रावधान प्रतिलिप्यधिकार (संशोधन) अधिनियम, 1994 के प्रवृत्त होने के पूर्व किये भी किया जा सकता है।

समनुदेशन को बिना शर्त के भी किया जा सकता है। इसकी अवधि की कोई सीमा नहीं होती है, यह निश्चित अवधि के लिये भी किया जा सकता है तथा सम्पूर्ण अवधि के लिये भी किया जा सकता है।

अतः प्रतिलिप्यधिकार अधिनियम की धारा 18 के अनुसार, किसी भावी कृति में प्रतिलिप्यधिकार का होने का स्वामी, प्रतिलिप्यधिकार को या पूर्णतः या भागतः और या तो सामान्यता या निर्बन्धनों के अधीन या तो प्रतिलिप्यधिकार की सम्पूर्ण अवधि या उसके किसी भाग के लिये, किसी व्यक्ति को समनुदेशित कर सकेगा लेकिन समनुदेशन कृति के अस्तित्व में आने पर ही प्रभावशील होगा।

प्रश्न न० 8— आविष्कार क्या है? पेटेन्ट अधिनियम 1970 (पेटेन्ट संशोधन) अधिनियम 2002 से यथा (संशोधित) के अन्तर्गत कौन से आविष्कार पेटेन्ट योग्य है? बताइए।

उत्तर— एक आविष्कार का किसी भी रूप में उपयोग करने हेतु पेटेन्ट जरूरी है। आविष्कार पेटेन्ट की विषय-वस्तु होता है जिसे पेटेन्ट के माध्यम से संरक्षण प्रदान किया जाता है।

पेटेन्ट अधिनियम, 1970 की धारा 2(1) (ज) या 2(जे) में आविष्कार की परिभाषा इस प्रकार है— आविष्कार से अभिप्रेत है कोई नवीन और उपयोगी—

- (1) कला, प्रक्रिया, विनिर्माण का ढंग,
- (2) मशीन, उपकरण या अन्य वस्तु,
- (3) विनिर्माण द्वारा उत्पादित पदार्थ,

और इनमें से किसी का कोई नवीन और उपयोगी सुधार और कथित आविष्कार सम्मिलित है।

आविष्कार की एक नयी परिभाषा पेटेन्ट (संशोधन) अधिनियम, 2002 द्वारा प्रतिस्थापित की गई है जिसमें आविष्कार से तात्पर्य एक नवीन उत्पाद या प्रक्रिया जिसमें आविष्कारशील उपाय अन्तर्गत्त है और जो औद्योगिक उपयोग के योग्य है। अधिनियम की धारा 2(1) (ज) (क) के अनुसार आविष्कारशील उपाय से आविष्कार से विशिष्टता में विद्यमान ज्ञान की तुलना जिसमें तकनीकी अभिवृद्धि सम्मिलित है या आर्थिक महत्व अथवा दोनों से सम्बद्ध है और आविष्कार की कला में दक्ष व्यक्ति को स्पष्ट नहीं होती है, अभिप्रेत है।

आविष्कार से सम्बन्धित वस्तु के सन्दर्भ में पेटेन्ट परिनियमावली 2003 के नियम 2 (ग) के अन्तर्गत प्रावधान किया गया है जिसके अनुसार वस्तु में कोई पदार्थ या सामान या कोई संयंत्र, मशीनरी या उपकरण चाहे भू-बद्ध हो या न हो, सम्मिलित है। इस प्रकार एक आविष्कार का सम्बन्ध कमात्र उत्पाद से न होकर प्रक्रिया से भी होता है, जिसका औद्योगिक उपयोग किया जा सके। किसी नवीन उत्पाद या उसके विनिर्माण की नवीन प्रक्रिया या किसी तकनीकी समस्या के समाधान को भी पेटेन्टकृत किया जा सकता है। आविष्कार को ही पेटेन्टकृत किया जाता है अतः इसके लिए जरूरी है कि आविष्कार पेटेन्ट योग्य हो, इसमें आविष्कारशील उपाय सम्मिलित होना चाहिए, अस्पष्ट या अप्रकट होना चाहिए, औद्योगिक उपयोग के योग्य होना चाहिए, और आविष्कार ऐसे विषय से जुड़ा हो जिसे अधिनियम द्वारा प्रतिषिद्ध किया गया हो।

विश्वनाथ प्रसादा राधेश्याम बनाम एच०एम० इन्डस्ट्रीज, ए०आई०आर० (1982) एस०सी० 1444 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने अभिनिर्धारित किया जाता कि “कोई विचार या सिद्धान्त जिसकी प्रकृति अमूर्त होती है, पेटेन्ट योग्य नहीं होता है। पेटेन्ट के द्वारा आविष्कार का परिणामी उत्पाद संरक्षित किया जाता है। किसी ज्ञात उत्पाद या प्रक्रिया में सुधार यदि इसका परिणाम नवीन उत्पाद या प्रक्रिया के रूप में या अपेक्षाकृत अधिक सस्ता उत्पाद या प्रक्रिया के रूप में प्राप्त होता है तो पेटेन्ट द्वारा संरक्षण के योग्य होता है।

यह पेटेन्ट विधि का मौलिक सिद्धान्त है कि पेटेन्ट केवल आविष्कार को ही प्रदान किया जाता है जिसे नवीन और उपयोगी होना चाहिए।

थामसन बैन्ट बनाम कन्दोलर ऑफ पेटेंट्स एण्ड डिजाइन्स, ए०आई०आर० 1989 दिल्ली 249 के मामले में तथा अन्य कई मामलों में न्यायालय ने सदैव यह दृष्टिकोण अपनाया है कि पेटेन्ट योग्य आविष्कार नवीन विनिर्माण होने के अलावा उपयोग भी होना चाहिए।

हंफसन बनाम सायर, (1887) 4 आर०पी०सी 407 के मामले में कोर्ट द्वारा यह विचार व्यक्त किया गया कि यदि जनता को किसी भी तरीके से आविष्कार के बारे में जानकारी प्राप्त हो जाती है तो वास्तविक या प्रथम आविष्कार या किसी अन्य व्यक्ति को पेटेन्ट अनुदत्त नहीं किया जा सकता है क्योंकि जनता को आविष्कार का उपयोग करने से रोका नहीं जा सका।

इस प्रकार पेटेन्ट योग्य होने के लिए आविष्कार का अर्थ नवीन उत्पाद या प्रक्रिया से, जिसमें आविष्कारशील उपाय सम्मिलित है और आविष्कार औद्योगिक उपयोग के योग्य होना चाहिए। आविष्कार ऐसे उत्पाद, वस्तु या प्रक्रिया से सम्बन्धित नहीं होना चाहिए जो पेटेन्ट अधिनियम द्वारा प्रतिषिद्ध हो।

आविष्कार पेटेन्ट योग्य— भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 के अनुसार, कुछ आविष्कार धारा 3 और 4 के अंतर्गत पेटेंट योग्य नहीं हैं। इनमें शामिल हैं—

- (1) तुच्छ या सार्वजनिक व्यवस्था के विपरीत
- (2) नैतिकता, सार्वजनिक स्वास्थ्य या पर्यावरण के विपरीत
- (3) वैज्ञानिक खोजें
- (4) ज्ञात पदार्थों के नए रूप
- (5) कृषि या बागवानी विधियाँ
- (6) मनुष्यों या पशुओं के उपचार के लिए नैदानिक, चिकित्सीय या शल्य चिकित्सा पद्धतियाँ
- (7) पौधे और जानवर, सूक्ष्मजीवों को छोड़कर
- (8) गणितीय या व्यावसायिक विधियाँ, कंप्यूटर प्रोग्राम या एल्गोरिदम
- (9) साहित्यिक, नाटकीय, संगीतमय या कलात्मक कार्य, जिनमें सिनेमैटोग्राफिक कार्य और टेलीविजन प्रोडक्शन शामिल हैं
- (10) मानसिक कार्य करने या खेल खेलने के लिए योजनाएँ, नियम या विधियाँ

(11) सूचना प्रस्तुति

(12) एकीकृत परिपथों की स्थलाकृतियाँ

(13) पारंपरिक ज्ञान

(14) फार्मास्यूटिकल क्षेत्र में वृद्धिशील प्रगति

धारा 4 के अनुसार परमाणु शक्ति का पेटेंट नहीं हो सकता है।

पेटेंट अनुदान की शर्तें— आईपीए 1970 की धारा 47 जिसका शीर्षक है 'पेटेंट का अनुदान कुछ शर्तों के अधीन होना चाहिए' पेटेंट देने के लिए कुछ शर्तें बताती है। इस धारा के अनुसार, सरकार किसी भी पेटेंट उत्पाद या किसी प्रक्रिया द्वारा बनाए गए उत्पाद को शकेवल इसके उपयोग के उद्देश्य से आयात कर सकती है या बना सकती है या बनवा सकती है ख,। इस धारा के अनुसार, सरकार सार्वजनिक सेवा के लिए सरकारी औषधालयों या अस्पतालों में शैक्षिक निर्देश और पेटेंट दवाओं का वितरण कर सकती है। प्रक्रिया और उत्पाद दोनों पेटेंट को सरकार द्वारा केवल अपने उपयोग के उद्देश्य से आयात किया जा सकता है।

पेटेंटी के अधिकार— भारत में, पेटेंट अवधि के दौरान पेटेंटधारक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं—

पेटेंट का उपयोग करने का अधिकार—पेटेंटधारक को व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए पेटेंट किए गए आविष्कार को बनाने, उपयोग करने, बेचने, वितरित करने या लाइसेंस देने का विशेष अधिकार है। इसमें पेटेंट की गई विधि या उत्पाद का उपयोग करने का अधिकार शामिल है। पेटेंटधारक अपने एजेंटों या लाइसेंसधारियों के माध्यम से इन अधिकारों का प्रयोग कर सकता है।

दूसरों को बाहर करने का अधिकार— पेटेंटधारक को दूसरों को उनकी सहमति के बिना आविष्कार बनाने, उपयोग करने, बेचने या आयात करने से रोकने का अधिकार है। यह अधिकार सीमित समय सीमा के लिए वैध है, आमतौर पर पेटेंट आवेदन दाखिल करने की तारीख से 20 साल तक। जब तक आवश्यक नवीनीकरण शुल्क का भुगतान किया जाता है, तब तक पेटेंट लागू रहता है।

कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार— पेटेंटधारक अपने पेटेंट अधिकारों के किसी भी अनधिकृत उपयोग या उल्लंघन के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकता है।

पेटेंटधारक के दायित्व—पेटेंट के स्वामी के रूप में, पेटेंटधारक पर पेटेंट में अपने अधिकारों को बनाए रखने और लागू करने के लिए विशिष्ट दायित्व होते हैं। पेटेंटधारक के इन दायित्वों में शामिल हैं—

वैधानिक और रखरखाव शुल्क का भुगतान करने का कर्तव्य— पेटेंट प्राप्त करने के लिए पंजीकरण प्रक्रिया से जुड़ी सभी वैधानिक लागतों का भुगतान करना पेटेंटधारक के लिए अनिवार्य है। पेटेंट अधिनियम की धारा 142 में उल्लिखित इन शुल्कों का भुगतान न करने पर पेटेंट विचार के लिए अयोग्य हो जाता है।

पेटेंट का खुलासा करने का कर्तव्य— 1970 के पेटेंट अधिनियम की धारा 8 के अनुसार, पेटेंटधारक को समाज के समक्ष नवाचार का खुलासा करना चाहिए। पेटेंटधारक के इस दायित्व में पेटेंट के लिए आवेदन करते समय या आवेदन जमा करने के छह महीने के भीतर दूरस्थ अनुप्रयोगों में प्रलेखित समान नवाचारों के बारे में सभी आवश्यक जानकारी प्रकट करना शामिल है।

परीक्षा के लिए अनुरोध करने का कर्तव्य— भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 11बी के अनुसार, पेटेंटधारक को निर्धारित समय के भीतर जांच का अनुरोध करने का दायित्व है। किसी भी पेटेंट आवेदन की जांच तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि आवेदक या किसी इच्छुक पक्ष द्वारा ऐसा अनुरोध न किया जाए।

आविष्कार पर काम करने का कर्तव्य—पेटेंटधारक को भारत में आविष्कार पर सक्रिय रूप से काम करने के लिए बाध्य किया जाता है, या तो उत्पाद का निर्माण करके या दूसरों को इसका लाइसेंस देकर। पेटेंटधारक के इस दायित्व का उद्देश्य पेटेंटधारक को आविष्कार को केवल अपने पास रखने से रोकना है, इसके विकास में योगदान दिए बिना। पेटेंट किए गए उत्पादों को जनता को उचित कीमतों पर उपलब्ध कराया जाना चाहिए, जो जनता की उचित आवश्यकताओं को पूरा करते हों।

आपत्तियों का जवाब देने का कर्तव्य— यदि पेटेंट परीक्षक प्रथम परीक्षा रिपोर्ट (एफईआर) में आपत्ति उठाते हैं, तो इन आपत्तियों का जवाब देना पेटेंटधारक का दायित्व है। एफईआर की तिथि से एक वर्ष के भीतर स्पष्टीकरण न मांगने पर पेटेंटधारक का आवेदन स्वतः ही अस्वीकार हो सकता है।

पेटेंट का दुरुपयोग न करने का कर्तव्य— पेटेंटधारक को कानून या नियमों का उल्लंघन करने, सार्वजनिक हितों को नुकसान पहुंचाने या बाजार पर गलत तरीके से हावी होने के लिए पेटेंट का उपयोग करने से प्रतिबंधित किया गया है। इसके अतिरिक्त, विज्ञापन, विपणन या प्रचार सामग्री में आविष्कार के बारे में गलत या भ्रामक बयान देने की अनुमति नहीं है। पेटेंटधारक का यह दायित्व है कि वह अपने पेटेंट का नैतिक उपयोग सुनिश्चित करे।

पेटेंट अधिकारों की सीमाएं—यद्यपि पेटेंट अधिकार विशिष्ट विशेषाधिकार प्रदान करते हैं, वे निरपेक्ष नहीं हैं और भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 में उल्लिखित कुछ सीमाओं के अधीन हैं। प्रमुख सीमाएँ हैं—

सरकार द्वारा पेटेंट का उपयोग—भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970 की धारा 100 के अनुसार, केंद्र सरकार को सरकारी उद्देश्यों के लिए पेटेंट किए गए आविष्कार का उपयोग करने का अधिकार है। इसमें पेटेंट का अपने उपयोग के लिए उपयोग करना या प्राप्त करना शामिल है। सरकार उचित मुआवजा देकर भी पेटेंट प्राप्त कर सकती है और यह अधिकार पेटेंट किए गए आविष्कार को बेचने तक भी विस्तारित है।

अनिवार्य लाइसेंस— भारतीय पेटेंट अधिनियम की धारा 84 अनिवार्य लाइसेंस प्रदान करने से संबंधित है। पेटेंट प्रदान करने की तिथि से तीन वर्ष बाद, कोई भी इच्छुक व्यक्ति अनिवार्य लाइसेंस के लिए नियंत्रक के पास आवेदन कर सकता है।

लाइसेंस प्राप्त करने के लिए कुछ शर्तों को पूरा करना होगा, जिनमें जनता की उचित आवश्यकताओं की पूर्ति न होना, पेटेंट प्राप्त आविष्कार का किफायती मूल्य पर उपलब्ध न होना तथा आविष्कार का भारत के क्षेत्र में निर्माण न किया जाना शामिल है।

रक्षा प्रयोजनों के लिए आविष्कार का उपयोग— यदि किसी पेटेंट के लिए आवेदन को केन्द्रीय सरकार द्वारा रक्षा प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, तो नियंत्रक आविष्कार के बारे में सूचना के प्रकाशन को प्रतिबंधित करने या रोकने के लिए निर्देश जारी कर सकता है।

इससे आविष्कार पर गोपनीयता का प्रावधान लागू हो जाता है और नियंत्रक या केंद्र सरकार द्वारा गोपनीयता के संबंध में दिए गए किसी भी आदेश को अंतिम माना जाता है तथा उसे न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।

पुनःस्थापित पेटेंट— पेटेंट की वैधता बनाए रखने के लिए, पेटेंटधारक को एक निश्चित समय अवधि के भीतर पेटेंट कार्यालय को नवीनीकरण शुल्क का भुगतान करना आवश्यक है। इस आवश्यकता को पूरा न करने पर पेटेंट समाप्त हो जाता है। हालाँकि, भारतीय पेटेंट अधिनियम 1970 के प्रावधानों में धारा 60 से 63 में उल्लिखित अनुसार समाप्त हो चुके पेटेंट की बहाली की अनुमति है।

जब कोई पेटेंट समाप्त हो जाता है और बाद में उसे बहाल किया जाता है, तो पेटेंटधारक के अधिकारों पर कुछ सीमाएँ लगाई जाती हैं। विशेष रूप से, यदि कोई पेटेंट समाप्त हो जाता है और बाद में उसे बहाल किया जाता है, तो पेटेंटधारक उस तिथि के बाद उल्लंघन के लिए मुकदमा दायर नहीं कर सकता है जिस दिन पेटेंट प्रभावी होना बंद हो गया था। यह प्रावधान पेटेंट की समाप्ति को रोकने और उल्लंघन के खिलाफ अपने अधिकारों को लागू करने की क्षमता बनाए रखने के लिए नवीनीकरण शुल्क के समय पर भुगतान के महत्व को रेखांकित करता है।

प्रश्न न0 9—पेटेंट अतिलघन क्या है? पेटेंट अतिलघन की दशा में कौन से अनुतोष उपलब्ध है? बताइए।

उत्तर— पेटेंट अधिकार एक विशेषाधिकार है जो राज्य द्वारा उस व्यक्ति को दिया जाता है जो किसी नए उत्पाद का आविष्कार या निर्माण सबसे पहले करता है। ऐसे पूर्ण उत्पाद के आविष्कारक को उस उत्पाद पर एकाधिकार प्राप्त होता है। वह (पेटेंटधारक) उनका उपयोग करता है और उसे बेच सकता है। पेटेंट अधिकारों से उत्पन्न पेटेंट का उल्लंघन तब होता है जब कोई व्यक्ति किसी आविष्कार को उसके मालिक से लाइसेंस प्राप्त किए बिना एक निश्चित अवधि के भीतर बनाता है, उपयोग करता है या बेचता है। उल्लंघन निम्नलिखित मामलों में माना जाता है—

(i) आविष्कार की नकल करना

(ii) आविष्कार में अनुचित परिवर्तन करना

(iii) यांत्रिक समतुल्य

(iv) जांच की आवश्यक विशेषताओं को लेना

उत्पाद या प्रक्रिया पेटेंट उल्लंघन के दौरान उपर्युक्त सभी क्रियाएँ अक्सर ओवरलैप होती हैं। जहां उल्लंघनकर्ता पेटेंट किए गए उत्पाद या प्रक्रिया को हल्का बनाता है लेकिन वास्तव में पेटेंटधारक के आविष्कार की आवश्यक विशेषताओं को अपनाता है, आविष्कार की समान नकल या अमूर्त भिन्नता उल्लंघन के बराबर होती है।

कोई उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसका फैसला प्रत्येक मामले में अलग-अलग किया जाना चाहिए। किसी भी मामले में, कोई उल्लंघन हुआ है या नहीं, इसका निर्धारण मामले के तथ्यों से ही होगा।

उपचार— जब पेटेंटधारक के पेटेंट अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो इसका समाधान न्यायिक हस्तक्षेप के माध्यम से किया जाता है। वादी अपने अधिकारों के उल्लंघन के लिए क्षतिपूर्ति प्राप्त करने तथा निषेधाज्ञा की कार्यवाही करने का हकदार है। इसके अतिरिक्त, वादी उल्लंघन के परिणामस्वरूप हुई वास्तविक आर्थिक हानि के लिए क्षतिपूर्ति पाने का भी हकदार है। न्यायालय अन्तरवर्ती निषेधाज्ञा भी जारी कर सकता है, लेकिन ऐसा करते समय न्यायधीश को यह अवश्य देखना चाहिए कि जो कुछ भी किया गया है, उससे वादी के सम्पूर्ण आविष्कार पर प्रभाव पड़ा है या नहीं। यदि किसी व्यक्ति ने अपना पेटेंट नियंत्रक के पास पंजीकृत करा लिया है, तो उस उपयोग पर उसका एकाधिकार हो जाता है। पेटेंटधारक निषेधाज्ञा तथा स्थायी निषेधाज्ञा की मांग कर सकता है, इसके अतिरिक्त वह अपनी हानि की भरपाई की मांग कर सकता है, जो दूसरे पक्ष को हुई है। यहां तक कि उल्लंघनकर्ता द्वारा निर्मित माल को भी नष्ट करना पड़ सकता है।

प्रश्न न0 10— निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

उत्तर— (1) प्रतिलिप्याधिकार का स्वामित्व — कॉपीराइट स्वामित्व जटिल हो सकता है और कई कारकों पर निर्भर करता है, जिसमें काम का प्रकार, इसे कैसे बनाया गया और कानूनी समझौते शामिल हैं। सामान्य तौर पर, किसी कृति का निर्माता कॉपीराइट का प्रथम स्वामी होता है। हालाँकि, इसमें कई अपवाद हैं, जैसे कि जब काम रोजगार के दौरान बनाया गया था या जब इसे कमीशन किया गया था।

कॉपीराइट स्वामित्व के कुछ उदाहरण यहां दिए गए हैं—

किराये पर लिए गए कार्य—जब कोई कर्मचारी अपने रोजगार के दायरे में कोई काम करता है, तो नियोक्ता कॉपीराइट का मालिक होता है। यह सिद्धांत कुछ स्वतंत्र ठेकेदारों और कमीशन किए गए कामों पर भी लागू होता है।

सरकारी कार्य—किसी समझौते के अभाव में, सरकारी कार्यों का कॉपीराइट सरकार के पास होता है।

संयुक्त कार्य—जब दो या उससे ज्यादा रचनाकार मिलकर कोई ऐसा काम बनाते हैं जिसमें उनका योगदान शामिल होता है, तो वे कॉपीराइट के सह-स्वामी होते हैं। प्रत्येक योगदानकर्ता का योगदान स्वतंत्र रूप से कॉपीराइट योग्य होना चाहिए, और कॉपीराइट में उनकी समान रुचि होनी चाहिए।

कॉपीराइट स्वामित्व को असाइनमेंट, अनुबंध, वसीयत या वसीयत के माध्यम से भी स्थानांतरित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, एक नियोजित किसी कर्मचारी को लिखित, हस्ताक्षरित दस्तावेज के साथ किसी कार्य का कॉपीराइट दे सकता है।

(2) एक पेटेन्टी के अधिकार—भारत में, पेटेंट अवधि के दौरान पेटेंटधारक को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त होते हैं—

पेटेंट का उपयोग करने का अधिकार—पेटेंटधारक को पेटेंट उत्पाद बनाने, उपयोग करने, बेचने या वितरित करने या पेटेंट विधि का उपयोग करने का विशेष अधिकार है। इसमें वाणिज्यिक उद्देश्यों के लिए आविष्कार को दूसरों को लाइसेंस देने का अधिकार शामिल है। पेटेंटधारक किसी अन्य व्यक्ति को उनकी अनुमति से प्रक्रिया भी सौंप सकता है।

दूसरों को बाहर करने का अधिकार—पेटेंटधारक तीसरे पक्ष को पेटेंटधारक की स्वीकृति के बिना आविष्कार बनाने, उपयोग करने, बेचने या आयात करने से रोक सकता है। यह अधिकार सीमित समय सीमा के लिए वैध है, आमतौर पर पेटेंट आवेदन दाखिल करने से 20 साल तक।

कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार—पेटेंटधारक अपने पेटेंट अधिकारों के किसी भी अनधिकृत उपयोग या उल्लंघन के खिलाफ कानूनी कार्रवाई कर सकता है।

जब तक आवश्यक नवीकरण शुल्क का भुगतान किया जाता है, पेटेंट लागू रहता है।

(3) बौद्धिक सम्पदा और भू-सम्पदा अन्तर—बौद्धिक संपदा (आईपी) अमूर्त होती है और इसमें ब्रांड नाम, लोगो, उत्पाद डिजाइन, आविष्कार और रचनात्मकता से संबंधित अद्वितीय कार्य जैसी संपत्तियां शामिल हो सकती हैं। भू-संपत्ति एक भौतिक संपत्ति है जो मालिक के लिए आय उत्पन्न कर सकती है। आईपी और भू-संपत्ति के बीच कुछ अन्य अंतर इस प्रकार हैं—

परिभाषा—आईपी रचनात्मक विचारों की अभिव्यक्ति है, जबकि भू-संपत्ति एक भौतिक संपत्ति है, जैसे भूमि, बाड़, भवन आदि।

वास्तविकता—आईपी अमूर्त है, जबकि भू-संपत्ति मूर्त है।

सुरक्षा—आईपी अधिकार मूल रचना के उपयोग के अधिकार की रक्षा करते हैं, लेकिन विचार की नहीं। आईपी की तुलना में जमीनी संपत्ति की पहचान करना और उसे सुरक्षा प्रदान करना आसान हो सकता है।

मौद्रिक मूल्य—आईपी का मौद्रिक मूल्य परिवर्तनशील हो सकता है, जबकि भू-संपत्ति का मौद्रिक मूल्य सीमित होता है।

अवधि—कुछ आईपी अधिकार एक निश्चित समय तक चलते हैं, जबकि अन्य हमेशा के लिए चल सकते हैं। जमीनी संपत्ति मालिक के लिए आय उत्पन्न कर सकती है, बिना मालिक को संपत्ति का वास्तविक काम किए।

प्रश्न न० 1— उन कारणों तथा घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिये जिनके कारण संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हुई।

उत्तर— बीसवीं शताब्दी में दो विध्वंसकारी विश्व युद्ध हुए। प्रथम विश्व युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई। राष्ट्रसंघ का मुख्य उद्देश्य विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना था। राष्ट्रसंघ अपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहा। राष्ट्रसंघ की असफलता का मुख्य प्रमाण द्वितीय विश्वयुद्ध के विध्वंसकारी प्रभावों ने राष्ट्रों को फिर एक बार विवश किया कि वह एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करे जिससे उनके पारस्परिक विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल किया जा सके तथा विश्व युद्ध में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित की जा सके। अतः युद्ध के दौरान अधिकांश महान् राष्ट्रों ने इस दिशा में प्रयास आरम्भ कर दिये थे। उनके अधक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप 26 जनवरी, 1945 को सैन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र चार्टर पर 51 राष्ट्रों ने हस्ताक्षर किए। तत्पश्चात् निर्धारित राष्ट्रों को सरकारों ने इसका अनुसमर्थन 24 अक्टूबर, 1945 तक कर दिया, अतः 24 अक्टूबर, 1945 को विधियत संयुक्त राष्ट्र की स्थापना हो गई। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि युद्ध के दौरान ही राष्ट्रों ने इस दिशा में प्रयास कर दिये थे। इन प्रयासों तथा घटनाओं का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों में करेंगे—

(1) सेंट जेम्स के महल की घोषणा (The Declaration of St- James's Palace, June 12, 1941)—जून, 1941 तक लन्दन लगभग 9 निष्कासित देशों का गृह बन चुका था। ग्रीक, बेल्जियम, चेकोस्लोवाकिया, लज्जमवर्ग, नीदरलैण्ड, नार्वे, पोलैंड, यूगोस्लोविया की निष्कासित सरकार के प्रतिनिधि तथा ब्रिटेन, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका के प्रतिनिधि तथा फ्रांस के जनरल द गाल लन्दन के विख्यात सेंट जेम्स के महल में मिले तथा 12 जून, 1941 को उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किये जिससे उन्होंने शान्ति स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की।

(2) ऐटलांटिक चार्टर (The Atlantic Charter August 14, 1941)—सेन्ट जेम्स के महल की घोषणा के बाद दूसरी महत्वपूर्ण घटना 14 अगस्त, 1941 की ऐटलांटिक चार्टर थी। यह विश्व के दो महान राजनीतिज्ञों ब्रिटेन के प्रधानमंत्री, विन्स्टन चर्चिल तथा अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रेन्कलिन रूजवेल्ट का मिलन था। ये दोनों राजनीतिज्ञ ऐटलांटिक महासागर पर एक जहान में मिले थे। इसलिए जिस चार्टर पर उन्होंने हस्ताक्षर किये उसे 'ऐटलांटिक चार्टर' कहते हैं। इस चार्टर में उन्होंने नाजीवाद को समाप्त करने का संकल्प लिया तथा राज्यों की समानता, सार्वभौमिक शान्ति, सामूहिक सहयोग, विजय द्वारा प्रदेशों के अधिग्रहण पर निषेध आदि के सिद्धान्तों के प्रति आस्था प्रकट की।

(3) संयुक्त राष्ट्र घोषणा (The United Nations Declaration) Jan. 1, 1942)—तीसरी महत्वपूर्ण घटना संयुक्त राष्ट्र की घोषणा थी जिस पर अमेरिका के राष्ट्रपति रूजवेल्ट, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल, रूस के मैक्सिम लिट्वीनीय तथा चीन के टी. वी. सुंग ने जनवरी 1, 1942 को हस्ताक्षर किये। तत्पश्चात् 22 देशों के प्रतिनिधियों ने भी इस पर हस्ताक्षर किये। प्रत्येक सरकार ने सहयोग करने का वचन दिया तथा यह निश्चय किया कि अलग से शत्रु के साथ कोई विराम-सन्धि या सन्धि नहीं करेंगे। यह घोषणा बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें सर्वप्रथम 'संयुक्त राष्ट्र' शब्दों का प्रयोग हुआ तथा 'संयुक्त राष्ट्र' की घोषणा पर हस्ताक्षर किये थे, उन्हें भी संयुक्त राष्ट्र का मौलिक सदस्य मान लिया गया।

(4) मास्को-घोषणा (The Moscow Declaration, Oct. 30, 1943)—30 अक्टूबर, 1943 को ब्रिटेन, अमेरिका, रूस तथा चीन के प्रतिनिधि मास्को-सम्मेलन में एकत्रित हुए तथा उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किये, जिसे मास्को घोषणा कहते हैं। इस घोषणा में उन्होंने शत्रु के विरुद्ध संयुक्त कार्यवाही करने का संकल्प लिया तथा ऐसी विश्व-संस्था की स्थापना पर जोर दिया जो राष्ट्रों की समानता के सिद्धान्त पर आधारित हो, सभी देशों के लिए खुली हो तथा अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखे।

(5) तेहरान-सम्मेलन (The Teheran Conference, Dec. 1, 1943)—1 दिसम्बर, 1943 को चर्चिल, रूजवेल्ट तथा स्टालिन तेहरान में एकत्रित हुए। उन्होंने एक घोषणा पर हस्ताक्षर किया जिसमें एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था को स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जो विश्व-शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रख सके।

(6) डम्बरटन-ओक्स-सम्मेलन, 1941—संयुक्त राष्ट्र को स्थापना के संबंध में यह सम्मेलन महत्वपूर्ण है। यह सम्मेलन दो चरणों में हुआ—पहले समय में रूस, ब्रिटेन तथा अमेरिका के प्रतिनिधियों ने भाग लिया दूसरे चरण में चीन, ब्रिटेन तथा अमेरिका ने भाग लिया। इस सम्मेलन में भावी विश्व-संस्था की रचना कार्य, मुख्य अंग आदि के विषय में विस्तारपूर्वक विचार की गई। ब्रिटेन, चीन, रूस तथा अमेरिका ने भावी संस्था का नाम संयुक्त राष्ट्र (United Nations) रखने में अपनी सहमति प्रदान कर दी।

(7) याल्टा सम्मेलन (The Yalta-Conference, Feb. 11, 1945)—डम्बरटन ओक्स सम्मेलन के बाद अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना याल्टा सम्मेलन थी। इस सम्मेलन में ब्रिटेन से चर्चिल, अमेरिका से रूजवेल्ट तथा रूस से स्टालिन अपने विदेश मन्त्रियों तथा सैनिक अध्यक्षा के साथ एकत्रित हुए। इस सम्मेलन में भावी विश्व संस्था की स्थापना के लिये अन्तिम रूप से निश्चय किया गया। इस सम्मेलन में यह भी तय किया गया कि अगला सम्मेलन 25 अप्रैल, 1945 को सैन फ्रांसिस्को में भावी संस्था के लिए चार्टर तैयार करने के लिये होगा।

(8) सैन फ्रांसिस्को-सम्मेलन (San Francisco Conference, June 25, 1945)—सैन फ्रांसिस्को में जून 25, 1945 को अनेक राष्ट्रों का सम्मेलन लार्ड हैलीफैक्स की अध्यक्षता से हुआ। इस सम्मेलन में चार्टर के लिए मतदान हुआ तथा अन्त में सर्वसम्मति से चार्टर स्वीकार कर लिया गया। परन्तु चार्टर फौरन ही लागू नहीं हो गया। इसमें यह

प्रावधान रखा गया था कि चार्टर तब लागू होगा जब चीन, फ्रांस, ब्रिटेन, अमेरिका तथा रूस की सरकारें तथा अन्य हस्ताक्षर करने वाले राज्य की संस्था की बहुमत सरकारें उनका अनुसमर्थन कर देंगी। यह शर्त 24 अक्टूबर, 1945 को पूरी हो गयी अतः उस दिन से संयुक्त राष्ट्र चार्टर लागू हो गया। सैन फ्रांसिस्को में 51 राज्यों ने हस्ताक्षर किये थे और आज संयुक्त राष्ट्र के 175 सदस्य हैं। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र ने लगभग सार्वभौमिकता प्राप्त कर ली है। जैसा कि चार्टर की प्रस्तावना से स्पष्ट है, संयुक्त राष्ट्र की स्थापना का मुख्य उद्देश्य भावी पीढ़ियों को युद्ध के प्रकोप से बचाना था ("to save the succeeding generations from the scourge of war") अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा रखने के अतिरिक्त राष्ट्रों में मित्रतापूर्ण सम्बन्धों का विकास करना, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अथवा मानवीय क्षेत्रों में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की प्रोत्साहन देना तथा संयुक्त राष्ट्र को इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए राष्ट्रों के कार्यों में समन्वय करने के लिए संयुक्त राष्ट्र को केन्द्र बनाना इसके उद्देश्य हैं।

प्रश्न न० 2— संयुक्त राष्ट्र महासभा की संरचना एवं कार्यों की विवेचना कीजिए।

उत्तर— संयुक्त राष्ट्र महासभा की संरचना— महासभा में संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है। इस समय संयुक्त राष्ट्र के 175 सदस्य हैं। प्रत्येक सदस्य को एक वोट देने का अधिकार होता है। परन्तु यह महासभा अपने 5 प्रतिनिधियों तक ही रख सकती है (अनुच्छेद 9)।

मतदान अधिकार (Voting Rights)— चार्टर के अनुच्छेद 18 के अनुसार प्रत्येक सदस्य की एक मत देने का अधिकार होता है। महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर निर्णय महासभा के सदस्य के 2/3 बहुमत से किया जाता है। अनुच्छेद 18 के अनुसार महत्वपूर्ण प्रस्तावों में अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सुझाव के सुरक्षा-परिषद् के गैर-स्थायी सदस्यों का निर्वाचन, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन, न्यास परिषद् के सदस्यों का निर्वाचन, नये राज्यों को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाना, सदस्यों के अधिकारों तथा निषेधाधिकारों को निलम्बित करना, सदस्यों को निष्कासित करना एवं ट्रस्टीशिप व्यवस्था से सम्बन्धित प्रश्न शामिल हैं। इसके अन्य प्रस्ताव महासभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्णीत किये जाते हैं।

प्रक्रिया—महासभा के वार्षिक अधिवेशन संयुक्त राष्ट्र के महासचिव अथवा सदस्यों के बहुमत द्वारा बुलाये जा सकते हैं (अनुच्छेद 20)। महासभा को अधिकार प्राप्त है कि यह प्रक्रिया सम्बन्धी अपने नियम स्वयं निर्मित करे (अनुच्छेद 21)। महासभा को यह भी अधिकार प्राप्त है कि यह अपने कार्यों को पूरा करने के लिए गौण अंग स्थापित कर सकती है। महासभा का कार्य महासचिव के रिपोर्ट पर बहस से प्रारम्भ होता है।

महासभा में सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता है तथा प्रत्येक राज्य इसमें अपने 5 प्रतिनिधि तक भेज सकता है। अतः यह एक बड़ी सभा है। महासभा अपना कार्य मुख्यतया समितियों द्वारा करती है। महासभा की 4 प्रकार की समितियाँ हैं— (1) मुख्य समितियाँ (Main Committees), (2) प्रक्रिया सम्बन्धी समितियाँ (Procedural Committees), (3) स्थायी समितियाँ (Standing Committees), तथा (4) तदर्थ समितियाँ (Adhoc Committees)।

महासभा को मुख्य समिति महासभा द्वारा विचारणीय प्रस्तावों के एकेन्डा आदि पर विचार करती है। यह महासभा के लिए सुझाव आदि तैयार करती है। मुख्य समितियों में प्रत्येक सदस्य को प्रतिनिधित्व का अधिकार है। महासभा की मुख्य समितियाँ निम्नलिखित हैं—(3) राजनैतिक तथा सुरक्षा समिति (इसके अतिरिक्त एक विशेष राजनैतिक समिति भी स्थापित की गई है जो पहली समिति की सहायता करती है। (2) आर्थिक एवं वित्तीय समिति, (3) सामाजिक, मानवीय एवं सांस्कृतिक समिति (4) विन्यास समिति (Trusteeship Committee including non-self Governing Territories), (5) प्रशामनिक एवं बजट समिति तथा (6) कानूनी समिति।

महासभा के कार्य तथा शक्तियाँ— संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के अनुच्छेद 7 को अनुस्वर महासभा संयुक्त राष्ट्र के 6 प्रमुख अंगों में से एक है। प्रो. लिओनार्ड (Prof- Leonard) ने महासभा के कार्यों तथा शक्तियों को पाँच शीर्षकों में विभाजित किया है— (1) विमर्शकारी कार्य (Deliberative Functions), (2) पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य (Supervisory Functions), (3) वित्तीय कार्य (Financial Functions), (4) निर्वाचन संबंधी कार्य (Elective Functions) तथा (अ) संवैधानिक कार्य (Constitutive Functions)

(1) विमर्शकारी कार्य (Deliberative Functions)— विमर्शकारी कार्यों से तात्पर्य महासभा के उन कार्यों से है जिनके अन्तर्गत वह विचार-विमर्श करती है, अध्ययन करती है तथा अपने सुझाव पेश करती है। महासभा के विमर्शकारी कार्य तथा शक्तियाँ निम्नलिखित

(1) महासभा संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत किसी भी प्रश्न पर विचार-विमर्श कर सकती है तथा अपने सुझाव संयुक्त राष्ट्र तथा सुरक्षा परिषद् को दे सकती है (अनुच्छेद 10)। परन्तु इसका एक अपवाद है। महासभा उस प्रश्न पर विचार नहीं कर सकती जिस पर उस समय सुरक्षा-परिषद् में विचार किया जा रहा है (अनुच्छेद 12)।

(2) महासभा शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के लिए (जिनमें निशस्त्रीकरण भी शामिल है) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के सामान्य सिद्धान्तों पर विचार-विमर्श कर सकती है। (अनुच्छेद 11)।

(3) महासभा को यह अधिकार प्राप्त है कि यह सुरक्षा परिषद् का ध्यान उन परिस्थितियों की ओर आकर्षित कर सकती है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को खतरा होने की सम्भावना है (अनुच्छेद 11-3)।

(4) महासभा को यह भी अधिकार है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग में वृद्धि उद्देश्य के लिए अध्ययन करा सकती है तथा इस विषय में अपने सुझाव पेश कर सकती है।

(5) संयुक्त राष्ट्र की महासभा को यह भी अधिकार प्राप्त है कि वह किसी ऐसी समस्याओं या परिस्थितियों, जिससे राष्ट्रों के सम्बन्ध खराब होने की सम्भावना होने की संभावना शांतिपूर्वक समाधान के लिए अपना सुझाव तथा ढंग प्रस्तावित कर सकती है।

उपर्युक्त शक्तियों तथा कार्यों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि संयुक्त राष्ट्र को महासभा अत्यधिक प्रभावशाली अंग है। इसमें सन्देह नहीं है कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से महासभा के कार्यों तथा शक्तियों में निरन्तर वृद्धि हुई है तथा इसने महत्वपूर्ण कार्य किया है। परन्तु फिर भी इसको कुछ परिसीमाएँ (Limitations) हैं, वे परिसीमाएँ निम्नलिखित हैं—

(1) महासभा के सुझाव का प्रस्ताव राज्यों पर बन्धनकारी प्रभाव नहीं रखते। ये केवल सुझाव होते हैं। संयुक्त राष्ट्र की महासभा को विश्व-संसद कहना अनुचित होगा। क्योंकि यह संसद राज्यों के लिए विधि का निर्माण नहीं कर सकती तथा इसके प्रस्ताव एवं घोषणाएँ राज्यों पर बन्धनकारी प्रभाव नहीं डालते। परन्तु कुछ परिस्थितियों में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा के प्रस्ताव तथा घोषणाएँ विधिक लक्ष्यार्थ (Legal implication) उत्पन्न कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि महासभा के प्रस्ताव सर्वसमिति से पारित हों। महासभा के केवल वहीं प्रस्ताव विधिक परिणाम उत्पन्न कर सकते हैं जिनमें परम्परागत अन्तर्राष्ट्रीय विधि की घोषणा की जाती है अथवा अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नये नियमों का निर्माण किया जाता है या चार्टर के प्रावधानों का निर्वचन (Interpretation) किया जाता है।

(2) महासभा की दूसरी महत्वपूर्ण परिसीमा यह है कि संयुक्त राष्ट्र सदस्य राज्यों के आन्तरिक या घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है। संयुक्त राष्ट्र का यह सिद्धान्त संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 2(7) में प्रतिपादित किया गया है।

(2) **पर्यवेक्षण सम्बन्धी कार्य (Supervisory Functions)**— पर्यवेक्षण कार्यों से हमारा तात्पर्य उन कार्यों से है जिनके द्वारा महासभा दूसरे अंगों तथा विशिष्ट एजेंसियों (Specialised Agencies) पर अपना नियन्त्रण रखती है। यह अंग आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा न्यास-परिषद् (Trusteeship Council) है। आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् वास्तव में महासभा के अधीनस्थ अंग के रूप में काम करती है। इसी प्रकार न्यास-परिषद् के सामाजिक क्षेत्रों से सम्बन्धित मामलों को छोड़कर और सभी मामलों पर महासभा का निषन्त्रण होता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षा परिषद् तथा संयुक्त राष्ट्र के द्वारा मुख्य अंग मावसभा को वार्षिक रिपोर्ट प्रेषित करते हैं। महासभा उन रिपोर्टों पर अपना विचार-विमर्श करती है। जब महासभा का सत्र प्रारम्भ होता है तो महासभा संयुक्त राष्ट्र के महासचिव की वार्षिक रिपोर्ट पर विचार-विमर्श करती है। अतः महासभा संयुक्त राष्ट्र का एक ऐसा मुख्य अंग है जो अन्य अंगों पर अपना नियन्त्रण रखती है।

(3) **वित्तीय कार्य**—प्रो लियोनार्ड के अनुसार महासभा एक शक्तिशाली अंग है क्योंकि यह संयुक्त राष्ट्र संस्था पर वित्तीय नियन्त्रण रखती है। चार्टर के अनुच्छेद 17 के अनुसार महासभा संयुक्त राष्ट्र के बजट पर विचार-विमर्श करती है तथा उसे पारित करती है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्वपूर्ण शक्ति यह है कि महासभा संस्था के व्यय को सदस्यों में बाँटती है अर्थात् सदस्यों की संस्था के लिए यह व्यय देना पड़ता है जो महासभा निर्धारित करती है। यह एक महत्वपूर्ण शक्ति तथा कार्य है। महासभा की आर्थिक शक्तियों से सम्बन्धित एक प्रमुख बाद संयुक्त राष्ट्र के कुछ खर्च [Certain Expenses of U-N- (1962), है। इस बाद के तथ्य तथा प्रतिपादित नियम निम्नलिखित हैं—

शांति के लिये संगठित होने के प्रस्ताव (न्दपजमक वित्त चम्बम त्मेवसनजपवद, 1950) के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र की महासभा को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में भी कुछ शक्तियाँ प्राप्त हो गईं। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा अपनी संकटकालीन फौजों की विराम-सन्धि के लिए अथवा शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए भेज सकती है। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासभा ने स्वेज नहर के संकट (Suez Crisis) में अपनी संकटकालीन फौजें (United Nations Emergence Force on UNEF) मिस्र में 1956 में भेजी। इसके उपरान्त 1960 में इसी प्रस्ताव के अन्तर्गत फौजें कांगो (U-N] Operation in Congo) में भेजी। रूस प्रारम्भ से हो शांति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव, 1950 का विरोध कर रहा था। उसके अनुसार यह चार्टर के प्रावधान के विरुद्ध था। अतः रूस ने कांगो तथा मिस्र में भेजी जाने वाली फौजों पर होने वाले खर्चों को देने से इन्कार कर दिया परिणामस्वरूप संयुक्त राष्ट्र के सम्मुख आर्थिक संकट उत्पन्न हो गया। अतः 1961 में संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाहकारी मत देने को कहा। महासभा ने अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से अनुच्छेद 17 के पैरा 2 को स्पष्ट करने को कहा। अनुच्छेद 17 के पैरा 2 में एक प्रावधान है कि सदस्य राज्यों के खर्चे सामान्य सभा द्वारा निर्धारित किये जायेंगे। अप्रत्यक्ष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने शांति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव 1950 की वैधता को स्वीकार किया तथा यह स्पष्ट किया कि संस्था हर वह कार्य कर सकती है जो चार्टर द्वारा वर्जित नहीं है। न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय के बावजूद समस्या का हल नहीं हो पाया क्योंकि रूस तथा फ्रांस ने फौजों पर खर्चा देने से फिर भी इन्कार किया। अतः महासभा ने सितम्बर 1, 1965 को एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह कहा गया कि मिस्र तथा कांगो में भेजी जाने वाली संयुक्त राष्ट्र की फौजों के सम्बन्ध में हुए खर्चों में अनुच्छेद 19 को स्वगू नहीं किया जायेगा। अनुच्छेद 19 के अनुसार वे सदस्य राज्य, जो संस्था द्वारा निर्धारित अपने खर्चे नहीं देते हैं उनके मतदान के अधिकार को निलम्बित किया जा सकता है। यह प्रावधान इसलिए रखा गया क्योंकि अमेरिका इस बात पर दृढ़ था कि वह रूस के मतदान के अधिकार की निलम्बित करवा देगा। इसके अतिरिक्त संस्था के आर्थिक संकट को दूर करने के लिए सदस्यों से यह कहा गया कि उपर्युक्त फौजों को भेजे जाने वालों पर हुए खर्चों को राष्ट्र स्वैच्छिक अनुदान देकर पूरा करें।

(4) **निर्वाचन सम्बन्धी कार्य**— संयुक्त राष्ट्र की महासभा दो प्रकार के निर्वाचन सम्बन्धी कार्य सम्पादित करती है, वे निम्नलिखित हैं— (1) नये राज्यों की सदस्यता से सम्बन्धित तथा (2) दूसरे अंगों के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी।

(1) **नये राज्यों की सदस्यता से सम्बन्धित निर्वाचन कार्य**—संयुक्त राष्ट्र चार्टर में 'प्रवेश' (Admission) शब्द का प्रयोग किया गया। परन्तु प्रो. लिओनार्ड (Leonard) के अनुसार वास्तव में नये राज्यों का उनकी सदस्यता के लिये महासभा में चयन होता है। जब नये राज्य के प्रार्थनापत्र पर सुरक्षा परिषद् की सहमति प्राप्त हो जाती है तो महासभा उसे 2/3 उपस्थित सदस्यों के बहुमत से चयन करके संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाती है।

इसके अतिरिक्त सदस्यों की सदस्यता खोने के सम्बन्ध में महासभा को कुछ अधिकार प्राप्त हैं। इस सम्बन्ध में महासभा की निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं—

(1) यदि किसी सदस्य के विरुद्ध सामूहिक कार्यवाही की जाती है तो सुरक्षा परिषद् की सहमति से महासभा 2/3 सदस्यों के बहुमत से उस सदस्य को निलम्बित कर सकती है।

(2) यदि कोई सदस्य संयुक्त राष्ट्र चार्टर का खुलेआम उल्लंघन करता है तो सुरक्षा-परिषद् की सहमति या सुझाव पर महासभा उपस्थित सदस्यों के 2/3 बहुमत से उस सदस्य को संस्था से निष्कासित कर सकती है।

(3) इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 19 के अनुसार यह सदस्य जो संस्था द्वारा निर्धारित अपने खर्चे नहीं देते हैं उन्हें सुरक्षा परिषद् के सुझाव तथा सहमति पर महासभा 2/3 सदस्य के द्वारा उनके मतदान के अधिकारों से निलम्बित कर सकती है।

(2) **दूसरे अंगों के सदस्यों के निर्वाचन सम्बन्धी कार्य**— इस सम्बन्ध में महासभा निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती है—

(1) यह सुरक्षा-परिषद् के 10 गैर-स्थायी सदस्यों का निर्वाचन करती है।

(2) यह आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् के 54 सदस्यों का चयन करती है।

(3) यह न्यास-परिषद् के कुछ सदस्यों का चयन करती है।

(4) यह सुरक्षा-परिषद् के साथ मिलकर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों का चयन या चुनाव करती है। (5) महासभा सुरक्षा-परिषद् के सुझाव तथा सहमति के पद संयुक्त राष्ट्र के महासचिव को नियुक्त करती है।

(5) **संवैधानिक कार्य (Constituent Functions)**—महासभा कुछ संवैधानिक कार्य श्री सम्पादित करती है। महासभा चार्टर को संशोधन में भाग लेती है। चार्टर का कोई संशोधन तभी सम्भव है जबकि संयुक्त राष्ट्र के 2/3 सदस्य उसे स्वीकार करे जिसमें 5 स्थायी सदस्यों का होना आवश्यक है तथा ये 2/3 सदस्य इसका अनुसमर्थन करें। अतः महासभा 2/3 मतों से चार्टर के संशोधन के लिये अपनी सहमति प्रदान नहीं करती, चार्टर संशोधित नहीं हो सकता। चार्टर के संशोधन के लिये यह आवश्यक है कि इस पर पाँच स्थायी सदस्यों समर्थन की सहमति के बाद उन सदस्यों को सरकारें ऐसे संशोधन का अनुसमर्थन करें।

उपर्युक्त शक्तियों तथा कार्यों का अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि महापरिषद् संपूत राष्ट्र कर एक महत्वपूर्ण प्रमुख अंग है। संयुक्त राष्ट्र की महासभा की शक्तियाँ नवम्बर 3, 1950 शान्ति के लिए संगठित होने के लिये प्रस्ताव पारित होने से अपने चरम सीमा पर पहुँच गई। इस प्रस्ताव द्वारा महासभा को अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा के विषय में काफी शक्तियाँ प्राप्त हो गई।

प्रश्न न0 3— संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता से सम्बन्धित विधि की विवेचना कीजिये। सदस्यता के निलम्बन और निष्कासन की प्रक्रिया का उल्लेख करें।

उत्तर—सदस्यता—संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार, निम्नलिखित दो प्रकार के हो सकते हैं—(1) मौलिक सदस्य तथा (2) अनुच्छेद 4 के अनुसार बनाये जाने वाले सदस्य। संयुक्त राष्ट्र के मौलिक सदस्य वे राज्य हैं जिन्होंने सैन फ्रांसिस्को में संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन में भाग लिया था तथा चार्टर पर हस्ताक्षर करके बाद में उसका अनुसमर्थन किया था। इसके अतिरिक्त वे भी एक मौलिक सदस्य माने जायेंगे जिन्होंने जनवरी 1, 1942 की संयुक्त राष्ट्र घोषणा पर हस्ताक्षर किया था तथा तत्पश्चात् विद्यमान चार्टर पर हस्ताक्षर करके अनुच्छेद 110 के अनुसार उसका अनुसमर्थन किया। (अनुच्छेद 3)

किसी भी राज्य को सुरक्षा परिषद् की संस्तुति पर महासभा के दो-तिहाई मत द्वारा सदस्य बनाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 4 में किसी राज्य को सदस्य बनाने की निम्नलिखित 5 शर्तें वर्णित की गई हैं— (1) एक राज्य होना (2) शान्तिप्रेमी होना, (3) चार्टर के उत्तरदायित्वों को स्वीकार करना, (4) चार्टर के उत्तरदायित्वों का पालन करने की इच्छा होना, (5) उन उत्तरदायित्वों को पूरा करने की क्षमता।

नये राज्यों को सदस्य बनाने में संयुक्त राष्ट्र का व्यवहार अनुच्छेद 4 में वर्णित उपर्युक्त प्रावधानों से असंगत है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राज्य बहुधा राज्यों को सदस्य बनाने के सम्बन्ध में मतदान देते समय अपने निजी स्वार्थ आदि की सर्वोपरि महत्व देते हैं तथा उपर्युक्त शर्तों के अतिरिक्त भी शर्तें लगाते हैं। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद रूस ने अपने निषेधाधिकारों (Vetoes) द्वारा नये राज्यों को सदस्य होने से रोका तथा अनुच्छेद 4 में वर्णित शर्तों के अतिरिक्त शर्तें लगायी। उदाहरण के लिए इटली तथा फिनलैण्ड की सदस्यता के प्रश्न पर रूस ने यह शर्त लगायी कि वह अपना मतदान तभी देगा जब बलगारिया, हंगरी तथा रूमानिया को भी सदस्य बनाया जाय, अतः संयुक्त राष्ट्र की महासभा ने इस विषय में न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से 1948 में सलाहकारी माह देने के लिये कहा। महासभा ने न्यायालय के सम्मुख निम्नलिखित दो प्रश्न रखे—

(1) क्या संयुक्त राष्ट्र का कोई सदस्य सुरक्षा परिषद अथवा महासभा में सदस्यता को प्रार्थना पर अपना मतदान करते समय उस पर कोई ऐसी शर्त लगा सकता है जो चार्टर में वर्णित नहो?

(2) क्या कोई सदस्य अपनी सकारात्मक महमति पर यह शर्त लगा सकता है कि कुछ दूसरे राज्य भी सदस्य बनाये जायें?

न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अपने सलाहकारी मत [Conditions of the Membership in the U- N- 1- C- J- Rep- (1948)] में उपर्युक्त दोनों प्रश्नों में राज्यों को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाये जाने के प्रश्न पर मतदान करते समय सदस्य कोई ऐसी शर्त नहीं लगा सकते जो संयुक्त राष्ट्र चार्टर में वर्णित नहीं है तथा विरोधकर यह शर्त नहीं लगा सकता कि कुछ और राज्य भी सदस्य बनाये जायें।

अतः न्यायालय के अनुसार चार्टर में वर्णित शर्तों को हो ध्यान में रखा जाना चाहिये तथा थाहा राजनीतिक बातों को महला दिया जाना चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के इस मत के बावजूद महाशक्तियों के निषेधाधिकार के कारण अनेक राज्यों की सदस्यता के प्रार्थनापत्र पर सुरक्षा-परिषद् अपनी सकारात्मक सहमति देने में असमर्थ रही। अतः अगला प्रश्न उदा फि क्या महासभा केवल अपने निर्णय द्वारा किसी राज्य को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बना सकती है? नवम्बर 22, 1949 की महासभा ने इस प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने फिर सलाहकारी मत देने के लिए कहा। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने मार्च 3, 1950 के अपने सलाहकारी मत [Compe] tence of the General Assembly Regarding the Admission to the U- N- L- C- J- Reports (1950), में यह उत्तर दिया कि किसी राज्य की सदस्य बनने के लिए सुरक्षा-परिषद् तथा महासभा दोनों की सकारात्मक सन्तुति (affirmative recommendation) आवश्यक है।

इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र में किसी राष्ट्र को सदस्य के रूप में प्रवेश दिये जाने का एक ऐसा मामला है जिसका निर्णय दोनों अंगों सुरक्षा परिषद और महासभा के द्वारा किया जाता है। अनुच्छेद 4 के परिच्छेद 2 के प्रावधान से ऐसा प्रतीत होता है कि नये सदस्यों का प्रवेश केवल महासभा के द्वारा होता है। किन्तु ऐसा नहीं है। यदि सुरक्षा परिषद किसी नये राज्य के प्रवेश के पक्ष में नहीं है तो उसे कोई सिफारिश करने की आवश्यकता नहीं है, ऐसी स्थिति में महासभा नये राज्य के प्रवेश के मामले पर कोई विनिश्चय नहीं कर सकती है।

संयुक्त राष्ट्र में सदस्य बनने की शर्तें (Conditions of becoming a Member of the United Nations)— चार्टर के अनुच्छेद 4 का परिच्छेद। उन शर्तों का उल्लेख करता है, जिन्हें संयुक्त राष्ट्र का सदस्य होने के लिए राज्यों से पूरा करने की अपेक्षा की जाती है। ये शर्तें हैं—प्रथम, राज्य को शान्तिप्रिय होना चाहिये, दूसरा, ये राज्य सदस्य हो सकते हैं, जो चार्टर में वर्णित बाध्यताओं को स्वीकार करते हैं। और तीसरा, ये राज्य सदस्य हो सकते हैं, जो चार्टर में वर्णित बाध्यताओं को पालन करने के लिए समर्थ और इच्छुक हैं।

संयुक्त राष्ट्र के कुल सदस्यों की संख्या 193 हो गयी है। इस प्रकार इस संगठन में विश्व के अधिकतर राज्यों का प्रतिनिधित्व होता है। वास्तव में, यह संगठन की सार्वभौमिकता के लक्ष्य की ओर एक महत्वपूर्ण कदम है।

सदस्य का निलम्बन (Suspension of a Member)— चार्टर का अनुच्छेद 5 प्रावधान करता है कि सदस्य को संयुक्त राष्ट्र में निलम्बित किया जा सकता है। इस अनुच्छेद के अनुसार सदस्य को सदस्यता के अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों का प्रयोग करने से निलम्बित किया जा सकता है, यदि सुरक्षा परिषद ने उसके विरुद्ध कोई निवारक या प्रवर्तन कार्यवाही की है। निलम्बन सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा किया जा सकता है। सदस्य का निलम्बन गैर-प्रक्रिया (non-procedural) विषय है, इसलिए यह सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सहमति सूचक मत को शामिल करके नौ सदस्यों के सकारात्मक मत की अपेक्षा करता है। इस प्रावधान का यह तात्पर्य है कि जब किसी सदस्य को निलम्बित किया जाता है, तो वह अपने उन सभी अधिकारों से वंचित हो जाता है, जो उसे प्राप्त हैं। उदाहरण के लिए, वह महासभा तथा तीन परिषदों (सुरक्षा परिषद, आर्थिक तथा सामाजिक और न्यायिता परिषद) में प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता और यह इन परिषदों के सदस्य के रूप में निर्वाचित नहीं किया जा सकता। उसे चार्टर के अनुच्छेद 31, 32 तथा 34 के अधीन सुरक्षा परिषद या महासभा का ध्यान आकृष्ट करने के लिए तथा अनुच्छेद 35 के परिच्छेद 1 के अधीन अन्य परिस्थितियों में सुरक्षा परिषद के विचार-विमर्श में भाग लेने के लिए आमंत्रित नहीं किया जा सकता। लेकिन राज्य निलम्बित होने के बाद भी सदस्य बना रहता है तथा उसे सदस्य की सभी बाध्यताओं को पूरा करना होता है।

सदस्य का निष्कासन (Expulsion of a Member)— चार्टर का अनुच्छेद 6 संयुक्त राष्ट्र से सदस्य के निष्कासन के सम्बन्ध में प्रावधान करता है। इसके अनुसार यदि कोई सदस्य बार-बार चार्टर के सिद्धान्तों का उल्लंघन करता है, तब यह सुरक्षा परिषद की सिफारिश पर महासभा द्वारा निष्कासित किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र से निष्कासन प्रवर्तन कार्यवाही (enforcement action) है क्योंकि यह कार्यवाही सम्बद्ध राज्य की इच्छा के विरुद्ध की जाती है। निष्कासन सदस्य की इच्छा के प्रतिकूल किया जाता है। चूँकि निष्कासन प्रक्रियात्मक मामला है, इसलिए यह सुरक्षा परिषद के स्थायी सदस्यों के सहमति सूचक मत को शामिल करके नौ सदस्यों के सकारात्मक मत की अपेक्षा करता है। इसके लिए, अनुच्छेद 18 के परिच्छेद 2 के अनुरूप महासभा में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के दो तिहाई बहुमत की भी आवश्यकता होती है। सदस्यों निष्कासन के लिए महासभा तथा सुरक्षा परिषद दोनों का निर्णय आवश्यक है। अब तक कोई भी सदस्य संयुक्त राष्ट्र से निष्कासित नहीं किया गया है। यदि एक बार सदस्य का निष्कासन संयुक्त राष्ट्र से कर दिया जाता है, तो उसकी वही स्थिति हो जाती है। जो गैर-सदस्य राज्य की है। इस

प्रकार, निष्कासन के बाद वह उन सभी अधिकारों का प्रयोग कर सकता है, जिनका प्रयोग करने का अधिकार गैर-सदस्य राज्यों को है।

संयुक्त राष्ट्र से सदस्यता की वापसी (Withdrawal of Membership from the United Nations)—संयुक्त राष्ट्र के किसी सदस्य को चार्टर के अनुच्छेद 6 के अनुरूप निष्कासन द्वारा सदस्य की इच्छा के विरुद्ध समाप्त किया जा सकता है। किन्तु चार्टर में उस सम्भावित मामलों के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं है, जिसमें सदस्य स्वेच्छा के संयुक्त राष्ट्र से स्वयं अलग होने की इच्छा करता है। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा में सदस्यता की वापसी के लिए प्रावधान किया गया था। सदस्य या तो दो मास की सूचना देकर अपनी सदस्यता को वापस ले सकता था, या यदि किसी सदस्य द्वारा किसी संशोधन का विरोध करने पर, या यदि उसे संशोधन अन्य प्रकार से स्वीकार्य नहीं होता था, तो इसका यह अर्थ हो सकता था कि विशेष सदस्य राष्ट्र संघ का सदस्य नहीं रह गया। किन्तु चार्टर में ऐसा कोई प्रावधान नहीं किया गया है।

प्रश्न न० 4— संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद के संविधान एवं कार्यों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर— सुरक्षा-परिषद् की शक्तियाँ तथा कार्य— सुरक्षा-परिषद् के कार्यों तथा शक्तियों का अध्ययन निम्नलिखित चार शीर्षकों के अन्तर्गत सुविधाजनक ढंग से किया जा सकता है— (1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना, (2) निर्वाचन सम्बन्धी कार्य, (3) पर्यवेक्षण कार्य तथा (4) संवैधानिक कार्य।

(1) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखना— संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा-परिषद् की है (अनुच्छेद 24)। चार्टर ने इस विषय में सुरक्षा परिषद् को अनेक अधिकार प्रदान कर रखे हैं। अनुच्छेद 24 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि सभी सदस्य राज्यों ने यह स्वीकार किया है कि सुरक्षा-परिषद् उनके एवज में कार्य करती है तथा सुरक्षा-परिषद् अपने कार्यों को चार्टर में वर्णित उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों के अनुसार करेगी। संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों ने यह संकल्प लिया है कि वे सुरक्षा-परिषद् के निर्णयों को मानेंगे तथा उनका पालन करेंगे (अनुच्छेद 25)। सुरक्षा-परिषद् को हस्तीकरण के नियन्त्रण के लिए योजना बनाना तथा उसे सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत करने का भी अधिकार है। चार्टर के अध्याय 6 में अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को शान्तिपूर्ण ढंग से निपटाने के प्रावधान हैं। चार्टर के अनुसार राज्यों को अपनी समस्याओं को सर्वप्रथम वार्ता, जाँच, मध्यस्थता, समझौता, विवाचन, न्यायिक निर्णय या किसी अन्य शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने चाहिये। इस विषय में सुरक्षा परिषद् भी राज्यों को सलाह दे सकती है। सुरक्षा-परिषद् किसी भी समस्या की जाँच आदि कर सकती है तथा उसके विषय में अपने सुझाव दे सकती है तथा यह सलाह दे सकती है कि वह समस्या उपर्युक्त वर्णित ढंगों में से किस ढंग द्वारा सुलझायी जाय। यदि राज्य पक्षकार अपनी समस्याओं को सुलझाने में असमर्थ रहते हैं तो यदि उनकी समस्याओं से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को खतरा पहुँचाने की सम्भावना रहती है तब सुरक्षा परिषद् समस्या के समाधान के लिये अपने सुझाव दे सकती है (अनुच्छेद 37)।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय शांति के खतरे या शांति के उल्लंघन तथा आक्रमण आदि के विषय में सुरक्षा-परिषद् को अध्याय 7 के अन्तर्गत महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गई हैं। सर्वप्रथम सुरक्षा-परिषद् यह निश्चित करती है कि शांति का उल्लंघन या आक्रमणकारी कार्य हुआ है और यदि वह इस निश्चय पर पहुँचती है तो वह इस समस्या के समाधान के लिए अपने सुझाव दे सकती है (अनुच्छेद 39)। अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सुरक्षा-परिषद् राज्यों को यह सुझाव दे सकती है कि वह दोषी राज्य से आर्थिक तथा अन्य प्रकार के सम्बन्धों का विच्छेद कर दे। इस अनुच्छेद के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र को सशस्त्र सेना का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है। परन्तु यदि अनुच्छेद 41 के अन्तर्गत की हुई कार्यवाही से समस्या का समाधान नहीं होता तो अनुच्छेद 42 के अन्तर्गत सुरक्षा-परिषद् को अधिकार है कि यह हवाई, सामुदिक या स्थल फौजों का प्रयोग कर सकती है। संक्षेप में अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा बनाये रखाने के लिये सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र द्वारा सामूहिक कार्यवाही की जाने के विषय में निर्णय ले सकती है।

चार्टर के अनुसार संयुक्त राष्ट्र के सदस्य आवश्यकता पड़ने पर अपनी सेनाएँ देने के लिये बाध्य है, परन्तु अनुच्छेद 43 के अनुसार ये सेनाएँ आदि विशेष समझौतों द्वारा दी जानी थीं। दुर्भाग्यवश महाशक्तियों के आपस में संघर्ष और सहयोग के कारण यह विशेष समझौते अब तक नहीं हो पाये हैं, अतः सुरक्षा परिषद् के पास इस प्रकार की फौजें नहीं हैं। इसके अतिरिक्त चार्टर में यह भी प्रावधान है कि सुरक्षा परिषद् की सहायता के लिए एक मिलिटरी स्टॉक समिति (Military Stalk Committee) होगी जिसमें स्थायी सदस्यों के सैनिक अध्यक्ष होंगे। महाशक्तियों में असहयोग के कारण इस प्रावधान का भी कोई महत्व नहीं रह गया है। इसके अतिरिक्त चार्टर में यह भी प्रावधान है कि सदस्यों का यह उत्तरदायित्व है कि वे पारस्परिक सहायता करें कि सुरक्षा-परिषद् द्वारा लिये गये निर्णयों का पालन करेंगे।

उपर्युक्त प्रावधानों से यह स्पष्ट हो जाता है कि शांति तथा सुरक्षा के विषय में सुरक्षा-परिषद् को महत्वपूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं परन्तु महाशक्तियों के आपसी संघर्ष तथा असहयोग के कारण सुरक्षा-परिषद् इन शक्तियों का उचित प्रयोग नहीं कर पायी है। इन शक्तियों के प्रयोग में सबसे बड़ी बाधा महाशक्तियों या सदस्यों द्वारा निषेधाधिकार (Veto) के अधिकार के प्रयोग से हुई है। निषेधाधिकार के प्रयोग के कारण सुरक्षा-परिषद् महत्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने में असमर्थ रही है।

निषेधाधिकार तथा उसका सुरक्षा-परिषद् की क्षमता पर प्रभाव (Veto and its effects on Efficiency of Security Council)— अनुच्छेद 27 के अनुसार सुरक्षा-परिषद् द्वारा सभी महत्वपूर्ण प्रस्तावों के निर्णयों के लिए नौ (9)

सकारात्मक मत आवश्यक हैं जिनमें महाशक्तियों अर्थात् स्थायी सदस्यों की सकारात्मक सहमति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इन अनुच्छेद द्वारा स्थायी सदस्यों (चीन, रूस, अमेरिका, ब्रिटेन तथा फ्रांस) को चार्टर द्वारा निषेधाधिकार प्रदान किया गया है। यह निषेधाधिकार वास्तव में इसलिये प्रदान किया गया था कि चार्टर के निर्माताओं का विचार था कि महाशक्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए आपस में सहयोग करेंगी तथा अपनी जिम्मेदारी निभायेंगी। संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के तुरन्त बाद यह विचार गलत सिद्ध हुआ क्योंकि महाशक्तियों का आपस में संघर्ष तथा शीत युद्ध प्रारम्भ हो गया। सुरक्षा-परिषद् द्वारा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय के लिए स्थायी सदस्यों के सकारात्मक मत के प्रावधान ने एक विकट समस्या उत्पन्न कर दी है। महाशक्तियों में आपस के संघर्ष के परिणामस्वरूप बहुधा यह देखा जाता है कि कोई भी स्थायी सदस्य अपने निषेधाधिकार का प्रयोग करके अर्थात् सकारात्मक मत देकर सुरक्षा-परिषद् को निर्णय लेने में असमर्थ बना देते हैं, अतः महाशक्तियों के निषेधाधिकार ने सुरक्षा-परिषद् की क्षमता को बुरी तरह प्रभावित किया। इसके कारण सुरक्षा-परिषद् एक असमर्थ अंग हो गया है। उदाहरण के लिए 1950 में कोरिया के मामलों में प्रारम्भ में सुरक्षा-परिषद् अपना निर्णय इस कारण न ले सकी क्योंकि जिस समय कोरिया के प्रश्न पर विचार हो रहा था, सुरक्षा-परिषद् में रूस का प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। सुरक्षा परिषद् कोरिया के मामलों में भी कोई प्रभावशाली कार्यवाही प्रारंभ में असमर्थ हो गई। इसी प्रकार अन्य महत्वपूर्ण मामलों में भी महाशक्तियों के निषेधाधिकार के कारण सुरक्षा-परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने की जिम्मेदारी को ठीक तरह से नहीं निभा पायी। करने 1971 का भारत-पाक संघर्ष भी इसका अच्छा उदाहरण है। पाक-संघर्ष में सुरक्षा परिषद् प्रारम्भ में कोई निर्णय इसलिये नहीं ले पाई है क्योंकि रूस में भारत के पक्ष में अपने निषेधाधिकार का प्रयोग किया, अतः निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि महाशक्तियों के निषेधाधिकार में सुरक्षा परिषद् को अपंग बना दिया है। विख्यात विधिशास्त्री जूलियस स्टोन (Julius Stone) ने अपनी पुस्तक 'The Legal Control of International Conflict' में लिखा है, सुरक्षा परिषद् ने शान्ति की स्थापना का कार्य इस मत के साथ प्रारम्भ किया कि वह संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों को अपने निर्णयों से बाध्य कर सकती है। परन्तु व्यवहार में यह प्रत्येक स्थायी सदस्य के निषेधाधिकार द्वारा महत्वपूर्ण प्रश्नों पर निर्णय लेने में अपंग हो गई।"

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में सुरक्षा-परिषद् का योगदान — जैसाकि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि स्थायी सदस्यों के निषेधाधिकार ने सुरक्षा-परिषद् को महत्वपूर्ण प्रश्न पर निर्णय लेने के सम्बन्ध में अपंग बना दिया है। कुछ विधिशास्त्रियों का मत है कि संयुक्त राष्ट्र की स्थापना से अब तक सुरक्षा-परिषद् केवल कोरिया में और यह भी आंशिक रूप से सफल रही। कोरिया में भी इसकी सफलता का कारण सुरक्षा-परिषद् में कोरिया के प्रश्न पर विचार हो रहा था। उस समय रूस का प्रतिनिधि उपस्थित नहीं था। प्रो. गुडस्पीड (Prof- Goodspeed) ने उचित ही लिखा है कि यह कहना कि संयुक्त राष्ट्र दक्षिण कोरिया पर उत्तरी कोरिया के आक्रमण को रोक सका, उचित नहीं होगा। क्योंकि वास्तव में यह कार्य अमेरिका ने सम्पादित किया था। संयुक्त राष्ट्र ने केवल अमेरिका द्वारा कार्य को अपनी सहमति तथा आज्ञा प्रदान कर दी थी। वास्तव में अमेरिकी फौजें संयुक्त राष्ट्र के नाम से कोरिया में लड़ी थीं। तत्पश्चात् जैसे ही रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में वापस आया इस कार्य में भी बाधा उपस्थित हो गई।

परन्तु यह कहना उचित नहीं होगा कि सुरक्षा-परिषद् ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में कोई योगदान नहीं प्रदान किया है। वास्तव में कई मामलों में सुरक्षा-परिषद् ने काफी प्रभावशाली कार्य किया है। इन मामलों में इण्डोनेशिया, फिलिस्तीन, स्वेज संकट, भारत-पाक संघर्ष, कांगो, साइप्रस, अरब इजरायली संघर्ष, 1973 आदि मामले प्रमुख हैं। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होती है कि सुरक्षा परिषद् ने शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने में कुछ योगदान दिया है। खाडी युद्ध (1991) में सुरक्षा परिषद् ने बड़ी ही प्रभावशाली ढंग से अपनी भूमिका अदा की है।

प्रश्न न० 5— अन्तर्राष्ट्रीय संगठन से आप क्या सकझाते हो? द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व इसकी प्रकृति एवं विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

उत्तर—आधुनिक युग में मानव सभ्यता मक्रमकालीन अवस्था में गुजर रही है। राष्ट्र अपने अस्तित्व और विकास के लिए परस्पर निर्भर हैं। अस्तु वे एक-दूसरे से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखने के उद्देश्य से अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने के लिए विवश हैं। इसके अतिरिक्त सम्प्रभुता की धारणा बहुधा राज्यों के मध्य मतभेद और युद्धका कारण बन जाती है परन्तु आधुनिक युग में परमाणु शक्ति के विकास के कारण राष्ट्र युद्ध का संकट नहीं ले सकते। इसलिये राष्ट्रों के लिये निष्कपट रूप से संगठित होकर शान्तिपूर्ण उपायों द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान करना आवश्यक हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

परिभाषा (Definition)— स्वतन्त्र व सम्प्रभुता सम्पन्न राज्यों के इस औपचारिक समूह को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की संज्ञा प्रदान की जाती है जिसका निर्माण कुछ निर्दिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के हितार्थ किया जाता है। रूप, आकार और उद्देश्य की दृष्टि में मित्र होते हुए भी लगभग सभी अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का जन्म इस भावना के फलस्वरूप होता है कि मानव को एक होना चाहिये। संगठन का निर्माण करते समय राज्य सम्प्रभुता को सुरक्षित रखते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन इस प्रकार अधिराष्ट्रीय राज्य (Supernational State) में भिन्न होता है।

आर्गेनकी (Organske) के अनुसार “अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वहाँ स्थापित होता है जहाँ कुछ राष्ट्र संयुक्त हो जाते हैं और जहाँ उनमें से प्रत्येक यह अनुभव करता है कि एक औपचारिक संगठन के क्रियाशील होने से उसका कुछ लाभ ही होगा।”

चीवर व हैवीलैंड (Cheever and Heavyland) के शब्दों में, “अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राज्यों के मध्य स्थापित उस सहकारी व्यवस्था को कहते हैं जिसकी स्थापना, कुछ परस्पर लाभप्रद कार्यों को नियमित बैठकों व स्टाफ के द्वारा पूरा करने के लिये सामान्यतः एक समझौते द्वारा होती है।”

चार्ल्स लर्च (Charles Lerche) के शब्दों में, “कुछ सामान्य उद्देश्यों के लिये संगठित किये गये राष्ट्रों के औपचारिक समूह को अन्तर्राष्ट्रीय संगठन कहते हैं। स्वरूप में भिन्नता होने पर भी उसका जन्म समान प्रेरक तत्वों से होता है तथा उनके दर्शन और संगठन में महत्वपूर्ण सादृश्य विद्यमान रहता है।”

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की प्रकृति—(Nature of International Organisations)— अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के उद्देश्य सामान्यतः व्यापक किन्तु अस्पष्ट होते हैं। राष्ट्र संघ (League of Nations) का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना था। संयुक्त राष्ट्र (U.N.) का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति व सुरक्षा की रक्षा करना, राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त के उद्देश्यों को प्राप्त करना था। इन उद्देश्यों को अस्पष्ट एवं गोलमाल भाषा में इसलिये व्यक्त किया जाता है जिससे कि संगठन को विश्वव्यापी समर्थन प्राप्त हो सके और सभी राष्ट्र उसकी सदस्यता प्राप्त करने के लिये उत्साह दिखायें। न्याय, स्वतन्त्रता और सुरक्षा ऐसे शब्द हैं जो विश्व के सभी देशों के नागरिकों को अच्छे लगते हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के संविधानों में इसका खुलकर प्रयोग होता है। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की सदस्यता का प्रश्न है, एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का इस रूप में सार्वभौमिक होना आवश्यक नहीं है कि विश्व के सभी राष्ट्र उसके सदस्य हों, फिर भी उसे इस रूप में सार्वभौमिक होना चाहिये कि ये सभी महाशक्तियाँ जिनसे विश्व शान्ति भंग होने का भय हो उसके क्षेत्राधिकार में आती हों, क्योंकि महाशक्तियों में एक दूसरे के मौलिक उद्देश्यों, हितों तथा उत्तरदायित्वों में एक स्थाई पारस्परिक समझौते के अभाव में, शान्ति की रक्षा के लिये सभी संगठन कागज पर को ही सृष्टि माने जा सकते हैं तथा एक नवीन आक्रमणकारी के उत्पन्न होने के लिये मार्ग फिर प्रशस्त होता है।¹⁶ इन शक्तियों के अपने उद्देश्यों में विभाजित हो जाने तथा अपने आधारभूत हितों को पहचानने एवं उनमें समन्वय स्थापित करने में असफल होने का परिणाम विनाश हो सकता है और किसी भी प्रकार का संगठन आवश्यक शान्ति व एकता की स्थापना नहीं कर सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का विकास (Evolution of International Organisations)— अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का इतिहास आधुनिक युग की देन नहीं है इसका विचार प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। छठी तथा सातवीं शताब्दी से ही विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन में अपनी आस्था प्रकट करना आरम्भ कर दिया था। इटली के कवि और दार्शनिक दाँते (1265–1312) ने एक ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का विचार प्रस्तुत किया जो न्याय पर आधारित हो। फ्रांस के पियरे दुबोअ ने सन् 1305 में इस्लाम का सामना करने के लिये यूरोप के राजाओं का एक संघ बनाने की योजना रखी। सन् 1903 में फ्रांस के राजा हेनरी चतुर्थ ने अपने महामंत्री सली द्वारा प्रतिपादित एक योजना को स्वीकार किया। इसके अनुसार, समस्त यूरोप को 15 भागों में विभक्त कर उनका संघ बनाने की चर्चा की गई थी। आधुनिक युग में विलियम टेन, रूसी, बेथम और कान्ट आदि दार्शनिकों ने अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की कल्पना को अपना समर्थन प्रदान किया।

राष्ट्रीय राज्य की स्थापना के पश्चात् ही अन्तर्राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था को उसका आधुनिक स्वरूप प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय राज्य 16वीं व 17वीं शताब्दी में निर्मित हुए। सन् 1648 में छोटे-बड़े सब राज्यों की समाप्ति का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। राजाओं को निरंकुशता के विरुद्ध फ्रांस की राज्य क्रान्ति हुई जिसने व्यक्तिवाद व प्रजातन्त्र का सन्देश दिया। इसका वर्णन निम्न प्रकार से है—

(1) वियना सम्मेलन (Vienna Conference)— फ्रांस की राज्य क्रान्ति के बाद सर्वप्रथम यूरोप में शक्ति के सन्तुलन को बनाये रखने के लिये 1815 में वियना सम्मेलन हुआ। यह प्रथम अवसर था जबकि यूरोप में इतने बड़े अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया गया था, जिसमें यूरोप के प्रायः सभी प्रमुख राष्ट्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन के अन्तर्गत अनेक संधियों तथा समझौते के रूप में निर्णय लिये गये थे जिनके द्वारा अनेक क्षेत्रीय व्यवस्थाएँ की गईं। कुछ सामाजिक एवं आर्थिक विषयों पर भी निर्णय लिये गये और एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का निर्माण किया गया जो कांग्रेस के रूप में अपना कार्य करती थी।

(2) यूरोप की संयुक्त व्यवस्था (Concerted arrangement of Europe)— वियना सम्मेलन के अन्तर्गत निर्मित कांग्रेस ने कुछ वर्षों तक सफलतापूर्वक कार्य किया, लेकिन थोड़े ही समय के बाद आपसी स्वाधों के कारण मित्रमण्डल के सदस्यों में अत्यधिक मतभेद होने लगा। वियना कांग्रेस के बाद भी यूरोप के बड़े राष्ट्रों के मध्य शांति स्थापना के लिये तथा राजनीतिक प्रश्नों पर विचार करने के लिये समय-समय पर इसकी बैठकें होती रहीं। चूँकि यूरोप के प्रमुख राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने यूरोप में शांति बनाये रखने का उत्तरदायित्व संयुक्त रूप से अपने ऊपर लिया था, अतः इस व्यवस्था को यूरोप को संयुक्त व्यवस्था की संज्ञा दी गई। इसके अन्तर्गत 1818, 20, 21 और 22 में बड़ी शक्तियों के सम्मेलन हुए। सन् 1818 में इन शक्तियों ने अन्तर्राष्ट्रीय विधि को राष्ट्रों के सम्बन्धों का आधार बताते हुए उसके अनुसार, आचरण करने की घोषणा की। यूरोप की संयुक्त व्यवस्था के पश्चात् भी यूरोप की शक्तियाँ विशेष प्रश्नों पर सम्मेलन करती रहीं। 1955 में यह सम्मेलन पेरिस में हुआ जिसमें पूर्वी प्रश्नों के समाधान के साथ-साथ

अन्तर्राष्ट्रीय कानून सम्बन्धी विषय भी स्वीकार किये गये। इसी प्रकार, बर्लिन सम्मेलन (Berlin Conference), 1878 में पूर्वी प्रश्न और 1905, 1908 और 1909 के सम्मेलनों में क्रमशः योरक्को, आस्ट्रिया और बाल्कन युद्धों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं के समाधान करने का प्रयास किया। अन्तर्राष्ट्रीय कानून पर 1899 और 1907 में हेग सम्मेलन (Hague Conference) हुए जिनमें क्रमशः 20 और 44 देशों ने भाग लिया और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने के लिये मध्यस्थ निर्वय (Arbitration) का प्रबल समर्थन किया गया।

दूसरे हेग सम्मेलन द्वारा स्थापित की गई 13 सन्धियों में 11 युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों पर थी। हेग के इस सम्मेलन में यह भी निश्चित किया गया कि तृतीय सम्मेलन सन् 1915 में होगा तथा प्रति 8 वें वर्ष सम्मेलन का आयोजन होता रहेगा परन्तु प्रथम विश्व युद्ध के प्रारम्भ हो जाने से तृतीय सम्मेलन नहीं हो सका और साथ ही साथ हेग व्यवस्था भी समाप्त हो गई। हेग व्यवस्था अपनी व्यापकता की दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को विश्व व्यापी बनाने की दिशा में एक ठोस कदम था। इसने यह सिद्ध कर दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिये कोई भी व्यवस्था तभी सफल हो सकती है, जब वह विश्वव्यापी हो। यद्यपि हेग व्यवस्था के अन्तर्गत आयोजित सम्मेलनों ने समस्याओं का पूर्ण निराकरण नहीं किया, तथापि अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के इतिहास के विकास में इन सम्मेलनों का विशेष योगदान है, क्योंकि सम्मेलनों में भाग लेने वाले राज्यों ने मध्यस्थता को स्थाई साधनों और अभिकरणों की आवश्यकता का अनुभव किया।

(3) अराजनैतिक संगठन (Non-political Organisation)—इसी समय ऐसे संगठन भी बनने लगे जो सदस्यता की दृष्टि से विश्वव्यापी थे। 1856 में अन्तर्राष्ट्रीय टेलीग्राफ यूनियन बनी और 1874 में 'यूनिवर्सल पोस्टल यूनियन'। इसी प्रकार स्वास्थ्य, व्यापारक, ट्रेडमार्क और कॉपीराइट पर भी अराजनैतिक संगठन बनाने लगे। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इनमें से अधिकतर संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.) के आर्थिक व सामाजिक परिषद् से न्यायिक समझौतों के द्वारा सम्बन्धित कर दिये गये। ऐसे संगठन आज संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट समितियों की श्रेणियों में गिने जाते हैं। इनमें से अन्तर्राष्ट्रीय संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा-कोष, खाद्य और कृषि संगठन, विश्व स्वास्थ्य संघ, अन्तर्राष्ट्रीय तार संघ आदि मुख्य हैं।

कुछ विशेष प्रयोजनार्थ संगठन गैर-सरकारी या अर्द्ध-सरकारी आधार पर भी बनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास, जिसकी स्थापना 1863 में जेनेवा में हुई, एक ऐसी ही संगठन था। गैर-सरकारी होते हुए भी ऐसे संगठन अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय को आवश्यकताओं की पूर्ति में हाथ बंटाते रहे। 1873 में स्थापित 'इन्टीट्यूट ऑफ इन्टरनेशनल लॉ और इन्टरनेशनल लॉ एसोसियेशन' दोनों ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय संगठन-राष्ट्र संघ (International Organisation-League of Nations)—राष्ट्र संघ (League of Nations)—प्रथम महायुद्ध के बाद निर्मित किया गया प्रथम राजनीतिक संगठन था। यह अन्ततोगत्वा असफल रहा परन्तु राष्ट्र परिवार में इसने युगान्तरकारी परिवर्तन किये और अन्तर्राष्ट्रीय कानून में भी अनेक सुधार और संशोधन इसके कारण हुए। सके निर्माण के तुरन्त उपरांत 16 दिसम्बर, 1920 को अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की स्थापना हुई और अन्तर्राष्ट्रीय कानून को एक नया सहारा मिला। अमेरिका घरेलू राजनीति के दबाव के कारण राष्ट्र संघ से अलग रहा, परन्तु 1928 का पेरिस समझौता (Paris Pact) उसके नेतृत्व के परिणामस्वरूप हुआ। इस समझौते के द्वारा युद्ध को अवैध घोषित किया। राष्ट्र-संघ द्वितीय विश्व युद्ध की ज्वालाओं में भस्म हो गया, परन्तु उसकी राख से एक नया विश्व संगठन बनाया गया जो आज संयुक्त राष्ट्र संघ (U.N.O.) के रूप में हमारे सामने है।

प्रश्न न० 6—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के संगठन एवं संरचना के विषय में संक्षेप में लिखिए।

उत्तर—लोक व्यवस्था बनाये रखने के लिये उचित कानून तथा उसे क्रियान्वित करने के लिये संस्था का होना अनिवार्य है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून अच्छी तरह परिभाषित होने पर ही अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में व्यवस्था की स्थापना की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय द्वारा ही सुलझाया जा सकता है। जिसे राष्ट्र द्वारा (League of Nations) स्थापित किया गया था। राष्ट्र संघ की समाप्ति के बाद स्थायी न्यायालय भी समाप्त कर दिया गया और इसके स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना हुई।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का गठन—संयुक्त राष्ट्र संघ की धारा 92 में इस न्यायालय की व्यवस्था की गई है। इस धारा में यह कहा गया है कि संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य स्वतः इस न्यायालय के सदस्य होंगे। अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय में 15 न्यायाधीश होते हैं। सामान्य परिषद तथा सुरक्षा परिषद द्वारा इन न्यायाधीशों का निर्वाचन होता है। न्यायाधीशों की कार्य विधि 9 वर्ष होती है। न्यायालय के निर्णय न्यायाधीशों के बहुमत द्वारा लिये जाते हैं। निर्णायक मत (Casting vote) डालने का अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के अध्यक्ष को होता है। न्यायालय का मुख्यालय हेग (Hague) में है, किन्तु बैठक आवश्यकता पड़ने पर कहाँ भी हो सकती है। न्यायालय एक स्वायत्त संस्था है। यह अपने प्रेसीडेन्ट तथा वाइस प्रेसीडेन्ट चुनती है और रजिस्ट्रार की नियुक्ति करती है। न्यायाधीश इस न्यायालय के न्यायाधीश का चुनाव सामान्य सभा तथा सुरक्षा परिषद करती है।

वेतन—न्यायाधीशों को वेतन दिया जाता है तथा उनसे आशा की जाती है कि किसी भी राजनैतिक अथवा प्रशासनिक कार्य में भाग न लें जिससे कि उनकी कार्यक्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़े।

तदर्थ न्यायाधीश (Adhoc Judges)—न्यायालय के परिनिमयों में तदर्थ न्यायाधीशों की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। ये न्यायाधीश भी वैतनिक होते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय का क्षेत्राधिकार अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय को तीन प्रकार के क्षेत्राधिकार प्राप्त हैं—

(1) ऐच्छिक (Voluntary) (2) अनिवार्य (Compulsory) (3) परामर्शी (Advisory)

1. ऐच्छिक क्षेत्राधिकार (Voluntary jurisdiction)— अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के इस प्रकार के क्षेत्राधिकार के अन्दर्गत के सभी वाद आ जाते हैं जिनको कि सम्बन्धित पक्षकार न्यायालय के समक्ष न्याय हेतु लाते हैं।

न्यायालय के परिनियम के अनुच्छेद 36 में व्यवस्था है कि उन सभी विवादों पर न्यायालय का क्षेत्राधिकार होगा जिसे कि सम्बन्धित पक्षकार परस्पर अनुबन्ध द्वारा न्यायालय को निर्णयार्थ सौंपते हैं।

किसी विवादग्रस्त मामले को दोनों पक्षकार अनुबन्ध द्वारा न्यायालयों को सौंप सकते हैं अथवा विवाद से सम्बन्धित एक पक्षकार सौंप सकता है और अन्य पक्षकार उस पर अपनी सहमति व्यक्त कर सकते हैं।

2. अनिवार्य क्षेत्राधिकार (Compulsory jurisdiction) — वे राष्ट्र जो वर्तमान संविधि के पक्षकार हैं किसी समय भी यह घोषणा कर सकते हैं कि वे न्यायालय के क्षेत्राधिकार को अनिवार्य स्वतः सिद्ध तथा उसी कर्तव्य को स्वीकार करने वाले किसी अन्य राज्य के सम्बन्ध में किसी 'विशेष' स्वीकारोक्ति के बिना निम्नलिखित से सम्बन्धित सब वैधिक झगड़ों में स्वीकार करते हैं—

(अ) किसी सन्धि की व्याख्या

(आ) अन्तर्राष्ट्रीय विधि का कोई प्रश्न

(इ) किसी तथ्य का अस्तित्व जिसके सिद्ध होने पर किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य का उल्लंघन समझा जाये।

(ई) किसी अन्तर्राष्ट्रीय कर्तव्य के उल्लंघन पर क्षतिपूर्ति का रूप तथा परिणाम।

राज्यों द्वारा की गई उपरोक्त घोषणा स्वीकारोक्ति द्वारा अनिवार्य क्षेत्राधिकार की व्यवस्था करती है क्योंकि न्यायालय क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल उसी दशा में कर सकता है जब झगड़े के दोनों पक्षकारों ने घोषणा की हो। जैसा कि अनुच्छेद 36 के खण्ड 2 में उपविन्धत है। इस समविधि में यह उपबन्धित है कि अन्तर्राष्ट्रीय न्याय के स्थायी न्यायालय की संविधि के पुराने वैकल्पिक वाक्य खण्ड अन्तर्गत की गई घोषणाओं से यह समझा जायेगा कि वर्तमान न्यायालय के अनिवार्य क्षेत्राधिकार की स्वीकृति कर ली गई है।

न्यायालय का महत्व— न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने अन्तर्राष्ट्रीय कानून के क्रमिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसके महत्व तथा योगदान का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत है—

1. किसी सन्धि या अभिसमय की अनुपस्थिति में, किसी विवाद पर निर्णय देने के लिये न्यायालय सभ्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत कानून के सामान्य सिद्धान्तों की सहायता लेता है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विकास होता है।

2. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय, अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अस्पष्ट नियमों का स्पष्टीकरण करता है।

3. न्यायालय की संविधि का अनुच्छेद 59 पूर्वीक्ति के सिद्धान्त (Doctrine of precedent) का निषेध करता है, फिर भी इसके महत्व की ओर संकेत करता है।

4. न्यायालय के सलाहकारी मत भी अन्तर्राष्ट्रीय कानून के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। जैसे—संघ का सदस्य बनाने हेतु शर्तें, महासभा की सदस्यता प्राप्त करने हेतु अनिवार्यतायें, क्षति के लिये क्षतिपूर्ति सम्बन्धी नियम, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के उत्तराधिकार सम्बन्धी कानून (नियम) का निर्धारण आदि।

प्रश्न न० 7— संयुक्त राष्ट्र सचिवालय की संरचना का वर्णन कीजिए तथा महासचिव के कार्यों को समझाइए।

उत्तर— सचिवालय (The Secretariat)— प्रो. गुडरिच (L.M. Goodrich) के अनुसार, अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की धारणा नई नहीं है। इसका प्रारम्भ राष्ट्र संघ ने किया था। संयुक्त संघ द्वारा किये गये प्रयोग का और भी अधिक विस्तार कर लिया। सचिवालय संयुक्त राष्ट्र का एक प्रशासनिक अंग है। सचिवालय में महासचिव तथा उतने अन्य कर्मचारी होते हैं जितने कि संस्था की आवश्यकता होती है। महासचिव संस्था का मुख्य प्रशासनिक अधिकारी होता है। उसकी नियुक्ति सुरक्षा-परिषद् की संस्तुति पर महासभा द्वारा की जाती है (अनुच्छेद 97)। महासचिव बहुधा किसी छोटे तथा तटस्थ राज्य के विख्यात व्यक्ति को बनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र के पहले सचिव ट्रिग्वी ली (Trygve Lie), दूसरे डाग हैमरजोल्ड (Dag Hammarskjöld), तीसरे बर्मा के यू-थांट (U- Thant) थे, चौथे महासचिव आस्ट्रिया के कूर्ट वालधाइम (Kurt Waldheim) थे। वर्तमान महासचिव पेरू के श्री ऐवियर पेरैज डि कूलर (Mr- Avier Perez De Cuellar) हैं। उन्होंने महासचिव का पद 1 जनवरी, 1982 को संभाला है तत्पश्चात उन्हें दूसरी अवधि के लिये भी चुन लिया गया।

उनके दूसरे कार्यकाल की समाप्ति 31 दिसम्बर 1991 को ही गई। उनके अगले महासचिव मिस्र के बुतरस पाली (Boutros Ghali) चुने गये तथा उन्होंने जारी 1992 को कार्य भार ग्रहण कर लिया।

सचिवालय की अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति को बनाये रखने तथा उसे निष्पक्ष रखने के लिए चार्टर में यह प्रावधान रखा गया है कि महासचिव तथा उनके कर्मचारी किसी सरकार के आदेशों का पालन नहीं करेंगे तथा संयुक्त राष्ट्र का प्रलोक सदस्य महासचिव तथा उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति का आदर करेगा (अनुच्छेद 100)

सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति महासचिव महासभा द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार करते हैं। चार्टर के अनुसार सचिवालय के कर्मचारियों की नियुक्ति के समय तीन गुण—कार्यकुशलता (efficiency), कार्यक्षमता (competency) तथा ईमानदारी (integrity) होनी चाहिये। उनकी सेवा की शर्त तथा वेतन आदि महासभा द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार निर्धारित होते हैं।

महासचिव के कार्य—महासचिव के कार्य निम्नलिखित हैं—

(1) महासचिव संस्था के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी की हैसियत से महासभा, सुरक्षा परिषद्, आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा न्यास परिषद् के सभी मीटिंग में भाग लेता है तथा वह सारे कार्य सम्पादित करता है जो इन अंगों द्वारा उसे सौंपे जाते हैं।

(2) वह महासभा को संस्था के कार्य की एक वार्षिक रिपोर्ट भी प्रेषित करता है (अनुच्छेद 98)।

(3) यदि उसके मत के अनुसार किसी मामले से अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा की खतरा है तो वह ऐसे मामले के प्रति सुरक्षा परिषद् का ध्यान आकर्षित करा सकता है (अनुच्छेद 99)।

(4) महासचिव पूरे विश्व की आर्थिक स्थिति के तथ्य तथा आँकड़े एकत्र करवाता है तथा इन्हें आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् को प्रेषित करता है।

महासचिव के कार्यों तथा उनके पद की स्थिति पर उन तीन लोगों के व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा है, जिन्होंने इस पद को सँभाला है। विशेषकर डाग हैमरजोल्ड ने अपने पद की अत्यधिक प्रभावित किया। चार्ल्स विन्चमोर (Charles Winchmore) के शब्दों में— “The Office of the Secretary&General has been shaped by the character of its three successive incumbents and more especially by the outstanding achievements of the Secretary General Dag Hammarskjöld.”

शान्ति के लिये संगठित होने का प्रस्ताव (Uniting for Peace Resolution Nov- 3, 1950) के पारित होने के बाद अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के सम्बन्ध में महासचिव की शक्तियों तथा कार्यों में काफी वृद्धि हुई है। इस प्रस्ताव के अन्तर्गत महासचिव को संघर्ष-क्षेत्रों में फौजें भेजने तथा उन पर अपना नियंत्रण रखने का अधिकार दिया जा सकता है। स्वेज-संकट के समय मिस्र (Egypt) में 1956 में तथा कांगो में 1961 में संयुक्त राष्ट्र फौजें भेजने के तथा उन पर नियंत्रण रखने के सम्बन्ध में डाग हैमरजोल्ड (Dag Hammarskjöld) ने महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित किये तथा अपने पद के गौरव तथा गरिमा में वृद्धि की। परन्तु कांगो के अनुभव से यह स्पष्ट हो गया है कि महासचिव द्वारा शान्ति तथा सुरक्षा के कार्य सम्पादन तथा उनकी सफलता के लिए महाशक्तियों का सहयोग तथा एकता आवश्यक है। इसके अभाव में संयुक्त राष्ट्र आर्थिक संकट में पड़ गया तथा कार्य पूर्ण होने के पूर्व ही संयुक्त राष्ट्र को विवश होकर अपनी फौजों को वापस बुलाना पड़ा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि महासचिव के कार्यों तथा शक्तियों की कुछ परिसीमाएँ हैं। महासचिव के कार्यों की सफलता के लिए आवश्यक है कि महाशक्तियों में परस्पर सहयोग हो।

प्रश्न न० 8— न्यास परिषद् की संरचना तथा कार्यों का वर्णन कीजिए।

उत्तर— न्यास-परिषद्—यह न्यास क्षेत्रों में रहने वाले लोगों के विकास के लिये कार्य करता है। न्याय परिषद् के निम्नलिखित सदस्य होते हैं—

- (1) वे सदस्य जो न्याय क्षेत्रों का प्रशासन कर रहे हैं;
- (2) संयुक्त राष्ट्र के वे स्थायी सदस्य जो न्याय क्षेत्रों का प्रशासन नहीं कर रहे हैं;
- (3) इसके अतिरिक्त महासभा उतने सदस्यों का तीन वर्ष के लिए निर्वाचन करती है जिससे न्याय क्षेत्रों के प्रशासन करने वाले सदस्यों तथा प्रशासन न करने वाले सदस्यों की संख्या बराबर हो जाय।

मतदान—न्यास-परिषद् के प्रत्येक सदस्य को एक मत देने का अधिकार होता है। इसके निर्णय उपस्थित सदस्यों के बहुमत से लिए जाते हैं (अनुच्छेद 89)।

कार्य तथा शक्तियाँ—न्यास-परिषद् सामान्य परिषद् के अधीन अपने कार्य सम्पादित करती है। यह निम्नलिखित कार्य सम्पादित करती है—

- (1) यह न्यास-क्षेत्र पर प्रशासन करने वाले क्षेत्र द्वारा प्रेषित रिपोर्ट पर विचार कर सकती है।
- (2) यह याचिकाएँ (Petitions) स्वीकार कर सकती है तथा प्रशासन करने वाले राज्यों की सलाह से उनका निरीक्षण करा सकती है।
- (3) यह प्रशासन न करने वाले अधिकारी की स्वीकृति से समय-समय पर न्याय क्षेत्रों में लोगों को निरीक्षण के लिए भेज सकती है।
- (4) न्यास समझौतों के अनुसार उपर्युक्त तथा अन्य कार्यवाही की सकती है।
- (5) न्यास-क्षेत्रों में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षिक उत्थान के लिए न्यास-परिषद् प्रश्नवाली (questionnaire) तैयारी करेगी और न्यास क्षेत्र पर प्रशासन करने वाली तथा उक्त प्रश्नवाली के आधार पर महासभा की रिपोर्ट प्रस्तुत करेगी (अनुच्छेद 88)।
- (6) न्यास-परिषद् आर्थिक तथा सामाजिक परिषद् तथा विशिष्ट एजेन्सियों से सहायता प्राप्त कर सकती है (अनुच्छेद 91)।

न्यास-क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की संख्या संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के बाद से प्रत्येक वर्ष घटती जा रही है। न्यास-परिषद् का कार्य बहुत शीघ्रता से कम होता जा रहा है। कुछ वर्षों में कदाचित न्यास-परिषद् के पास विल्कुल काम नहीं रह जायेगा। संयुक्त राष्ट्र के प्रमुख अंगों में यही एक अंग है जिसने अपना कार्य सफलतापूर्वक लगभग समाप्त कर दिया है। दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका के क्षेत्र की छोड़कर और सभी क्षेत्रों में इसने सफलतापूर्वक कार्य किया है। लिओनार्ड (Leonard) के शब्दों में— “By the fall of 1966] virtually all colonial peoples had attained independence and membership in the U-N-Only three trust territories remain of the original eleven which means that the Trusteeship Council had almost completed its original mission of asserting these areas in their quest for self&government and independence.”

1975 में पपुआ न्यू गिनी (Papua New Guinea) की स्वतन्त्रता के पश्चात् प्रशान्त द्वीपों का न्यास-क्षेत्र (The Trust Territory of the Pacific Islands) ही अन्तिम न्यास-क्षेत्र बचा है। इसे माइक्रोनेसिया (Micronesia) भी कहते हैं। परिषद् इनकी न्यास स्थिति को समाप्त करने पर विचार कर रही है। यहाँ पर यह नोट करना आवश्यक है कि

दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका तथा नामीबिया (जिसे दक्षिणी अफ्रीका ने अवैध रूप से हथिया लिया है) की जिम्मेदारी संयुक्त राष्ट्र ने स्वयं ली थी। उसके लिए एक परिषद् (U.N. Council for Namibia) स्थापित की गई थी।

संयुक्त राष्ट्र के प्रयासों के परिणामस्वरूप नमीबिया अब स्वतन्त्र हो गया है तथा संयुक्त राष्ट्र का 160 वाँ सदस्य बन गया।

दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका को अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति (International status of South-West Africa] L.C.J. Rep. (1950).—न्यास क्षेत्रों से सम्बन्धित एक प्रमुख याद है। राष्ट्र संघ के मैन्डेट के अन्तर्गत दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका गणतन्त्र दक्षिणी अफ्रीका को प्रशासन हेतु सौंपा गया था। राष्ट्र संघ के ममाप्त होने पर दक्षिणी अफ्रीका ने दावा किया कि यह क्षेत्र उसके क्षेत्र का अभिन्न अंग हो गया: अतः यह संयुक्त राष्ट्र न्यास-प्रणाली के नियन्त्रण से बाहर है। महासभा ने इस मामले पर अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से सलाहकारी मत माँगा। न्यायालय ने निर्णय दिया कि मैन्डेट के अन्तर्गत दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति थी जिसमें केवल दक्षिणी अफ्रीका परिवर्तन नहीं कर सकता है। न्यायालय ने अपने निर्णय में यह कहा कि संयुक्त राष्ट्र की महासभा को अधिकार है कि यह उसी प्रकार इस क्षेत्र पर नियन्त्रण रखे जिस प्रकार मैन्डेटरी कमीशन का या तथा दक्षिणी अफ्रीका का यह उत्तरदायित्व है कि न्यास-प्रणाली व्यवस्था के नियन्त्रण का आदर करे तथा महासभा के नियन्त्रण तथा निरीक्षण को स्वीकार करे। इस निर्णय के बावजूद भी दक्षिणी अफ्रीका ने दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका गणतन्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में संयुक्त राष्ट्र के नियन्त्रण का विरोध किया।

न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय तथा महासभा के प्रस्तावों का दक्षिणी अफ्रीका पर कोई प्रभाव नहीं पड़ने पर 1970 में सुरक्षा परिषद् ने एक प्रस्ताव दक्षिणी अफ्रीका के विरुद्ध पारित किया। दक्षिणी अफ्रीका ने इसको भी कोई परवाह नहीं की। अतः इस स्थिति के विधि एक परिणामों के विषय में न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय से एक बार फिर सलाहकारी मह देने की प्रार्थना की गई। न्यास के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय ने 1971 में सुरक्षा-परिषद् के बावजूद दक्षिणी अफ्रीका में दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका की निरन्तर उपस्थिति के विधि परिणाम सम्बन्धी सलाहकारी मत में निम्नलिखित निर्णय दिया—

- (1) दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका में दक्षिणी अफ्रीका की निरन्तर उपस्थिति अवैध है तथा दक्षिणी अफ्रीका का दायित्व है कि वह दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका में हटे तथा अपना आवेशन समाप्त करे।
- (2) संयुक्त राष्ट्र के सदस्यों का यह दायित्व है कि दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका या नामीबिया में दक्षिणी अफ्रीका की उपस्थिति को अवैधता को स्वीकार करे तथा दक्षिणी अफ्रीका से सम्बन्ध न रखे।
- (3) गैर-सदस्यों (वह राज्य जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं) का भी कर्तव्य है कि वे संयुक्त राष्ट्र द्वारा की गई कार्यवाही में सहायता प्रदान करें।

अतः दक्षिणी अफ्रीका दक्षिणी-पश्चिमी अफ्रीका के क्षेत्र पर अवैध रूप में अधिकार बनाये हुए था।

21 मार्च, 1990 की आधी रात को नामीबिया स्वतन्त्र हो गया। नामीबिया के लिए संयुक्त राष्ट्र परिषद् ने नामीबिया की राजधानी विन्चोरेक (Windhoek) में अपना अन्तिम सत्र 9 अप्रैल से 11 अप्रैल, 1990 तक किया तथा अपने विघटन के लिए प्रस्ताव पारित करके प्रस्तुति दी।

न्यास-प्रणाली तथा मैन्डेट-प्रणाली में अन्तर (Difference between Mandate System and Trusteeship System)— प्रो. गुडस्पीड के अनुसार न्यास प्रणाली राष्ट्र संघ द्वारा किये गये प्रयोग का उत्तराधिकारी है, परन्तु इसे उसका केवल एक बड़ा हुआ भाग मानना त्रुटिपूर्ण होगा।¹⁸ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के इतिहास में राष्ट्र संघ की मैन्डेट प्रणाली प्रथम प्रयोग था जिसके द्वारा पराधीन लोगों की दशा सुधारने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्र संघ की प्रसंविदा के अनुच्छेद 22 के अनुसार ऐसे लोगों की दशा सुधारने का सबसे अच्छा उपाय इन क्षेत्रों को विकासशील देशों को प्रशासन के लिये सौंपना था। अतः कुछ विकासशील देशों को प्रशासन तथा विकसित करने हेतु ऐसे क्षेत्र मैन्डेट प्रणाली के अन्तर्गत सौंपे गये।

न्यास-प्रणाली का कार्य क्षेत्र मैन्डेट-प्रणाली के कार्य क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। न्यास-व्यवस्था का क्षेत्रों पर नियन्त्रण भी अधिक प्रभावशाली है। न्यास-क्षेत्रों के सामरिक महत्व के क्षेत्रों की जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् ने ली है। राष्ट्र संघ के मैन्डेट-प्रणाली के मुकाबले में सामरिक न्यासी क्षेत्रों पर प्रशासन करने वाली सत्ता पर सुरक्षा परिषद् का प्रभावशाली नियन्त्रण है। न्यास क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों को सशस्त्र फौजों में भरती नहीं किया जा सकता है तथा ऐसी सत्ता को सामूहिक सुरक्षा के प्रावधानों के अनुसार कार्य करना पड़ता है। मैन्डेट-प्रणाली के मुकाबले में न्यास-प्रणाली ने अधिक प्रभावशाली तथा सहायनीय कार्य किया है। इसका अधिकतर कार्य लगभग समाप्त हो गया है। केवल एक न्यास क्षेत्र बचा है जो निकट भविष्य में स्वतन्त्र हो जायेगा। यह इसकी सफलता का सबसे अच्छा प्रमाण है।

प्रश्न नं० 9—राष्ट्र संघ का संक्षिप्त मूल्यांकन करे। राष्ट्र संघ की असफलता के क्या कारण थे?

उत्तर—फिलिप नोयल बेकर के अनुसार “राष्ट्रों में अन्तर्राष्ट्रीय समाज को एक स्थायी तथा जैव (Organic) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं की प्रणाली देने के इतिहास में राष्ट्रसंघ प्रथम प्रयास है।” यह प्रयास प्रथम विश्वयुद्ध का परिणाम था। प्रथम विश्व युद्ध के विध्वंसकारी परिणामों ने राज्यों को विवश कर दिया कि ये एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना के लिए प्रयास करें जो विधि के लिए आदर के भाव पर आधारित हो तथा विश्व में शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित कर सके। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान (1914-19) मित्र राष्ट्रों (Allied Nations) ने जहाजरानी, कच्चा माल, भोजन सामग्री, ईंधन आदि से सम्बन्धित कई समितियाँ स्थापित कीं। इन समितियों के सफल कार्यों को

अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की दिशा में प्रोत्साहित किया। बहुधा राष्ट्रसंघ को शयुद्ध का बालक (बिपसक वर्त) कहा जाता है। हेग के 1899 तथा 1907 के सम्मेलनों (Hague Conference of 1899 and 1907) में संघ के निर्माताओं ने हेग के उक्त सम्मेलनों को अपने सम्मुख राष्ट्रसंघ की सभा के मॉडल के रूप में रखा। उनका विश्वास था कि राष्ट्रसंघ की सभा द्वारा विधायिनी कार्यों का विकास किया जा सकता था।

प्रथम विश्वयुद्ध के अन्त तक विश्व के राजनीतिज्ञों के राष्ट्रसंघ की स्थापना के विषय में विचार स्पष्ट थे। वह कम-से-कम इस बात पर एकमत थे कि एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की जाय जो विश्व के लोगों को भविष्य में युद्ध की विभीषिका से तथा इसके विध्वंसकारी प्रभावों से बचा सके। जनवरी, 1918 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लायड जार्ज ने अपने एक महत्वपूर्ण भाषण में कहा— “शस्त्रों के बोझ को सीमित करने तथा युद्ध की सम्भावनाएँ कम करने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना करनी चाहिये।”

8 जनवरी, 1918 को अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने विश्व शान्ति के लिए चौदह-सूत्री प्रोग्राम की घोषणा की। चौदह-सूत्री प्रोग्राम में महाशक्तियों के प्रतिनिधियों के सम्मेलन स्थायी सचिवालय, निरस्त्रीकरण, अनिवार्य माध्यस्थम् (Compulsory arbitration) तथा युद्ध प्रारम्भ करने वाले तथा निर्मित होने वाले राष्ट्रसंघ के प्रावधानों का उल्लंघन करने वाले राष्ट्रों के विरुद्ध सैनिक शक्ति के प्रयोग आदि शामिल थे। राष्ट्रपति विल्सन ने राष्ट्रसंघ की स्थापना को प्रोत्साहित किया तथा उसकी स्वस्थता में सहायनीय योगदान दिया। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि संघ स्थापना का अधिक श्रेय राष्ट्रसंघ विल्सन को ही है।

1918 के अन्त तक लार्ड राबर्ट सोसिल ने एक ड्राफ्ट तैयार किया जो सोसित ड्राफ्ट के नाम से प्रसिद्ध है। दिसम्बर 1918 जनरल स्मट्स ने राष्ट्रसंघ की स्थापना के लिए अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने अपने प्रस्ताव में एक सामान्य सम्मेलन (General Conference), एक परिषद् (Council) तथा एक माध्यस्थम् न्यायालय (Arbitration Court) को व्यवस्था रखी। इसके उपरान्त अमेरिका के राष्ट्रपति ने द्वितीय तथा तृतीय ड्राफ्ट प्रस्तुत किये। ब्रिटिश सरकार ने भी एक ड्राफ्ट प्रस्तुत किया। अन्त में अमेरिका तथा ब्रिटेन के प्रस्तावों को एक संयुक्त ड्राफ्ट में रखा गया जिसे हर्स्ट-मिलर ड्राफ्ट कहते हैं। इस संयुक्त ड्राफ्ट को शान्ति सम्मेलन के राष्ट्रसंघ कमीशन के सम्मुख रखा गया। 28 अप्रैल, 1919 को शान्ति सम्मेलन ने इस प्रसंविदा (Covenant) को स्वीकार कर लिया जिसे कमीशन ने अन्तिम रूप दिया था। यह स्मरणीय है कि इस प्रसंविदा को वर्सलीज की सन्धि (Treaty of Versailles) के एक अभिन्न भाग के रूप में रखा गया। इस प्रकार 10 जनवरी, 1920 को राष्ट्रसंघ की स्थापना हो गई।

राष्ट्रसंघ का उद्देश्य— राष्ट्रसंघ के मुख्य दो उद्देश्य निम्नलिखित थे—

- (1) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग, शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना, तथा
- (2) अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहन देना।

राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंग—राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित प्रमुख अंग थे—

- (1) सभा,
- (2) परिषद् तथा
- (3) सचिवालय।

(1) **सभा (Assembly)**—सभा में राष्ट्रसंघ के सभी सदस्यों का प्रतिनिधित्व होता था। प्रत्येक सदस्य अपने तीन प्रतिनिधि भेजने का अधिकारी था, परन्तु प्रत्येक सदस्य केवल एक वोट देने का अधिकारी था। सर जिमर्न (Sir A. E. Zimmern) ने उचित हो लिखा है— “सभा न तो कोई सगदन थी अथवा न हो विश्व सरकार प्रणाली का ही कोई अन्य अंग थी। यह केवल विश्व में विधि के राज्य की स्थापना की सभा का सर्वप्रथम बाह्य तथा दर्शनीय प्रदर्शन था।” यह स्मरणीय है कि राष्ट्रसंघ की संविदा में एक दोष यह था कि सभा तथा परिषद् के कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं था। परन्तु कुछ कार्य ऐसे थे जिन्हें केवल सभा ही करती थी। उदाहारण के लिए सभा दो-तिहाई बहुमत द्वारा नये राज्यों को सदस्य के रूप में स्वीकार करती थी, परिषद् के अस्थायी सदस्यों को मनोनीत करती थी तथा महासचिव की नियुक्ति का अनुमोदन करती थी।

(2) **परिषद् (Council)**— परिषद् के सदस्य मुख्य मित्र-राष्ट्र तथा सहयोगी शक्तियाँ (Principal Allied and Associated Powers), अर्थात् अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, इटली तथा जापान थे। इसके अतिरिक्त चार सदस्य राष्ट्रसंघ की सभा द्वारा चुने जाते थे। दुर्भाग्यवश अमेरिका राष्ट्रसंघ का सदस्य कभी नहीं बना। यह यात निश्चयात्मक रूप से राष्ट्रसंघ के भविष्य के लिए घातक सिद्ध हुई। अमेरिका के स्थान की पूर्ति के लिए एक छोटे देश को चुना गया। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि सभा तथा परिषद् के कार्यों का स्पष्ट विभाजन नहीं था। परिषद् अनेक कार्य सभा के साथ मिलकर करती थी। परन्तु कुछ ऐसे कार्य थे जो केवल परिषद् ही करती थी। ऐसे कार्यों में अतिरिक्त स्थायी सदस्यों को मनोनीत करना, शस्त्रों को कम करने की योजना बनाना, बाहरी आक्रमण से रक्षा तथा क्षेत्रीय प्रभुत्वसम्पन्नता को बनाये रखने के लिए सदस्यों को सलाह आदि देना प्रमुख थे।

(3) **सचिवालय (The Secretariat)**— यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली में न तो अन्तर्राष्ट्रीय सचिवालय तथा न ही अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की धारणा थी, फिर भी राष्ट्रसंघ को श्रेय है कि उसने सच्चे अर्थों अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा की स्थापना प्रदान की तथा यह राष्ट्रसंघ द्वारा किया हुआ प्रयोग था जिसका संयुक्त राष्ट्र ने विकास किया तथा पूर्णता की। राष्ट्रसंघ के सचिवालय में लगभग 600 अधिकारी तथा अधीनस्थ कर्मचारी थे। सचिवालय का प्रधान महा सचिव (Secretary-General) था जिसकी नियुक्ति परिषद् को सर्वसम्मति के निर्णय से होती थी।

राष्ट्रसंघ के कार्य—राष्ट्रसंघ के निम्नलिखित मुख्य कार्य थे—(1) राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निम्नतम स्तर तक कम करना जिससे वह राष्ट्रीय सुरक्षा से संगतिपूर्ण हो (अनुच्छेद 8)।

(2) बाह्य आक्रमण के विरुद्ध राष्ट्रसंघ के सदस्यों को क्षेत्रीय अखण्डता तथा राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा करना (अनुच्छेद 10)।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शान्तिपूर्ण हल करना था (अनुच्छेद 12 तथा 16)। (4) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शान्तिपूर्ण परिवर्तन लाना था (अनुच्छेद 19)।

(5) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना था।

प्रो. गुडस्पीड (Stephen S. Goodspeed) के मत में राष्ट्रसंघ के दो उद्देश्य थे— अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति, सुरक्षा एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग। उनके अनुसार राष्ट्रसंघ की संविदा एक बहुपक्षीय संधि थी जिसका दोहरा उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखना तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को प्रोत्साहित करना था।

राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण— राष्ट्रसंघ की निम्नलिखित दुर्बलताएँ तथा दोष थे जिसके कारण राष्ट्रसंघ असफल रहा—

(1) राष्ट्रसंघ को संविदा का यह प्रमुख दोष था कि परिषद् द्वारा केवल सर्वसम्मति से निर्णय लिया जा सकता था। राष्ट्रों के गुटों में घंटे रहने के कारण अनेक मामलों में सर्वसम्मति सम्भव नहीं थी। इस प्रकार सर्वसम्मति का सिद्धान्त, जो राष्ट्रसंघ की कार्यक्षमता में वृद्धि करने हेतु रखा गया था, वास्तव में घातक सिद्ध हुआ। इसने परिषद के कार्यों में अवरोध उत्पन्न कर दिया।

(2) दूसरा प्रमुख दोष था कि राष्ट्रसंघ की संविदा में युद्ध को पूर्णतया वर्जित नहीं किया गया था। संविदा के प्रावधानों के अन्तर्गत कुछ परिस्थितियों में राज्यों को युद्ध करने का अधिकार था। संविदा के अनुसार सदस्यों का उत्तरदायित्व था कि वे अपनी अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का सर्वप्रथम हल माध्यस्थम् (arbitration) अथवा परिषद् की जाँच द्वारा करें। परन्तु यदि इन साधनों से समस्या का हल न हो तो 3 महीने की अवधि के उपरान्त युद्ध करने का अधिकार प्राप्त हो जाता था। विधि शास्त्रियों के अनुसार यह राष्ट्रसंघ की संविदा का एक प्रमुख संवैधानिक दोष था।

(3) अमेरिकी सेनेट ने राष्ट्रसंघ का अनुसमर्थन नहीं किया अतः अमेरिका संघ का सदस्य नहीं हो सका जबकि अमेरिका ने इसकी स्थापना में अत्यधिक योगदान दिया था।

(4) यदि राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा में हुआ कोई संशोधन किसी सदस्य को मान्य नहीं होता था अथवा वह उसका विरोध करता था, तो ऐसा राष्ट्र राष्ट्रसंघ से अपनी सदस्यता वापस ले सकता था।

(5) उपर्युक्त प्रावधानों के अतिरिक्त, दो वर्ष की नोटिस देकर कोई भी सदस्य राष्ट्रसंघ से अपनी सदस्यता वापस ले सकता था परिणामस्वरूप कालान्तर में राष्ट्रसंघ के सदस्यों की संख्या 62 से घटकर 32 रह गई।

(6) राष्ट्रसंघ को परिषद् में अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से हल करने की क्षमता नहीं थी।

(7) राष्ट्रसंघ में इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि वह महाशक्तियों को छोटे राज्यों पर आक्रमण करने तथा नाजायज लाभ उठाने से रोक सके।

(8) राष्ट्रसंघ एक सार्वभौमिक (universal) अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी। केवल 62 राज्य इसके सदस्य थे तथा कालान्तर में यह संस्था घटकर केवल 32 रह गई थी।

(9) राष्ट्रसंघ महाशक्तियों तथा छोटे राज्यों के भेदभाव पर आधारित था।

(10) राष्ट्रसंघ की असफलता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि राष्ट्रों ने (विशेषकर महाशक्तियों ने) अपने निजी स्वार्थों को सदैव सर्वोपरि रखा।

(11) राष्ट्रसंघ का अन्तिम दोष यह था कि विश्व में शान्ति बनाये रखने के अपने प्रमुख कार्य में युरो तरह असफल रहा।

राष्ट्रसंघ के विघटन (Dissolution) के कारण तथा घटनाएँ— उपर्युक्त वर्णित दोषों तथा दुर्बलताओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे राष्ट्रसंघ का पतन तथा विघटन अवश्यम्भावी हो गया। ये प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित थीं—

(1) सन् 1923 में इटली ने कार्फू (Corfu) नामक एक द्वीप पर आक्रमण कर दिया। ग्रीस ने राष्ट्रसंघ में यह मामला उठाया। राष्ट्रसंघ ने ग्रीस की सहायता न करके अपनी सलाह इटली के पक्ष में दी।

(2) सन् 1931 में जापान ने मन्चूरिया पर आक्रमण करके अपना अधिकार कर लिया। राष्ट्रसंघ भी कई प्रभावशाली कार्य करने में असमर्थ रहा।

(3) राष्ट्रसंघ का महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय शस्त्रीकरण को निम्नतम स्तर तक रकने का प्रयास करना था, जिससे वह राष्ट्रीय सुरक्षा के संगतिपूर्ण हो। 1932 में राष्ट्रसंघ के प्रयासों के परिणामस्वरूप एक निरस्त्रीकरण सम्मेलन हुआ। यह एक महत्वपूर्ण घटना थी, क्योंकि अपनी तरह का यह पहला सम्मेलन था, परन्तु इसमें कोई सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। असफलता राष्ट्रसंघ के लिए सिद्ध हुई।

(4) सन् 1935 में इटली ने इथोपिया पर आक्रमण कर दिया। राष्ट्रसंघ इटली के विरुद्ध कार्यवाही करने में असमर्थ रहा।

(5) सन् 1939 में रूस ने फिनलैण्ड पर आक्रमण कर दिया। इस बार भी राष्ट्रसंघ एक दर्शक मात्र रहा तथा कुछ भी कार्यवाही नहीं कर सका।

उपर्युक्त घटनाओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि राष्ट्रसंघ एक दुर्बल अन्तर्राष्ट्रीय संस्था थी तथा विश्व-शांति तथा सुरक्षा को बनाये रखने में असमर्थ थी। प्रसिद्ध विधिशास्त्री प्रो. ई. कारबेट (ferey E. Corvoit) ने उचित ही लिखा है— “राष्ट्रसंघ की असफलतायें इतनी स्पष्ट तथा बड़े पैमाने पर थीं कि उन्होंने इसके अन्तर्गत हुई उपलब्धियों को छिपा दिया। इसके सारे दोषों के बावजूद कुल अनुभव विश्व को प्रभावशाली विधिक व्यवस्था की दिशा में एक उन्नति थी। यदि इसने केवल विश्व के पैमाने पर सामूहिक कार्यवाही की समस्याओं को विविधता तथा विषमताओं को अभिदर्शित कर दिया होता तो यह एक सकारात्मक उपलब्धि (Positive achievements) होती। वास्तव में इसने ऐसी संस्थाएँ तथा प्रक्रियायें प्रारम्भ की जिसका आज भी लाभकारी प्रयोग होता है।” प्रो. गुडस्पीड ने भी लिखा है— “राष्ट्रसंघ के अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के सभी पहलुओं को प्रारम्भ किया। जिस्सन्देह सबसे नवीन नवाचारों (novel innovations) में एक समाचार सच्चे अर्थों में अन्तर्राष्ट्रीय सिविल सेवा को अपनाया था।” वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के विकास (जिसका प्रारम्भ राष्ट्रसंघ के प्रयास द्वारा हुआ) के परिणामस्वरूप ही आधुनिक प्रशासन को प्रस्तुत स्वरूप तथा प्रक्रिया मिली है।

प्रश्न न० 10— निम्नलिखित में से तीन पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

उत्तर— (1) अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (आई०एम०एफ०) तथा पुनः निर्माण विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय या विश्व बैंक (आई०बी०आर०डी) — विश्व बैंक की विवेचना के पूर्व कुछ शब्द विश्व बैंक दल (World Bank Group) के बारे में कहना वांछनीय होगा।

विश्व बैंक दल (The World Bank Group)— विश्व बैंक दल के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें हैं—

- (i) पुनः निर्माण तथा विकास हेतु अन्तर्राष्ट्रीय बैंक या विश्व बैंक (I.B.R.D.);
- (ii) अन्तर्राष्ट्रीय विकास निगम (I.D.A.);
- (iii) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I.F.C.);
- (iv) बहुराष्ट्रीय निवेश गारंटी एजेन्सी (M.I.G.A.)

उपर्युक्त प्रथम तीन संयुक्त राष्ट्र की विशिष्ट एजेन्सियाँ हैं परन्तु चौथी विशिष्ट एजेन्सी नहीं है।

इसकी स्थापना जुलाई 1944 के ब्रेटन वुड्स सम्मेलन के परिणामस्वरूप हुई तथा इस संस्था का संविधान उक्त सम्मेलन के अन्तिम अधिनियम के परिशिष्ट शक 1 में अपनाया गया था। तत्पश्चात् एक विशेष करार द्वारा इसका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र से हुआ जिसे महासभा ने 14 नवम्बर, 1947 की अनुमोदित कर दिया। इसका उद्देश्य उत्पादन के उद्देश्यों में पूँजी लगाकर सदस्य राज्यों को अपने क्षेत्र में पुनःनिर्माण तथा विकास में सहायता देना है। यह गारन्टी देकर विदेशी व्यक्तिगत पूँजी लगाने को प्रोत्साहित करता है। इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को भी प्रोत्साहित करना है। इसकी सदस्यता उन राज्यों के लिए खुली है जो 31 दिसम्बर, 1945 से पहले अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (International Monetary Fund) के सदस्य थे। अन्य राज्यों को गवर्नर के बोर्ड के बहुमत से सदस्य बनाया जा सकता है। जून 1992 में रूस औपचारिक रूप से विश्व बैंक का सदस्य बन गया। विश्व बैंक ने रूस तथा अन्य पूर्व रूसी गणतंत्रों की सदस्यता के प्रार्थनापत्र पर स्वीकृति अप्रैल 1992 में ही प्रदान कर दी थी। रूस के समान, 12 अन्य पूर्व रूसी गणतंत्र भी विश्व बैंक के सदस्य हो गये। इस प्रकार बैंक सही अर्थों में विश्व बैंक हो गया।

इसके प्रमुख अंग तीन हैं— (क) गवर्नरों को परिषद् (Board of Governors); (3) कार्यकारी डाइरेक्टर (Executive Directors); (ग) एक सभापति (President)। परिषद् में एक गवर्नर तथा एक वैकल्पिक (Alternative) सदस्य होता है। इसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता है। इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है। बैंक की परिषद् की सभी शक्तियाँ परिषद् में केन्द्रित होती हैं। परिषद् ने अपनी शक्तियों 18 कार्यकारी डाइरेक्टर्स को प्रदान कर रखी है तथा ये बैंक के सामान्य कार्य सम्पादित करते हैं। कार्यकारी संचालक अपना एक सभापति चुनते हैं जो संस्था के प्रति जिम्मेदार होता है तथा कार्यकारी संचालकों की मीटिंग का सभापतित्व करता है।

23 तथा 24 मई, 2005 को बैंक का विकास अर्थव्यवस्थाओं (Development Economics पर वार्षिक सम्मेलन हुआ। **अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष (International Monetary Fund or I.M.F.)—** इसकी स्थापना ब्रेटन वुड्स सम्मेलन (जुलाई 1944) के परिणामस्वरूप हुई तथा नवम्बर, 1947 को एक करार द्वारा इसका सम्बन्ध संयुक्त राष्ट्र से हो गया। अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष की प्रतिज्ञा के अनुच्छेद 1 के अनुसार इसके मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग को प्रोत्साहन देना, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित विकास को प्रोत्साहित करना, सदस्यों के मध्य विनिमय में स्थिरता को बढ़ाना तथा उस सम्बन्ध में पारस्परिक प्रतियोगिता को हटाना, विदेशी विनिमय प्रतिबन्धों को हटाना, सदस्यों की धन उपलब्ध कराकर उनमें विश्वास उत्पन्न करना तथा सदस्यों के मध्य भुगतान से अन्तर्राष्ट्रीय संतुलन में असमानताओं को न्यून करना आदि हैं।

मौखिक सदस्यों के अतिरिक्त अन्य राज्य, गवर्नरों की परिषद् के साधारण बहुमत से सदस्य बनाये जा सकते हैं। प्रत्येक सदस्य को उसके द्वारा कोप में धन दिये जाने के अनुसार मत देने का अधिकार होता है। प्रत्येक सदस्य को 250 मत के अतिरिक्त तथा प्रत्येक 1,00,000 स्टर्लिंग पौंड के धन पर एक अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। जून 1992 में रूस औपचारिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय धनकोष का सदस्य हो गया। 12 अन्य पूर्व रूसी गणतंत्र भी सदस्य हो गये। इस प्रकार कोप के 184 राज्य सदस्य हैं। इसके चार मुख्य अंग होते हैं (क) गवर्नरों को परिषद् (ख) कार्यकारी संचालक (Executive Director); (ग) एक प्रबन्ध संचालक (Managing Director); तथा (घ) कर्मचारी।

कोष की सभी शक्तियाँ परियद् में केन्द्रित होती हैं। परिषद् अपना एक चेयरमैन निर्वाचित करती है तथा इसका अधिवेशन प्रतिवर्ष होता है। कार्यकारी संचालकों की संस्था 18 होती है तथा ये कोष के सामान्य कार्य सम्पादित करते हैं। कार्यकारी संचालक प्रबन्ध-संचालक का निर्वाचन करते हैं जो कार्यकारी संचालकों के चेयरमैन की भौति कार्य करता है। कोष का मुख्य कार्यालय वाशिंगटन में है।

(2) नाकाबन्दी का अर्थ तथा परिभाषा—स्टार्क के अनुसार, नाकाबन्दी तब होती है जब कोई युद्धरत देश शत्रु-देश के समुद्री किनारे या उसके किसी हिस्से में जलयानों के आने-जाने पर रोक लगा देता है।

ओपेनहीम के मतानुसार, नाकाबन्दी युद्धपोतों द्वारा शत्रु के समुद्रतट अथवा उसके किसी भाग पर राय राज्यों के जहाजों अथवा हवाई जहाजों का प्रवेश तथा निकास रोकने के प्रयोजन से प्रतिवन्ध अथवा अवरोध लगाना है।

हाल के अनुसार, नाकाबन्दी युद्धस्थित राज्य द्वारा युद्ध के समय में शत्रु के अधिकार में स्थित किसी क्षेत्र अथवा स्थान में प्रवेश अथवा पहुँच को रोकना है। यह युद्ध का एक कार्य है जो युद्धस्थित के युद्धपोतों द्वारा किया जाता है जिसका उद्देश्य शत्रु के तटस्थ किसी सीमांकित बन्दरगाह में प्रवेश अथवा उसके प्रस्थान को रोकना है।

नाकाबन्दी के लक्षण—प्रथम नाकाबन्दी युद्धपोतों द्वारा होनी चाहिये चाहे वह अन्य साधनों द्वारा अधिक प्रबल की जाय। द्वितीय, केवल शत्रु का समुद्रतट अथवा उसका भाग अथवा शत्रु के बन्दरगाह ही नाकाबन्दी के लक्ष्य होने चाहिये। तृतीय, नाकाबन्दी से प्रवेश अथवा निर्गमन दोनों रोकें जा सकते हैं। चतुर्थ नाकाबन्दी ग्राह्य मानने के लिए सब राज्यों के जहाजों अथवा हवाई जहाजों के विरुद्ध निष्पक्षता से लगानी चाहिये। अन्त में नाकाबन्दी एक युद्ध-सदृश क्रियाशीलता है।

नाकाबन्दी का भ्रमात्मक अर्थ घेरा डालने से नहीं लगाना चाहिये जिसका लक्ष्य घिरे हुये स्थान का अभिग्रहण करने का होता है। नाकाबन्दी समुद्र द्वारा प्रत्येक पारस्परिक संसर्ग को रोकती है।

पेरिस की घोषणा, 1856 (Declaration of Paris, 1856)—1856 की पेरिस की घोषणा के चौथे अनुच्छेद में यह निर्धारित किया गया है कि नाकाबन्दी बाध्यकारी होने के लिए प्रभावपूर्ण होनी चाहिये अर्थात् ऐसे बल से स्थापित की जानी चाहिये जो शत्रु के समुद्रतट में पहुँच को रोकने के लिए वस्तुतः पर्याप्त हो।

कीमिया के युद्ध (1854) में यह माना गया कि ब्रिटेन के समुद्र में इधर-उधर चक्कर लगाने वाले केवल एक युद्धपोत ने 120 मील की दूरी नापकर नाकाबन्दी संगठित किया। दूसरी और फारमोसा की नाकाबन्दी अपूर्ण समझी गयी जो फ्रांस द्वारा 1884 में अधिसूचित की गई थी। जब ब्रिटेन ने उसके विरुद्ध यह आपत्ति की कि फ्रांसीसी नौसेना-नायक के अधिकार में जो सैनिक बल था, वह अपर्याप्त था, परिणामस्वरूप नाकाबन्दी उस समय त्याग दी गई जब तक उसको पुष्ट करने के लिए और अधिक बल नहीं पहुँचा।

हीवीटन (Wheaton) का कथन है कि नाकाबन्दी के प्रभाव को तटस्थ के अधिकारों का अतिलंघन होने के कारण प्रसंगगत मामले की परिस्थितियों में जितना आवश्यक है उससे अधिक नहीं बढ़ाना चाहिये।

लन्दन की घोषणा, 1900—लन्दन की असत्यापित घोषणा ने पेरिस की घोषणा (1856) द्वारा स्थापित इस नियम की पुष्टि की कि बन्धनकारी होने के लिए नाकाबन्दी प्रभावपूर्ण होनी चाहिए। इसमें आगे यह भी कहा गया कि नाकाबन्दी घोषित तथा अधिसूचित होनी चाहिए। लन्दन की घोषणा के अनुसार नाकाबन्दी की घोषणा या तो युद्ध-स्थित सरकार द्वारा अथवा उसके राज्य की ओर से कार्य करने वाले नौसेना दल के समादेशक द्वारा नाकाबन्दी आरम्भ होने वाले दिनांक, नाकाबन्दी के अधीन समुद्र तट की सीमाएं तथा अवधि जिसके भीतर तटस्थ जहाज निकाल सकें उनका विशेष रूप से निर्देश करते हुए की जानी चाहिए। यह नियम तटस्थों के हित पर आधारित है कि उनकी अपने दायित्व की सीमा सम्यक रूप से विदित हो जाय।

नाकाबन्दी के प्रकार—नाकाबन्दी के कई ढंग हो सकते हैं जैसे प्रभावकारी नाकाबन्दी (Effective Blockade), मध्यतः नाकाबन्दी (Blockade de facto), विज्ञापित द्वारा नाकाबन्दी (Blockade by Notification), कागजी नाकाबन्दी (Paper Blockade), सैनिक नाकाबन्दी (Strategic Blockade), व्यापारिक नाकाबन्दी या पैसिफिक नाकाबन्दी (Commercial Blockade or Pacific Blockade), साधारण और सार्वजनिक नाकाबन्दी (Simple and Public Blockades) आदि।

(3) सत्प्रयत्न और वार्तालाप— सत्प्रयत्न (Good Offices)—जब दो राष्ट्र अपने झगड़ों का आपस में निपटारा नहीं कर पाते हैं तो एक तीसरा मित्र देश या कोई व्यक्ति उनके झगड़ों को सुलझाने में सहायता कर सकता है। यह तीसरा राष्ट्र इस विषय में अपने सत्प्रयत्न अर्पित कर सकता है। ये सेवाएँ किसी राज्य द्वारा, किसी व्यक्ति द्वारा या अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा अर्पित की जा सकती हैं। परन्तु इस ढंग द्वारा तीसरा व्यक्ति या राष्ट्र केवल ऐसा वातावरण उपस्थित कर देता है तथा सामान्य सुझाव प्रस्तुत करता है। किन्तु स्वयं क्रियाशील रूप में वातां आदि में भाग नहीं लेता। 1947 में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् ने इण्डोनेशिया तथा नीदरलैण्ड के झगड़े में अपने सत्प्रयत्न प्रस्तुत किये। इसी प्रकार हाल ही में फ्रांस ने अमेरिका तथा उत्तरी विषतनाम तथा दक्षिणी वियतनाम को अपने सत्प्रयत्न प्रस्तुत किये। यह स्मरणीय है कि वियतनाम में शान्ति स्थापित करने की जितनी भी वार्ताएँ हुई हैं उनमें से अधिकतर पेरिस में हुई थी।

उदहारण के लिये दो दशकों से अधिक साइप्रस (Cyprus) विवाद में सत्प्रयत्न, रेनबो वारियर विवाद (The Rainbow Warrior Dispute, 1986) में सत्प्रयत्न, अफगानिस्तान में पक्षकारों को वार्ता के सत्प्रयत्न के साथ-साथ समस्या के समाधान के लिये सुझाव देना आदि द्वारा महासचिव ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

वार्तालाप (Negotiations)— वार्तालाप या बातचीत द्वारा भी अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को निपटाने का प्रयास किया जाता है। यह विवाचन अथवा न्यायिक निर्णय से कम औपचारिक ढंग है। कभी-कभी केवल वार्ता द्वारा ही झगड़ों का निपटारा हो जाता है, परन्तु कभी-कभी वार्ता के साथ अन्य ढंगों का भी प्रयोग होता है, जैसे सेवाएँ, मध्यस्थता आदि का प्रयोग वार्ता के साथ किया जाता है। झगड़ों के शांतिपूर्ण निस्तारण में वार्ता सबसे सरल ढंग है, क्योंकि इसकी प्रक्रिया में केवल झगड़े के पक्षकार ही सम्मिलित होते हैं। झगड़ों के पक्षकारों के अनुसार वार्ता द्विपक्षीय अथवा बहुपक्षीय हो सकती है। झगड़ों के निस्तारण में वार्ता का सदैव महत्व रहा है तथा भविष्य में भी रहेगा। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अनुच्छेद 233 में, जिसमें झगड़ों के शांतिपूर्ण निस्तारण के ढंगों का उल्लेख किया गया है, सर्वप्रथम वार्ता का उल्लेख है।

8 दिसम्बर, 1998 को एक प्रस्ताव (प्रस्ताव 53/101) पारित करके संयुक्त राष्ट्र महासभा ने अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप (International Negotiations) के सम्बन्ध में निर्देशक सिद्धान्त घोषित किये। महासभा ने विवादों के निस्तारण के शांतिपूर्ण ढंग तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि से संगतपूर्ण वार्ता के महत्व को पुष्ट किया तथा यह स्पष्ट किया कि वार्ता निम्नलिखित निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप होनी चाहिये—

(क) वार्तालाप सद्भाव में की जानी चाहिये।

(ख) राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय वार्तालाप में उपयुक्त ढंग से उन राज्यों को सम्मिलित करना चाहिये जिनके महत्वपूर्ण हित सम्बन्धित मामले से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े हुये हैं।

(ग) वार्तालाप के प्रयोजन तथा उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय विधि के नियमों तथा सिद्धान्तों, जिनमें संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रावधान भी सम्मिलित हैं, से संगतपूर्ण या अनुरूप होने चाहिये।

(घ) राज्यों को पारस्परिक रूप से तय किये हुये वार्ता करने हेतु तय वाँचे का अनुपालन करना चाहिये।

(ङ) राज्यों को वार्तालाप के दौरान एक निर्माणात्मक वातावरण बनाये रखने का प्रयास करना चाहिये तथा ऐसे आचरण से प्रतिवर्त रहना या बचना चाहिये जिससे वार्ता या उसकी प्रगति पर बुरा असर पड़े।

(च) वार्तालाप के निष्कर्ष पर पहुँचने हेतु राज्यों को अपना ध्यान पूरे समय ऐसी वार्ता के मुख्य उद्देश्यों पर केन्द्रित करना चाहिये।

(छ) वार्तालाप में बाधा आने पर पारस्परिक रूप से स्वीकृत तथा उचित हल के लिये प्रयास जारी रखना चाहिये।

(4) शान्ति प्रस्ताव—

संयुक्त राष्ट्र के स्थायी सदस्यों के आपस में असहयोग के कारण सुरक्षा—परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने के सम्बन्ध में असमर्थ सिद्ध हुई। अनुच्छेद 43 में राज्यों द्वारा संयुक्त राष्ट्र को सशस्त्र शक्ति दिये जाने के प्रावधानों को लागू नहीं किया जा सका, क्योंकि इस सम्बन्ध में विशेष समझौतों की आवश्यकता थी। महाशक्तियों के आपस में सहयोग तथा संघर्ष के कारण ऐसा करना सम्भव न हो सका अतः सुरक्षा परिषद् को शान्ति तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिए आवश्यक शक्ति नहीं प्राप्त हो सकी। 1950 के कोरिया-संघर्ष के प्रारम्भ में सुरक्षा परिषद् ने दक्षिणी कोरिया के आक्रमण को रोकने का निर्णय लिया था। उसके विषय में आवश्यक कार्यवाही की गई। यह कार्यवाही इसलिए सम्भव हो सकी कि जब यह निर्णय लिया जा रहा था, उस समय रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में उपस्थित नहीं था। 1 अगस्त, 1950 को जब वह रूस का प्रतिनिधि सुरक्षा परिषद् में वापस आया तो सुरक्षा-परिषद् कोरिया के मामले में निर्णय लेने में असमर्थ हो गई। अमेरिका ने फ्रांस, ब्रिटेन आदि के समर्थन से यह चेष्टा की कि संयुक्त राष्ट्र को इस प्रकार के संघर्षों से निपटने के लिए उचित अधिकार प्रदान किये जायें। अमेरिका के प्रयास तथा अन्य पश्चिमी देशों के समर्थन से 3 नवम्बर, 1950 में संयुक्त राष्ट्र को महासभा ने शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव पारित किया।

इस प्रस्ताव में निम्नलिखित बातें मुख्य हैं—

(1) सुरक्षा-परिषद् के 9 सकारात्मक मत द्वारा अथवा सुरक्षा-परिषद् के सदस्यों के बहुमत से महासभा का विशेष संकटकालीन सत्र 24 घण्टे के अन्दर बुलाया जा सकता है।

(2) यदि सुरक्षा परिषद् शान्ति के उल्लंघन या आक्रमण आदि को रोकने में असमर्थ रही है तो महासभा उस पर विचार कर सकती है।

(3) महासभा सामूहिक कार्यवाही के लिए सुझाव दे सकती है जिसमें आवश्यकता होने पर अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा को बनाये रखने के लिए सशस्त्र शक्ति का प्रयोग शामिल है।

(4) 14 सदस्यों का एक शान्ति-निरीक्षण कमीशन बनाया गया जिसका कार्य संघर्ष वाले क्षेत्र का निरीक्षण करना तथा वहाँ के विषय में महासभा को रिपोर्ट देना था। परन्तु यह कमीशन संघर्ष क्षेत्र में तभी जा सकता था जब कि सम्बन्धित राज्य की इस विषय में सहमति मिल जाय।

(5) प्रत्येक सदस्य-राज्य से यह कहा गया कि वह अपनी सेना में कुछ ऐसी शिक्षित सेना सदैव तैयार रहोगा जो संयुक्त राष्ट्र की माँग पर दी जा सके।

(6) एक 14 सदस्यीय सामूहिक कार्यवाही कमेटी बनाई गई जिसका मुख्य कार्य अन्तर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा स्थापित करने के लिए अध्ययन करना तथा रिपोर्ट देना था।

प्रो. ड्यूरान एण्डासी ने उचित ही लिखा है कि शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव का उद्देश्य संयुक्त राष्ट्र को शान्ति और सुरक्षा करने की मशीनरी का सुधार करना था। **अन्य विधिशास्त्री कुन्ज (Josef L. Kunz) के अनुसार** यह सुरक्षा परिषद् से कुछ शक्तियाँ लेकर महासभा को देने का प्रस्ताव था जिससे निषेधाधिकार (Veto) से बचा जा सके

तथा संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने के कार्य में कुछ संशोधन लाया जाय। डॉ. नगेन्द्र सिंह के शब्दों में “शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव का वास्तव में महासभा के संयुक्त राष्ट्र के समय शक्तिशाली अंग के रूप में विकास के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है।”

शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव की वैधता (Validity of the Uniting for Peace Resolution-1950)—शान्ति के लिए संगठित होने के प्रस्ताव की वैधता को कुछ विधिशास्त्रियों तथा साम्यवादी देशों ने आलोचना की है—रूस ने इस प्रस्ताव का आरम्भ से ही विरोध किया था। एक रूसी लेखक के अनुसार प्सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्यों की विश्वशान्ति को सुरक्षित तथा सुदृढ़ करने की विशेष जिम्मेदारी चार्टर के अनुसार, सुरक्षा-परिषद् ऐसा अंग है जो अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति तथा सुरक्षा के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कार्यवाही करने हेतु सक्षम है। इस मामले में संयुक्त राष्ट्र संस्था राष्ट्रसंघ से भिन्न है, संयुक्त राष्ट्र संस्था में सतुक्षा-परिषद् ही एक अंग है जो इस प्रकार की कार्यवाही कर सकती है।” एक अन्य रूसी लेखक, **प्रो. किलोय (Krylov) के अनुसार** “महासभा के निर्णय केवल अल्पसंख्यकों के मन के विरुद्ध बहुमत के आधार पर विधिक शक्ति से हीन समझे जाने चाहिये, यदि अल्पसंख्यकों के हित संयुक्त राष्ट्र चार्टर के उद्देश्यों तथा सिद्धान्त के अनुकूल है। अल्पसंख्यकों को इन निर्णयों को अस्वीकार करने का अधिकार है। रूस के अनुसार यह प्रस्ताव चार्टर के प्रावधान से असंगत है। क्योंकि चार्टर में शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने को जिम्मेदारी सुरक्षा-परिषद् को है तथा यही इस विषय में सैनिक शान्ति का प्रयोग कर सकती है। रूस का मत उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि अनुच्छेद 10 के अन्तर्गत महासभा को अधिकार प्राप्त है कि वह चार्टर से सम्बन्धित किसी भी प्रश्न पर विचार कर सकती है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 24 के अनुसार, शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने की प्राथमिक जिम्मेदारी सुरक्षा परिषद् को है। प्राथमिक जिम्मेदारी का तात्पर्य यह नहीं है कि सुरक्षा परिषद् शान्ति तथा सुरक्षा बनाये रखने में असमर्थ होती है तो संयुक्त राष्ट्र संस्था की सम्पूर्ण जिम्मेदारी समाप्त हो सकती है।” **प्रो. जगज एन्ड्रासी के अनुसार** “चार्टर के किसी भी प्रावधान यहाँ तक कि अनुच्छेद 24 से यह निष्कर्ष नहीं निकलता है कि यदि सुरक्षा परिषद् फौरन तथा प्रभावशाली कार्यवाही नहीं कर पाती या अयोग्य अथवा असमर्थ रहती है तो पूरी संस्था की जिम्मेदारी समाप्त हो जाती है।” **एक अन्य विधिशास्त्री मिस गटरिज (Miss Gutteridge) ने यह विचार प्रकट किया है** कि संयुक्त राष्ट्र में वैधानिक रूप से आवश्यकताओं तथा परिस्थितियों के अनुसार विकास करने की क्षमता है। उन्होंने इस विषय में दो मापदण्ड (tests) बताये हैं— (1) ऐसा विकास चार्टर के व्यक्त प्रावधानों के विरुद्ध नहीं होना चाहिये, तथा (2) ऐसा विकास चार्टर के अनुच्छेद 1 में वर्णित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए होना चाहिये। अतः निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव एक ऐसा विकास है जो उपर्युक्त मापदण्डों के ऊपर खरा उतरता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि शान्ति के लिए संगठित होने का प्रस्ताव एक वैध प्रस्ताव है तथा यह चार्टर के प्रावधानों से असंगत नहीं है।

B.A.LL.B.-10th Sem. Paper-IV Taxation Law

प्रश्न न0 1— कर क्या है? यह फीस से किस प्रकार भिन्न है?

उत्तर— भारतीय संविधान की अनुसूची VII में तीन सूचियाँ केंद्र और राज्यों के विधायी अधिकार की सीमाओं को परिभाषित करती हैं। कर और शुल्क लगाने का अधिकार एक दूसरे से मेल नहीं खाता है, और “शुल्क” और “कर” शब्दों को विभिन्न व्याख्याएँ दी गई हैं। कर से शुल्क को अलग करने के लिए, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने शुरुआती निर्णयों में प्राप्त शुल्क और प्रदान की गई सेवाओं के बीच “क्विड प्रो क्वो टेस्ट” तैयार किया है। जबकि शुल्क लगाना सरकार द्वारा सेवा प्रदान करने में भुगतान की गई लागत से संबंधित है, कर को कभी जनता के लाभ के लिए एक सामान्य बोझ माना जाता था। शुल्क को अलग रखा जाना चाहिए था और समेकित निधि में जमा नहीं किया जाना चाहिए था।

कर क्या है?

अपने खर्चों का भुगतान करने के लिए, सरकार अपने नागरिकों पर कानून के तौर पर कर लगाती है। परिभाषा के अनुसार, कर एक ऐसा भुगतान है जिसके बदले में करदाता को न तो कोई प्रत्यक्ष और न ही कोई परिभाषित लाभ मिलता है। हम परिभाषा से कर की कुछ सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं की पहचान कर सकते हैं।

कर एक ऐसी आवश्यकता है जिसे सरकार अपने लोगों और विभिन्न वाणिज्यिक उद्यमों पर लगाती है। चूंकि करों का भुगतान करना अनिवार्य है, इसलिए ऐसा न करने पर दंड लगाया जाएगा।

करदाता और कर लगाने वाली संस्था के बीच का संबंध सीधे तौर पर लेन-देन का नहीं है। दूसरे शब्दों में, करदाता कर चुकाने के बदले में कुछ नहीं मांग सकता।

सम्पूर्ण राष्ट्र के लाभ के लिए सार्वजनिक व्यय को वित्तपोषित करने हेतु कर लगाया जाता है।

कराधान का आधार समय के साथ स्थिर रहना असंभव है। कर प्राधिकरण नियमित आधार पर इसकी जांच करता है।

शुल्क क्या है?

शुल्क सार्वजनिक हित में प्रदान की गई विशिष्ट सेवाओं के बदले में सरकार को किया जाने वाला स्वैच्छिक भुगतान है, लेकिन इससे भुगतानकर्ता को एक विशिष्ट लाभ प्राप्त होता है।

हमारे नवीनतम ऑनलाइन पाठ्यक्रमों का अन्वेषण करें और अपनी गति से नए कौशल सीखें। नामांकन करें और अपने करियर को बढ़ावा देने के लिए प्रमाणित विशेषज्ञ बनें।

कर और शुल्क के बीच अंतर

हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती आयुक्त बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मीन्द्र तीर्थ स्वामी, एआईआर 1963 एससी 966 के ऐतिहासिक मामले में, कर और प्रभार के बीच अंतर को पहली बार संबोधित किया गया था। सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुनाया कि इस मामले में कर तब प्रभार बनता है जब, सबसे पहले, कर के माध्यम से प्राप्त धन सेवा प्रदान करने में सरकार द्वारा किए गए खर्च से संबंधित होता है। इसलिए, एक क्विड प्रो क्वो घटक की आवश्यकता है। दूसरा, जुटाए गए धन को स्पष्ट रूप से उन लागतों के लिए नामित किया जाना चाहिए जो सरकार सेवाएं प्रदान करने में वहन करती है और समेकित निधि के साथ संयुक्त नहीं होनी चाहिए।

आधार	कर	शुल्क
परिभाषा	कर वह धन है जो सरकार किसी व्यक्ति या कंपनी पर तब लगाती है जब वे कोई विशेष कार्य करते हैं या कोई विशेष लेन-देन पूरा करते हैं। कर पूरे देश के लाभ के लिए लगाए जाते हैं।	शुल्क एक कर के समान है, क्योंकि दोनों ही ऐसी राशियाँ हैं जो लोगों या व्यवसायों को सरकार को देनी होती हैं। शुल्क का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का प्रबंधन या नियंत्रण करना है।
मापा	इस कर की गणना प्रायः लेनदेन की कुल लागत के प्रतिशत के रूप में की जाती है।	सेवा प्रदान करने की लागत दर से निकटता से संबंधित है। आम तौर पर, शुल्क की आय का उपयोग केवल उस सेवा को प्रदान करने के लिए किया जाता है जिसके लिए वे अभिप्रेत हैं।
लेवी संग्रह	कर वे कर हैं जो सामान्य सरकारी सेवाओं के लिए चुकाए जाते हैं। यह सरकार के लिए पैसा कमाने का एक तरीका है।	चार्ज एक ऐसा शुल्क है जो उस व्यक्ति की मदद करने के लिए लिया जाता है जिससे पैसा लिया जाता है। यह किसी व्यक्ति, व्यवसाय या पेशेवर द्वारा प्रदान की गई सेवाओं के लिए बिल किया जाता है।
प्रशासन और अनुप्रयोग	प्रशासन और उपयोग: आपके करों से शिक्षक, पुलिस अधिकारी या नौकरशाह का वेतन मिल सकता है। वे स्कूल बनाने या सड़क बनाने में सहायता कर सकते हैं। वे स्थानीय सीवेज उपचार सुविधा के लिए धन	सटीक सेवा के लिए शुल्क लिया जाता है, तथा प्राप्त धनराशि आमतौर पर उस सेवा के लिए अलग रख दी जाती है।

	मुहैया करा सकते हैं।	
उदाहरण	एक व्यक्ति द्वारा एक वर्ष में अर्जित की गई राशि पर कर लगता है। इसके अलावा, अक्सर वस्तुओं की बिक्री पर भी कर लगाया जाता है। करों में आयकर, उपहार कर, संपत्ति कर, वेट आदि शामिल हैं।	हालाँकि, किसी सेवा के उपयोग के लिए विशेष रूप से शुल्क लगाया जाता है। उदाहरण के लिए, सरकार पार्कों के लिए प्रवेश शुल्क लगा सकती है। शुल्क के उदाहरणों में स्टाम्प शुल्क, ड्राइविंग के लिए लाइसेंस शुल्क, सरकारी पंजीकरण शुल्क आदि शामिल हैं।

केस कानून

कर और शुल्क के बीच अंतर पर चर्चा करने वाला पहला बड़ा मामला कमिशनर, हिंदू धार्मिक बंदोबस्ती बनाम श्री शिरूर मठ के श्री लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामी, एआईआर 1963 एससी 966 था। इस मामले में, सुप्रीम कोर्ट ने माना कि लेवी एक शुल्क है जब, सबसे पहले, लेवी के माध्यम से जुटाई गई राशि सरकार द्वारा सेवा प्रदान करने में किए गए खर्चों से संबंधित होती है। इसलिए, इसमें क्विड प्रो क्वो का तत्व होना चाहिए। दूसरे, एकत्र किए गए धन को समेकित निधि में विलय नहीं किया जाना चाहिए और इसे विशेष रूप से सरकार द्वारा सेवाएं प्रदान करने में किए गए व्यय के लिए निर्धारित किया जाना चाहिए।

इन दो तत्वों को सर्वोच्च न्यायालय ने महंत श्री जगन्नाथ रामानुज दास बनाम उड़ीसा राज्य, एआईआर 1954 एससी 400 के मामले में और पुख्ता किया, जहां यह माना गया कि शुल्क व्यक्तियों द्वारा प्राप्त कुछ सेवाओं के लिए प्रतिफल होना चाहिए, और इसे राज्य के सामान्य राजस्व में शामिल नहीं किया जाना चाहिए, जिसे सामान्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए खर्च किया जाना चाहिए। शुल्क के उपर्युक्त दो सिद्धांतों में बाद के न्यायिक निर्णयों के माध्यम से काफी बदलाव आया है, और दोनों की सख्त आवश्यकता को कम कर दिया गया है।

श्रीनिवास जनरल ट्रेडर्स बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1983 4 एससीसी 353 के मामले में, यह माना गया कि शुल्क और प्रदान की गई/अपेक्षित सेवाओं के बीच सह संबंध सामान्य प्रकृति का है, न कि गणितीय सटीकता का। यह केवल आवश्यक है कि शुल्क की वसूली और प्रदान की गई सेवाओं के बीच एक 'उचित संबंध' मौजूद हो।

कृषि उपज मंडी समिति एवं अन्य बनाम ओरिएंट पेपर एवं इंडस्ट्रीज लिमिटेड (1995) 1 एससीसी 655 के मामले में, बांस की बिक्री और खरीद पर बाजार समितियों द्वारा लगाए गए बाजार शुल्क की वैधता पर सवाल उठाया गया था। न्यायालय ने इस निर्णय के पैरा 21 में कर और शुल्क के बीच अंतर पर न्यायशास्त्र का सारांश दिया, अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बिंदुओं पर—

- (1) जिन विषयों पर शुल्क लगाया जा सकता है, उन्हें संविधान की अनुसूची टप्प के तहत अलग से शामिल किया गया है।
- (2) ऐसा प्रतीत होता है कि सभी शुल्कों के लगाने का आधार जनहित है, लेकिन शुल्क लगाने का कारण कोई विशेष लाभ होता है जो उस व्यक्ति को प्रदान किया जाता है जिस पर शुल्क लगाया जाता है।
- (3) यह निर्धारित करने में कि क्या यह लेवी एक शुल्क है, वास्तविक परीक्षण यह होना चाहिए कि क्या इसका प्राथमिक और आवश्यक उद्देश्य किसी विशिष्ट क्षेत्र या वर्गों को विशिष्ट सेवाएं प्रदान करना है।
- (4) शुल्क का यह कोई सिद्धांत नहीं है कि इसका संबंध वास्तव में दी गई सेवा से होना चाहिए। हालांकि, सेवा प्रदान करना स्थापित होना चाहिए और इस प्रकार प्रदान की गई सेवा दूरस्थ नहीं हो सकती।
- (5) क्विड प्रो क्वो के परीक्षण को संतुष्ट करने के लिए, शुल्क का एक अच्छा और पर्याप्त हिस्सा उस उद्देश्य के लिए खर्च किया जाना दिखाया जाना चाहिए जिसके लिए शुल्क लगाया गया है।
- (6) इसके अलावा, हालांकि शुल्क का भुगतान करने वालों को सम्पूर्ण लाभ प्रदान करना आवश्यक नहीं है, लेकिन उन्हें कुछ विशेष लाभ अवश्य प्रदान किया जाना चाहिए, जिसका शुल्क से सीधा और उचित संबंध हो।

शुल्क लगाने और प्रदान की गई सेवाओं के बीच उचित संबंध की आवश्यकता को गुजरात राज्य बनाम अखिल गुजरात प्रवासी बनाम महामंडल, (2004) 5 एससीसी 155 में भी देखा गया था। इसके अलावा, जिंदल स्टेनलेस बनाम हरियाणा, (2006) 7 एससीसी 241 के साथ-साथ जिंदल स्टेनलेस लिमिटेड बनाम हरियाणा राज्य, (2017) 12 एससीसी 1 के मामले में सरसरी टिप्पणियों में कहा गया है कि हालांकि कर में क्विड प्रो क्वो का कोई तत्व नहीं होता है, लेकिन क्विड प्रो क्वो के बिना शुल्क वैध रूप से नहीं लगाया जा सकता है।

पिछले कुछ वर्षों में निस्संदेह यह अंतर कम हुआ है, जैसा कि इस मुद्दे पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए कई फैसलों से स्पष्ट है। हालांकि, माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले ने इस अंतर को और कम कर दिया है।

जलकल विभाग नगर निगम एवं अन्य बनाम प्रदेशीय औद्योगिक एवं निवेश निगम एवं अन्य, सिविल अपील संख्या 6107/2021 के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले ने इस भेद को और कम कर दिया है। उक्त मामले में न्यायालय ने उत्तर प्रदेश जलापूर्ति एवं सीवरेज अधिनियम, 1975 के तहत जल कर की वैधता को बरकरार रखा। उक्त अधिनियम के तहत, कर उत्तर प्रदेश जल संस्थान की जलापूर्ति सेवाओं द्वारा कवर किए गए क्षेत्र पर लगाया गया था। यह तर्क दिया गया कि ऐसा कर वास्तव में शुल्क की प्रकृति का था और इसलिए, राज्य सरकार द्वारा सूची प की प्रविष्टि 49 के तहत लगाया नहीं जा सकता। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि क्विड प्रो क्वो मानदंड का कोई व्यावहारिक या संवैधानिक महत्व नहीं है। कर और शुल्क दोनों में अनिवार्य निकासी के तत्व हो सकते हैं। इस

बात पर भी जोर दिया गया है कि किए गए व्यय और प्रदान की गई सेवा के बीच सटीक सहसंबंध की अब मांग नहीं की जानी चाहिए।

न्यायमूर्ति डीवाई चंद्रचूड़, न्यायमूर्ति विक्रम नाथ और न्यायमूर्ति बीवी नागरत्ना की खंडपीठ ने आगे कहा कि हर कर के मामले में क्विड प्रो क्वो का तत्व आवश्यक रूप से अनुपस्थित नहीं हो सकता है। इसलिए, वर्तमान निर्णय क्विड प्रोटेस्ट को अप्रचलित बनाता है। इसके बजाय, न्यायालय ने लेवी की प्रकृति पर विचार किया और माना कि चूंकि वर्तमान मामले में जल कर उस परिसर पर लगाया जाता है जिसके माध्यम से पानी उपलब्ध कराया जाता है, न कि कब्जेदार के मालिक द्वारा पानी की वास्तविक खपत पर, इसलिए यह भूमि और इमारतों पर एक वैध कर है।

प्रश्न न0 2— हास भत्ता कटौती को प्रदान करने हेतु आयकर अधिनियम में वर्णित शर्तों और सीमाओं का वर्णन कीजिए।

उत्तर— कटौतियों और भत्तों की योजना खधारा 30 से 37)।

(1) भवन से संबंधित व्यय (धारा 30)। धारा 30 के अंतर्गत किराए, दरों, करों के संबंध में निम्नलिखित कटौतियां दी जाती हैं।

व्यवसाय या पेशे के उद्देश्य से उपयोग किए जाने वाले परिसर की मरम्मत और बीमा

(क) परिसर का किराया, यदि करदाता ने उस पर कब्जा कर रखा है किरायेदार के रूप में परिसर और मरम्मत की राशि (चाहे वह वर्तमान हो (या पूंजीगत मरम्मत), यदि उसने मरम्मत की लागत वहन करने का बीड़ा उठाया है;

(ख) वर्तमान मरम्मत की राशि, यदि करदाता ने किरायेदार के अलावा किसी अन्य रूप में परिसर पर कब्जा किया है;

(ग) भूमि राजस्व, स्थानीय दरों या नगरपालिका करों के कारण कोई राशि और

(घ) परिसर की क्षति या विनाश के जोखिम के विरुद्ध बीमा के संबंध में किसी प्रीमियम की राशि।

(2) मशीनरी, संयंत्र और फर्नीचर से संबंधित व्यय (धारा 12)

धारा 31 के अंतर्गत, व्यवसाय या पेशे के प्रयोजन के लिए प्रयुक्त मशीनरी, संयंत्र या फर्नीचर के संबंध में निम्नलिखित व्ययों को कटौती के रूप में अनुमति दी जाती है— (क) चालू मरम्मत के लिए भुगतान की गई राशि, और (ख) क्षति या विनाश के जोखिम के विरुद्ध बीमा के संबंध में भुगतान की गई बीमा प्रीमियम की राशि।

(3) मूल्यह्रास (धारा 32)। मूल्यह्रास का अर्थ आमतौर पर मूल्य में होने वाली हानि या गिरावट से है जो भौतिक वस्तु के उपयोगी जीवन में, शारीरिक टूट-फूट और क्षय के कारण धीरे-धीरे होती है, और आमतौर पर उस हानि या मूल्य में गिरावट तक सीमित होती है जिसे वर्तमान मरम्मत और रखरखाव द्वारा बहाल नहीं किया जा सकता है।

मूल्यह्रास के संबंध में

(i) भवन, मशीनरी, संयंत्र या फर्नीचर, जो मूल परिसंपत्तियां हों;

(ii) तकनीकी जानकारी, पेटेंट, कॉपीराइट, ट्रेडमार्क, लाइसेंस, फ्रेंचाइजी या इसी प्रकार के अन्य कोई व्यवसाय या वाणिज्यिक अधिकार, जो 1 अप्रैल, 1998 को या उसके बाद अर्जित अमूर्त परिसंपत्तियां हों, पूर्णतः या आंशिक रूप से करदाता के स्वामित्व में है और व्यवसाय या पेशे के प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है, तो निम्नलिखित कटौती की अनुमति दी जाएगी—

(i) विद्युत उत्पादन या विद्युत उत्पादन और वितरण में लगे उपक्रम की परिसंपत्तियों के मामले में, निर्धारित को उनकी वास्तविक लागत पर ऐसा प्रतिशत, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है;

(ii) किसी भी परिसंपत्ति के ब्लॉक के मामले में, उस पर ऐसा प्रतिशत उसका लिखित मूल्य, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है धारा 32(1),

मूल्यह्रास का लाभ उठाने के लिए, निम्नलिखित शर्तों को पूरा करना होगा—

(ए) करदाता को परिसंपत्ति का मालिक होना चाहिए। कर निर्धारण वर्ष 1997-98 से मूल्यह्रास के दावे के लिए आंशिक स्वामित्व को भी मान्यता दी गई है।

(ख) परिसंपत्ति का उपयोग व्यवसाय या पेशे के उद्देश्य से किया जाना चाहिए।

(सी) परिसंपत्ति का उपयोग संबंधित पिछले वर्ष के दौरान किया जाना चाहिए। हालांकि, यदि पिछले वर्ष के दौरान अर्जित परिसंपत्ति का उपयोग उस पिछले वर्ष के दौरान 180 दिनों से कम समय के लिए किया जाता है, तो उस मामले में सामान्य मूल्यह्रास का केवल 50% ही स्वीकार्य है।

(घ) जिस परिसंपत्ति के संबंध में मूल्यह्रास का दावा किया गया है, वह परिसंपत्तियों के पात्र वर्गीकरण, अर्थात् भवन, मशीनरी, संयंत्र और फर्नीचर के अंतर्गत आनी चाहिए।

निवेश भत्ता (धारा 32ए)। किसी जहाज या वायुयान या मशीनरी या संयंत्र के संबंध में, जो करदाता के स्वामित्व में है और जिसका उपयोग पूर्णतः उसके द्वारा किए जाने वाले कारोबार के प्रयोजनों के लिए किया जाता है, इस धारा के उपबंधों के अनुसार और उसके अधीन रहते हुए, उस पूर्व वर्ष के संबंध में कटौती की जाएगी जिसमें जहाज या वायुयान का अधिग्रहण किया गया था या मशीनरी या संयंत्र की स्थापना की गई थी या यदि जहाज, वायुयान, मशीनरी या संयंत्र का उपयोग तत्काल बाद के पूर्व वर्ष में किया गया था, तो उस पूर्व वर्ष के संबंध में, निवेश भत्ते के रूप में करदाता को जहाज, वायुयान, मशीनरी या संयंत्र की वास्तविक लागत के पच्चीस प्रतिशत के बराबर राशि की कटौती की जाएगी।

निवेश जमा खाता (धारा 32एबी)। जहां एक करदाता, जिसकी कुल आय में शकारोबार या पेशे से लाभ और प्राप्ति शीर्षक के अंतर्गत कर योग्य आय शामिल है, ऐसी आय में से, —

(क) उसने विकास बैंक में अपने खाते में पूर्व वर्ष की समाप्ति से छह माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व या अपनी आय का विवरण प्रस्तुत करने के पूर्व, जो भी पहले हो, कोई राशि जमा कर दी है या

(ख) पिछले वर्ष के दौरान किसी नए जहाज, नए विमान, नई मशीनरी या संयंत्र के प्रयोजन के लिए खंड

(ग) के अधीन जमा खाते में कोई राशि जमा किए बिना किसी राशि का उपयोग किया, केन्द्रीय सरकार द्वारा तैयार की जाने वाली योजना के अनुसार तथा उसमें निर्दिष्ट प्रयोजनों के लिए, करदाता को निम्नलिखित की कटौती की अनुमति दी जाएगी—

- (i) इस प्रकार जमा की गई राशि या राशि के योग तथा इस प्रकार उपयोग की गई राशि के बराबर राशि या
- (ii) करदाता के लेखापरीक्षित खातों में संगणित व्यवसाय या पेशे के लाभ के बीस प्रतिशत के बराबर राशि विकास छूट (धारा 33)।

प्रश्न न0 3— पुण्यार्थ एवं धार्मिक ट्रस्टों तथा संस्थाओं की आय के कराधान के सम्बन्ध में आयकर अधिनियम के प्रावधानों को संक्षेप में बतलाइए।

उत्तर— पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्यों के लिए धारित सम्पत्ति से प्राप्त आय (Income from property held for charitable or religious purposes)— पुण्यार्थ उद्देश्यों के लिए धारित सम्पत्ति की आय को कर—मुक्त किया गया है। धारा 11 में पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास की आय को कर—मुक्त किया गया है तथा धारा 12 के

प्रश्न 19. उन विभिन्न शास्तियों की विवेचना कीजिए जो आयकर प्राधिकारियों द्वारा आयकर अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अधीन किये गये अपराधों के सम्बन्ध में आरोपित की जा सकती हैं।
उत्तर— शास्तियाँ — आयकर प्राधिकारियों द्वारा आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 271 से धारा 275 तक विभिन्न उपबन्धों के अधीन किये गये अपराधों के सम्बन्ध में विभिन्न शास्तियों को लगाया जा सकता है जो निम्नलिखित प्रकार के हैं —
(1) विवरणी प्रस्तुत करने में और सूचनाओं का अनुपालन करने में
(44)

अधीन पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास को स्वेच्छापूर्वक दिये गये चन्धों से प्राप्त आय का प्रावधान किया गया है। इस उद्देश्य के लिए न्यास तथा अन्य विधिक दायित्व के अन्तर्गत वक्फ तथा हिन्दू वृत्तिदान सम्मिलित रहते हैं।

आयकर अधिनियम की धारा 11 (1) के अनुसार पूर्णतया पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास की भवन सम्पत्ति आय जहाँ तक प्राप्ति के गतवर्ष में ऐसे ही उद्देश्यों के लिए भारत में प्रयोग की गयी है, आयकर से मुक्त होगी। परन्तु यह छूट उस समय भी उपलब्ध होगी जबकि ऐसी आय का सम्पूर्ण भाग पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए तो प्रयोग नहीं किया गया है परन्तु 85 प्रतिशत भाग इस निमित्त प्रयोग किया गया है। संक्षेप में ऐसी छूट के लिए यह जरूरी है कि ऐसी आय का कम से कम 15 प्रतिशत उसी गतवर्ष पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए व्यय किया जाये जिस गत वर्ष में वह आय उपार्जित या उत्पन्न हुई ही और इस प्रकार उस आय का 15 प्रतिशत तक भविष्य में ऐसे पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए संकलित किया जा सकता है।

इसी प्रकार धारा 11 (2) में उपबन्धित है कि यदि किसी पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास ने ऐसी आय का कम से कम 85 प्रतिशत भाग उसी वर्ष में भारत में पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए व्यय नहीं किया है बल्कि भविष्य में ऐसे उद्देश्यों के लिए व्यय करने हेतु संकलित कर लिया गया है इस प्रकार संकलित राशि उस न्यास की गत वर्ष की आय में सम्मिलित नहीं की जायेगी बशर्ते कि निम्न शर्तें पूरी हो रही हो —

(क) उस न्यास ने आयकर अधिकारी को यह सूचना निर्धारित ढंग से दी हो कि संकलित धन किस उद्देश्य के लिए है और कितनी अवधि के लिए है। यह अवधि 10 वर्षों से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(ख) इस संचित धन को सरकारी प्रतिभूतियों, डाकघर में बचत खाते में, बैंक में अथवा सरकारी बैंक में जमा कर दिया जाना चाहिए।

अधिनियम की धारा 11 (4) के अधीन मुक्ति के उद्देश्यों के लिए धार्मिक या पुण्यार्थ न्यास की सम्पत्ति के व्यापारिक संस्थान भी सम्मिलित होते हैं। यहीं पर ऐसे संस्थान की आय के सम्बन्ध में मुक्ति केवल तभी प्राप्त होगी जब संस्थान सम्पत्ति का स्वामित्व धार्मिक या पुण्यार्थ संस्था के अधिकार में हो।

आंशिक रूप से पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास — यदि पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास 2 अप्रैल, 1962 से पूर्व स्थापित हुआ है तो यह छूट तब भी मिलेगी जबकि न्यास की सम्पत्ति आंशिक रूप में पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्यों के लिए हो। ऐसे न्यास की स्थिति में भी यह जरूरी है कि ऐसी आय का कम से कम 85 प्रतिशत भाग पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के निमित्त उस गत वर्ष में व्यय किया जाये जिसमें कि वह उपार्जित या उत्पन्न हुई है तथा शेष राशि भविष्य में पुण्यार्थ या धार्मिक उद्देश्यों के निमित्त उसी प्रकार संकलित की जा सकती है।

पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्यों के लिए स्थापित न्यास को स्वेच्छापूर्वक दिये गये चन्धों से प्राप्त आय (धारा 12)— अधिनियम की धारा 12 के अनुसार पूर्णतया पुण्यार्थ अथवा धार्मिक उद्देश्य के लिए स्थापित किसी न्यास या संस्था की वह आय जो स्वैच्छिक योगदान अर्थात् स्वेच्छापूर्वक दिये गये चन्ध से प्राप्त हुई है, उसे भी ऐसा माना जाता है जैसे वह ऐसे न्यास वा संस्था के द्वारा पूर्णतः पुण्यार्थ धार्मिक उद्देश्य के लिए धारित सम्पत्ति की आय हो।

आयकर आयुक्त बनाम छदागीलाल जैन ट्रस्ट, (1977) 106 आई. टी. आर. 179 के वाद में यह निर्धारित किया गया कि धारा 12 के अधीन प्राप्त आय के प्रयोग के लिए वही समस्त प्रावधान लागू होंगे जो धारा 11 तथा धारा 13 के अधीन न्यास द्वारा धारित सम्पत्ति की आय के सम्बन्ध में दिये गये हैं।

इसके अलावा धारा 12 (1) में कुछ अन्य शर्तें भी दी गयी हैं जिनका पालन करना भी आवश्यक है अन्यथा ये आयकर छूटे प्राप्त नहीं होंगी—

(1) ट्रस्ट की आय प्राप्त करने वाले ट्रस्टी को एक प्रार्थना—पत्र आयकर कमिश्नर को देना चाहिए जिससे कि ट्रस्ट को पंजीकृत किया जा सके। पुराने ट्रस्टों को यह प्रार्थना—पत्र 1 जुलाई, 1973 ई से पूर्व तथा नये ट्रस्टों की स्थापना के 1 वर्ष के अन्दर दे देना चाहिए।

(2) संस्था या ट्रस्ट की कुल आय यदि 25,000 रुपये वार्षिक से अधिक है तो इसके हिसाब—किताब का अंकेक्षण एक चार्टर्ड एकाउण्टेण्ट द्वारा किया जाना चाहिए तथा इससे सम्बन्धित अंकेक्षण रिपोर्ट एवं निर्धारित विवरण ट्रस्ट द्वारा जमा कर देना चाहिए। अधिनियम की धारा 13 (क) राजनैतिक दलों की कुल आय के सम्बन्ध में मुक्ति का प्रावधान करती है। इस प्रावधान के अनुसार, राजनैतिक दलों को प्रतिभूतियों में व्याज या श्रवण सम्पत्ति से आय या अन्य स्रोतों से आय शीर्षक तथा स्वैच्छिक योगदान से प्राप्त आय उसकी सम्पूर्ण आय में से निष्कासित कर दी जायेगी यदि —

(1) राजनैतिक दल ऐसी लेखा पुस्तकें तथा प्रपत्र रखता है जिनसे आयकर अधिकारी उचित रूप से उनकी आय की गणना कर सके,

(2) राजनैतिक दल ऐसे व्यक्तियों का लेखा—जोखा रखता है जिन्होंने 20,000 रुपये से अधिक का स्वैच्छिक योगदान किया है तथा उनका नाम एवं पता भी रखता है.

(3) राजनैतिक दल के लेखों आदि का परीक्षण धारा 288 (2) में परिभाषित लेखाकार के द्वारा किया गया है।

यहाँ पर राजनैतिक दलों से आशय भारतीय नागरिकों की ऐसी संस्था या निकाय से है जो भारतीय निर्वाचन आयोग में पंजीकृत हो।

प्रश्न न० 4— उन विभिन्न शास्तियों की विवेचना कीजिए जो आयकर प्राधिकारियों द्वारा आयकर अधिनियम के विभिन्न उपबन्धों के अधीन किये गये अपराधों के सम्बन्ध में आरोपित की जा सकती हैं।

उत्तर— शास्तियाँ आयकर प्राधिकारियों द्वारा आयकर अधिनियम, 1961 की धारा 271 से धारा 275 तक विभिन्न उपबन्धों के अधीन किये गये उपराधों के सम्बन्ध में विभिन्न शास्तियों को लगाया जा सकता है जो निम्नलिखित प्रकार के हैं—

(1) विवरणी प्रस्तुत करने में और सूचनाओं का अनुपालन करने में विफलता के लिए तथा आय छिपाने के लिए शास्ति (धारा 271)— कर निर्धारण अधिकारी आयकर आयुक्त (अपील) या आयकर आयुक्त इस धारा के अधीन शास्ति आरोपित कर सकता है। इस धारा के अनुसार यदि कर निर्धारण अधिकारी या आयकर आयुक्त (अपील) अथवा आयुक्त अधिनियम के अन्तर्गत की किसी कार्यवाही के अनुक्रम में इस बात से सन्तुष्ट है कि कोई व्यक्ति —

(क) (निरसित)

(ख) धारा 115 बध की उपधारा (2) के अधीन या धारा 115 बड की उपधारा (2) के अधीन या धारा 142 की उपधारा (1) या धारा 143 की उपधारा (2) के अधीन सूचना का पालन करने में असफल रहा है या धारा 142 की उपधारा (2क) के अधीन किये गये निवेश का पालन करने में असफल रहा है, अथवा

(ग) अपनी आय के विवरण को छिपाया है या ऐसी आय की गलत विशिष्टियों दी है, अथवा

(घ) अनुषंगी फायदों की विशिष्टियों को छिपाया है या ऐसे अनुषंगी फायदों की गलत विशिष्टियों दी है तो वह निदेश दे सकेगा कि ऐसा व्यक्ति शास्ति के रूप में निम्नलिखित संदाय करेगा—

(i) (निरसित)

(ii) खण्ड (ख) में उल्लिखित मामलों में उसके द्वारा संदेय कर के अतिरिक्त यदि कोई हो, ऐसी प्रत्येक असफलता के लिए दस हजार रुपये की राशि।

(iii) खण्ड (ग) या खण्ड (घ) में उल्लिखित मामलों में उसके द्वारा संदेय कर के

अतिरिक्त यदि कोई हो, ऐसी राशि उसकी आय या अनुषंगी फायदों की विशिष्टियों छिपाने या ऐसी आय या अनुषंगी फायदों के गलत विशिष्टियों देने के कारण अपवचन का प्रयास की जाने वाली कर राशि से कम नहीं होगी किन्तु उसकी तिगुनी से अधिक नहीं होगी।

(1) लेखा पुस्तिकाएँ, प्रलेख आदि रखने, अनुरक्षित या पोषित करने में विफलता पर शास्ति (धारा 271—क)— कर निर्धारण अधिकारी अथवा आयकर आयुक्त (अपील) इस प्रकार की शास्ति आरोपित कर सकते हैं यदि कोई व्यक्ति ऐसी कोई लेखा पुस्तिका और अन्य प्रलेख जिसकी कि धारा 44—कक में अपेक्षा की गयी है अथवा जिनकी कि उस धारा के अधीन बनाये गये नियमों के अन्तर्गत अपेक्षा की गई है. रखने अथवा पोषित करने में चूक करता है तो उस पर इस धारा के अन्तर्गत शास्ति आरोपित की जा सकती है।

इस मामले में 25,000 रुपये शास्ति के रूप में आरोपित किया जा सकता है। धारा 273 से स्पष्ट हो जाता है कि यह सिद्ध करने का भार निर्धारिती पर है कि धारा 44 कुक के अनुसार पुस्तिका आदि न रखने का युक्तियुक्त कारण था और यदि यह इसे ऐसा सिद्ध कर देता है तो इस धारा में शास्ति आरोपित नहीं की जायेगी।

(2—क) अन्तर्राष्ट्रीय संव्यवहार के सम्बन्ध में सूचना और दस्तावेज रखने में चूक के लिए शास्ति (धारा 271 कक)— यह नवीन धारा है जिसे वित्त अधिनियम 2001 द्वारा 01.04.2000 से जोड़ा गया है। इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय संव्यवहार करने के सम्बन्ध में सूचना और दस्तावेज रखने में चूक के लिए शास्ति आरोपित करने का उपबन्ध बनाया गया है। यदि कोई व्यक्ति धारा 32—1 (1) या धारा 92—घ (2) द्वारा अपेक्षित सूचना और दस्तावेज रखने में चूक करता है तो इस व्यक्ति द्वारा किये गये प्रत्येक अन्तर्राष्ट्रीय संव्यवहार के मूल्य के 2 प्रतिशत के समतुल्य शास्ति के रूप में आरोपित की जायेगी। शास्ति बन निर्धारण अधिकारी अथवा आयुक्त (अपील) आरोपित कर सकता है।

(2-क क) लेखा संपरीक्षण कराने में चूक (धारा 271-ख)- यदि कोई व्यक्ति किसी कर निर्धारण वर्ष के सुसंगत गत वर्ष के सम्बन्ध में धारा 44-क ख द्वारा अपेक्षित लेख का संपरीक्षण कराने और ऐसे संपरीक्षण की रिपोर्ट प्राप्त करने में या धारा 139 (1) में दाखिल विवरणी या धारा 142 (1)) में तामील सूचना के अनुपालन में दाखिल विवरणी के साथ ऐसे संपरीक्षण की रिपोर्ट संलग्न करने में चूक करता है तो कर-निवारण अधिकारी धारा 271-ख के अन्तर्गत शास्ति आरोपित कर सकता है। शास्ति की राशि गतवर्ष में पेशे से सकल प्राप्ति के आधे प्रतिशत या व्यापार से सकल प्राप्ति या व्यापार के कुल विक्रय या आवर्त (टर्न ओवर) के अधीन प्रतिशत या एक लाख रुपये दोनों में जो कम हो, होगी।

स्रोत पर कर की कटौती करने में चूक पर शास्ति (धारा 271-ग)- धारा 192 से लेकर 206 ख के अन्तर्गत अपेक्षित स्रोत पर कर की कटौती न करने पर अथवा धारा 115- (2) या 194-ख के द्वितीय परन्तुक द्वारा अपेक्षित पूर्ण कर या उसके किसी भाग की अदायगी नहीं करने पर चूक करने वाले व्यक्ति पर उस कर की रकम के बराबर शास्ति आरोपित की जा सकती है जिसकी स्रोत पर कटौती करने में अथवा अदायगी करने में उसने चूक किया है। शास्ति संयुक्त आयुक्त द्वारा आरोपित की जायेगी।

(3) प्रश्नों के उत्तर देने, विवरण पत्र पर हस्ताक्षर करने, निरीक्षण अनुज्ञात करने में चूक करने पर शास्ति (धारा 272-क)- यदि कोई व्यक्ति अपने कर निर्धारण के सम्बन्ध में किसी तथ्य को ठीक-ठीक बताने के लिए विधि के अन्तर्गत बा है परन्तु यह आयकर प्राधिकारी द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने से इनकार करता है या किसी ऐसे कथन पर हस्ताक्षर करने से इनकार करता है जो उसके द्वारा इस अधिनियम को अन्तर्गत को किसी कार्यवाही के अनागत दिया गया है जिस पर हस्ताक्षर करने के लिए उसे विधि के अन्तर्गत आयकर प्राधिकारी द्वारा बाध्य किया जा सकता है अथवा जिसे धारा 131(1) के अन्तर्गत सम्मन दिया गया है कि उल्लिखित तिथि को उल्लिखित स्थान पर उपस्थित होकर साक्ष्य प्रस्तुत करे या अपने लेखे या अना प्रपत्र प्रस्तुत करें परन्तु वह ऐसा नहीं करता है तो प्रत्येक चूक के लिए उस पर 10,000 रुपये की शास्ति आरोपित की जा सकती है।

शास्ति को कम करने या माफ करने की शक्ति (धारा 273-क)- आयुक्त आय का ब्यौरा छिपाने या असत्य ब्यौरा प्रस्तुत करने के लिए आरोपित शक्ति की रकम को कम कर सकता है या माफ कर सकता है यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जाता है। कि (क) निर्धारिती ने कर निर्धारण द्वारा छिपायी गयी आय का पता लगाने से पूर्व अथवा ऐसी आय के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये ब्योरे की अपूर्णता का कर-निर्धारण अधिकारी द्वारा पता लगाये जाने के पूर्व अपनी इच्छा और सद भावना सहित अपनी आय का ठीक-ठीक और पूरा ब्यौरा प्रकट कर दिया,

(ख) निर्धारिती ने ऐसी जाँच में सहयोग प्रदान किया है जो कि उसकी आय को कर-निर्धारण से सम्बन्धित है, तथा

(ग) इस अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये किसी आदेश पर कर या ब्याज की अदायगी की अपेक्षा की गई है उसे या तो अदा कर दिया गया है या अदा करने के लिए सन्तोषजनक प्रबन्ध कर लिया है।

एक बाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि आयुक्त की इस शक्ति के साथ न्याय करने का उसका कर्तव्य भी निहित है। यदि निर्धारिती ने इसके सभी सांविधिक उपबन्धों का पालन कर दिया है तो आयुक्त का यह सांविधिक आभार या कर्तव्य है कि यह अपनी इस शक्ति का प्रयोग निर्धारिती के पक्ष में करें।

शास्ति आरोपित करने की प्रक्रिया (धारा 274)- इस अध्याय (धारा 271-273) के अन्तर्गत शास्ति आरोपित करने के पूर्व निर्धारिती की सुनवाई करना या उसे सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर प्रदान करना आवश्यक है। यदि शास्ति 10,000 से अधिक है तो शास्ति का आदेश आयकर अधिकारी द्वारा और यदि शास्ति 20,000 रुपये से अधिक है तो सहायक आयुक्त अथवा उपायुक्त द्वारा बिना संयुक्त आयुक्त के पूर्ववर्ती अनुमोदन के पारित नहीं किया जा सकता है।

यदि निर्धारिती को सुनवाई का अवसर प्रदान नहीं किया जाता है तो शास्ति आरोपित करने के निमित्त पारित आदेश अवैध होगा।

प्रश्न न0 5- धनकर अधिनियम के अन्तर्गत धनकर प्राधिकारी कौन है? धनकर प्राधिकारियों के क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ बतलाइये।

उत्तर-धनकर प्राधिकारी (धारायें 8-13 क तथा 35, 36, और 37)- धारा 8 धनकर प्राधिकारियों और उनके क्षेत्राधिकार के सम्बन्ध में उपबन्ध करती हैं। इसके अनुसार आयकर अधिनियम की धारा 116 में उल्लिखित आयकर प्राधिकारी ही धन-कर अधिनियम के प्रयोजन हेतु धन कर प्राधिकारी होंगे और ये प्राधिकारी ही धनकर अधिनियम में उल्लिखित प्राधिकारियों के कार्यों का सम्पादन और शक्तियों का प्रयोग अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में करेंगे और इस निमित्त उनका क्षेत्राधिकार धनकर अधिनियम के अन्तर्गत वहीं होगा जो उन्हें आयकर अधिनियम के अन्तर्गत धारा 120 के अन्तर्गत दिये गये आदेश या निदेश द्वारा या आयकर अधिनियम की किसी अन्य धारा के अन्तर्गत गप्त है। धारा 8 के स्पष्टीकरण द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि आयकर अधिनियम के अन्तर्गत आयकर के लिए प्रभार्य आय न रखने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध में उस प्राधिकारी को क्षेत्राधिकार प्राप्त होगा जिसे उस क्षेत्र के सम्बन्ध में क्षेत्राधिकार प्राप्त है जिस क्षेत्र में वह व्यक्ति निवास करता है।

इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए प्राधिकारियों की निम्नलिखित श्रेणियाँ हैं -

(क) प्रत्यक्ष करों का केन्द्रीय बोर्ड,

(ख) आयकर प्रमुख निदेशक अथवा आयकर मुख्य आयुक्त,

(ग) आयकर निदेशक अथवा आयकर आयुक्त अथवा आयकर आयुक्त (अपील)

(घ) आयकर अतिरिक्त निदेशक अथवा आयकर अतिरिक्त आयुक्त अथवा आयकर अतिरिक्त आयुक्त (अपील)

(ङ) आयकर संयुक्त निदेशक अथवा आयकर संयुक्त आयुक्त अथवा उपायुक्त

(च) आयकर उपनिदेशक अथवा आयकर उपायुक्त अथवा आयकर उपायुक्त (अपील)

(छ) आयकर सहायक निदेशक अथवा आयकर सहायक आयुक्त

(ज) आयकार-अधिकारी

(झ) कर-वसूली अधिकारी

(ञ) आयकार-निरीक्षक ।

(2) धनकार प्राधिकारियों को क्षेत्राधिकारी (धारा 8)— बोर्ड को धनकार प्राधिकारियों को शक्ति और कार्य देने की शक्ति प्राप्त है। धनकर प्राधिकारी उन शक्तियों का प्रयोग करेंगे और उन कार्यों को सम्पन्न करेंगे जो बोर्ड द्वारा उन्हें दी जायेगी। बोर्ड किसी अन्य प्राधिकारी को अपने सहायक प्राधिकारियों को शक्ति और कर्तव्यों के सम्पादन हेतु निदेश देने के लिये प्राधिकृत कर सकता है। बोर्ड प्रमुख निर्देशक अथवा निदेशक को किसी भी धन-कर प्राधिकृत कर सकता है। बोर्ड प्रमुख निदेशक अथ. निदेशक को किसी भी धन-कर प्राधिकारी के कार्यों को सम्पादित करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है। बोर्ड प्रमुख निदेशक अथवा मुख्य आयुक्त अथवा आयुक्त का वह शक्ति प्रदान कर सकता है कि वह उप-आयुक्त को कर-निर्धारण अधिकारी को प्रदान की गई शक्तियों और कार्यों को करने का लिखित आदेश सके।

कार्य एवं शक्तियाँ —

(1) खोज करने, साक्ष्य प्रस्तुतीकरण आदि से सम्बन्धित शक्ति (धारा 37)1

(2) सूचना आदि माँगने की शक्ति (धारा 38)

(3) कर-निर्धारण से सम्बन्धित शक्तियाँ

(4) भूल सुधार की शक्ति (धारा 35)

(5) कर शस्ति आदि की वसूली और संकलन से सम्बन्धित शक्ति

(6) वापसी और समायोजन की शक्तियाँ और कार्य

(7) शास्ति आरोपित करने की शक्ति (धारा 18 और 18-क)

(8) तलाशी और अधिग्रहण करने की शक्ति (धारा 37 — क)

प्रश्न न0 6— बिक्री कर से आप क्या समझते हैं? केन्द्रीय बिक्री कर की मुख्य विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन करें।

उत्तर— बिक्री कर (Sales Tax)— बिक्री कर विक्रय पर लगने वाला कर होता है। इस कर का प्रारम्भ 1935 से अंग्रेजों के काल में ही शुरू हुआ था जो स्वतन्त्रता के पश्चात् भी लागू रहा। परन्तु बाद में चलकर संविधान के अनुच्छेद 269 में संशोधन करके राज्यों के बाहर क्रय-विक्रय, भारतीय सीमा के अन्तर्गत आयात-निर्यात, अन्तर्राज्यीय व्यापार के दौरान क्रय-विक्रय तथा संसद द्वारा विशिष्ट महत्व के घोषित किये गये माल के बिक्री के सम्बन्ध में राज्यों के कर के अधिकार को सीमित कर दिया गया। केन्द्रीय सरकार को इस तरह की बिक्री पर कर आरोपित करने का अधिकार प्रदान किया गया जिन पर राज्य सरकारों के लिए रोक लगा दी गयी थी।

इस प्रकार के करों के निर्धारण हेतु बिक्री कर अधिनियम, 1956 पारित किया गया।

केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं—

(1) उद्देश्य— केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम का प्रमुख उद्देश्य बिक्री कर निर्धारण सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना है चाहे क्रय-विक्रय अन्तर्राज्यीय व्यापार द्वारा किया जाय या भारत में आयात-निर्यात द्वारा किया जाय। इसके अतिरिक्त राज्यों के बिक्री कर कानून पर प्रतिबन्ध व शर्तों को भी लगाया जाना है।

(2) कर दायित्व का आरोपण— केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम ऐसे प्रत्येक व्यापारी पर कर दायित्व का आरोपण करता है जिनके माल की अन्तर्राज्यीय बिक्री 81 हो, यहाँ बिक्री की मात्रा से कोई लेना-देना नहीं है। यहाँ उस व्यापारी को उस अन्तर्राज्यीय माल की बिक्री पर भी कर देना होता है जिस पर उस राज्य में कर नहीं लिख जोरपा केन्द्रीय। टेक कर अधिनियम के अन्तर्गत बिक्री कर के आरोपण का दायित्व मले ही केन्द्रीय सरकार पर हो पर कर संग्रह करने का दायित्व उस राज्य सरकार पर होगा जिस राज्य से माल बाहर जा रहा हो।

(3) विशेष महत्व की वस्तुएँ— केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम की धारा 14 यह प्रावधानित करती है कि विशेष महत्व की वस्तुओं के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को यह अधिकार होगा कि वह उनके लिए राजकीय कर की विशेष दरे निश्चित कर सकती है परन्तु यह वरें 4: से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। ऐसी विशेष वस्तुएँ कौन-कौन सी हैं उनकी सूची में परिवर्तन करने का अधिकार दोवल केन्द्रीय सरकार को होगा।

(4) केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम के अन्तर्गत जो कर वसूली राज्य सरकार करती है वह भारत की संचित निधि में जमा की जायेगी।

(5) केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम, 1956 के अनुसार कर दायित्व एवं वसूली सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को प्राप्त है। यहीं तक कि अधिनियम का प्रशासन दायित्व (मदवितबमउमदज) भी राज्य के बिक्री कर प्रशासक ही करते हैं।

अधिनियम की धारा 2 (B) में दी गयी परिभाषा के अनुसार व्यापारी से तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जो वस्तुओं के क्रय-विक्रय का व्यापार करता है और उसमें यदि सरकार भी इस तरह का व्यवसाय करती है तो वह भी सम्मिलित है। व्यापारी दो प्रकार के होते हैं—

(1) पंजीकृत व्यापारी

(2) अपंजीकृत व्यापारी

केन्द्रीय सरकार की बिक्री कर की दरें उपरोक्त दोनों प्रकार के व्यापारी के लिए भिन्न-भिन्न होती है।

प्रश्न न0 7— केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम में व्यापारी के पंजीकरण की प्रक्रिया क्या है। पंजीकरण के लाभों का उल्लेख करें तथा पंजीकरण को किन परिस्थितियों में निरस्त किया जा सकता है?

उत्तर— व्यापारी के पंजीकरण की प्रक्रिया केन्द्रीय बिक्री कर रजिस्ट्रेशन एवं टर्न ओवर अधिनियम, 1957 के नियम 3 से 10 में व्यापारी के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया व प्रमाण पत्र जारी करने की प्रक्रिया का उल्लेख किया गया है जिसके अनुसार व्यापारी द्वारा फार्म 'A' में पंजीकरण की प्रक्रिया के आरम्भ के लिए प्रार्थना-पत्र विज्ञापित अधिकारी (Notified Authority) को दिया जायेगा। जिस पर व्यापार मालिक का हस्ताक्षर होगा जबकि फर्म के मामले में किसी एक साझेदार द्वारा संयुक्त हिन्दु परिवार में मामले में कर्ता द्वारा, कम्पनी के मामले में कम्पनी निदेशक के द्वारा या प्रमुख अधिकारी द्वारा, सरकार के मामले में सरकार द्वारा प्राधिकृत अधिकारी द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए।

जहां किसी व्यापारी का व्यापार एक से ज्यादा जगहों पर हैं तो व्यापारी द्वारा एक ही प्रार्थना पत्र सभी स्थानों पर प्रेषित किया जा सकता है उसे अपने प्रार्थना-पत्र में व्यापार के मुख्य स्थल का उल्लेख अवश्य करना होता है और प्रार्थना-पत्र उस मुख्य स्थान के विज्ञापित अधिकारी को देना पड़ेगा। यदि व्यापारी द्वारा राज्य सेल्स टैक्स अधिनियम के लिए व्यापार का मुख्य स्थल किसी अन्य स्थान को निश्चित कर दिया जाता है जो केन्द्रीय सेल्स टैक्स के लिए भी यही मुख्य स्थल रखना पड़ेगा साथ ही उसे अपने पंजीकरण प्रार्थना-पत्र में उस स्थान के अन्दर जितने भी स्थानों पर व्यापार कर रहा हो सभी के लिए प्रार्थना-पत्र देना पड़ेगा।

केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रार्थना पत्र के सन्दर्भ में निर्देशित किया गया है कि —

- (1) व्यापारी जो राज्य के एक स्थान पर व्यापार करता है उसे विज्ञापित अधिकारी को प्रार्थना-पत्र देना होगा जो राज्य के सामान्य बिक्री कर के पंजीकरण के लिए प्राधिकृत हो।
- (2) व्यापारी जो एक से अधिक स्थानों पर व्यापार करता है ऐसे व्यापारी द्वारा उस प्रमुख स्थल (जिसका चुनाव उसे स्वयं करना है) के विज्ञापित अधिकारी को प्रार्थना-पत्र देगा जो किसी राज्य के सामान्य बिक्री कर के पंजीकरण के लिए प्राधिकृत किया गया हो।
- (3) ऐसे व्यापारी जिसके व्यापार का कोई निश्चित स्थान न हो, ऐसा व्यापारी उस राज्य के सामान्य सेल्स टैक्स विधि के अन्तर्गत नियुक्त मुख्य अधिकारी चाहे वह कमिश्नर, लेक्चरर या किसी अन्य नाम से जाना जाता हो के समक्ष प्रार्थना पत्र देगा।

अधिनियम की धारा 7 (1) के अन्तर्गत ऐसे व्यापारी जिन्हें पंजीकरण करवाना अनिवार्य है— वह पंजीकरण को प्रार्थना-पत्र उस दिन से जब कि वह केन्द्रीय बिक्री कर का देनदार हो गया हैं के 30 दिन बीतने के पूर्व देगा। परन्तु 30 दिन बीतने के पश्चात् भी उचित करण प्रस्तुत करने पर पंजीकरण के लिए प्रार्थना-पत्र दे सकता हैं और प्रमाण-पत्र ले सकता है जो प्रार्थना पत्र की तारीख से मिलेगा। ऐसा व्यापारी जो समय के अन्दर पंजीकरण न कराके उसे धारा 10 अ अ में अपराधी माना जायेगा तथा उसे 6 माह तक कारावास या अर्थदण्ड या दोनों से दण्डित किया जा सकेगा।

पंजीकरण के लाभ पंजीकरण कराने से व्यापारी को धारा 8 (1) के अन्तर्गत प्राविधित सभी रियायतें प्राप्त होंगी।

पंजीकरण का निरस्तीकरण एक व्यापारी के पंजीयन का निरस्तीकरण हो सकता हैं। यह निरस्तीकरण स्वतः भी किया जा सकता है एवं व्यापारी द्वारा निवेदन करने पर भी निरस्तीकरण किया जा सकता है।

अधिकारी द्वारा निरस्तीकरण निम्नलिखित कारणों से किये जा सकते हैं—

- (1) व्यापारी द्वारा व्यापार करना छोड़ दिया गया है।
- (2) व्यापारी स्वयं अस्तित्व में न हो अर्थात् मर गया है।
- (3) व्यापारी ने प्रतिभूति नहीं दाखिल किया या प्रतिभूति देने में कमी रह गयी हो।
- (4) जहाँ पर व्यापारी कोई टैक्स या जुर्माना अदा करने में विफल रहा है।
- (5) जहाँ व्यापारी ने स्वयं अपने को केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम में पंजीकृत कराया है लेकिन वह अपने राज्य के बिक्री कर के अदायगी की जिम्मेदारी से मुक्त हो चुका है।
- (6) अन्य कोई कार्य जो उचित हो।

प्रश्न न0 8— कब कोई क्रय-विक्रय अन्तर्राज्यीय व्यापार के अनुक्रम में माना जाता हैं।

उत्तर— केन्द्रीय विक्रय कर अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत केन्द्रीय बिक्री कर केवल उसी बिक्री पर लगाया जायेगा जो एक राज्य से दूसरे राज्य में माल के विक्रय से हुई हो अर्थात् अन्तर्राज्यीय बिक्री पर ही यह कर लगाया जाता है अन्य प्रकार की बिक्री पर नहीं।

केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम की धारा 3 के प्रावधानों के अनुसार निम्न दशाओं में कोई बिक्री अन्तर्राज्यीय मानी जायेगी — यदि बिक्री के दौरान माल का एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजा जाना है तो वस्तु की बिक्री तथा माल का एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजा जाना दोनों क्रियायें एक साथ ही सम्पन्न होगी। अन्तर्राज्यीय बिक्री केवल उस स्थिति में मानी जाती है जब माल का लदान और बिक्री प्रसंविदे के अन्तर्गत एक राज्य से प्रारम्भ होती हैं तथा दूसरे राज्य में उसकी सुपुर्दगी ली जाती है।

जैसे— यदि उत्तर प्रदेश से कोई व्यापारी गुजरात में जाकर माल का क्रय करता है। तत्पश्चात् माल को उत्तर प्रदेश में भेजता है तो यह अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं कहलायेगी। यद्यपि यहाँ माल का लदा एक राज्य से दूसरे राज्य में हुआ है, परन्तु इस प्रकार लदान बिक्री के प्रसंविदे के बाद हुआ है अतः यह अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं कहलाती है।

अतः अन्तर्राज्यीय बिक्री तभी मानी जायेगी जब कि किसी प्रसंविदे के अन्तर्गत माल का लदान एक राज्य से दूसरे राज्य में किया गया हो अर्थात् माल का लदान किसी बिक्री संविदे के अनुसार एक राज्य से होता है तथा उसकी सुपुर्दगी किसी दूसरे राज्य में की जाती है।

निम्नलिखित दशाओं में कोई माल एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजने पर भी अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं मानी जायेगी —

(1) **स्वयं की लदान**— यदि माल का लदान बिक्री की सुपुर्दगी के बाद किया गया है तो वह बिक्री अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं कही जायेगी।

(2) **बिक्री के पश्चात् लदान**— यदि किसी माल का लदान बिक्री के सुपुर्दगी के बाद किया गया है तो भी वह बिक्री अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं मानी जायेगी भले ही उसका लदान एक राज्य से दूसरे राज्य में किया गया है।

(3) **विभिन्न राज्यों से माल का गुजरना**— यदि माल का लदान बिक्री के बाद कई राज्यों से होकर जाता है किन्तु उसकी सुपुर्दगी उसी राज्य के किसी शहर में दी जाती है तब भी वह बिक्री अन्तर्राज्यीय बिक्री नहीं मानी जायेगी।

केन्द्रीय बिक्री कर अधिनियम की धारा 3 की व्याख्या (1) के अनुसार — यदि साल के एक राजा से दूसरे राज्य के लिए सदान के बाद किन्तु क्रेता द्वारा उसकी सुपुर्दगी लेने से पहले अर्थात् माल के रास्ते में होने के समय अनुबन्ध किया गया है तो ऐली बिक्री अन्तर्राज्यीय बिक्री मानी जायेगी। जैसे कि मोनू मध्य प्रदेश से 8 दिसम्बर, 2016 को धोई साल फैजाबाद में आवेश को भेजता है और वह माल 20 दिसम्बर 2016 का फैजाबाद में आता है किन्तु दिसम्बर से 20 दिसम्बर के बीच किया गया अनुबन्ध अनारोद्धीय बिक्री नाना जायेगा। इस प्रकार की बिक्री प्रलेख के हस्तातरण द्वारा अर्थात् आर० आठ को सीप कर की जानी चाहिए।

उपरोक्त दशा में माल का लदान उस समय माना जायेगा जब कि माल नालवाहक को या अन्य किसी निक्षेप गृहीता को सौंपा दिया जाता है और उसकी सुपुर्दगी उस समय मानी जायेगी जब कि उसकी सुपुर्दगी क्रेता ने उस मालवाहक या निहशेष गृहीता से ले ली हो।

किसी माल का क्रय-विक्रय उस दशा में राज्य के अन्दर ही माना जायेगा, जबकि माल के क्रेता व विक्रेता निश्चित माल की दण में बिक्री की सविदा के समय उसी राज्य में हो तथा उस दशा में भी क्रय विक्रय राज्य के अन्दर ही माना जायेगा जबकि बोरा व विक्रेता निश्चित माल एवं भविष्य के सौदे की में माल को निश्चित करते समय उस राज्य में हो। अत इन परिस्थितियों में माल का क्रय विक्रय उसी राज्य में माना जायेगा और इस प्रकार की बिक्री पर कर लगाना एवं उसे वसूल करने का अधिकार भी उस राज्य को होगा जिस राज्य में ऐसी बिक्री की गयी है।

प्रश्न न० 9— सेवा कर से आप क्या समझते हैं? सेवा कर विधि के मुख्य प्रावधानों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— सेवा कर (Service Tax)— सेवा क्षेत्रका भारतीय अर्थव्यवस्था में जरू पर्याश रूप से बढ़ गया है तथा भारत में सकल घरेलू उत्पाद में सेवा का हिस्सा कृषि तथा उद्योग से अधिक हो गया है तथा इस प्रकार इनमें भारतीय अर्थव्यवस्था की मूलभूत संरचना को बदल दिया है। सेवा क्षेत्र का भारत में सकल घरेलू उत्पाद में 70% के लगभग योगदान है। सेवा आर्थिक गतिविधियों में विविध प्रकार का आयाम रखती है। आजकल सेवाएँ बृहत् प्रकार की गतिविधियों को सम्मिलित करती है तथा उनमें से ज्यादातर व्यक्ति केन्द्रित न होकर संस्था केन्द्रित है। उदाहरण के लिए बैंकिंग, बीमा तथा दूरसंचार क्षेत्र को बड़ी संस्था द्वारा संभाला जाता है तथा यह अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। देश के सकल घरेलू उत्पाद का बढ़ा भाग सेवा क्षेत्र से है। राजस्व में इसका योगदान महत्वहीन है। आय में वृद्धि के साथ इस प्रकार की आय का बढ़ा हुआ अनुपात सेवाओं के उपभोग जैसे मनोरंजन, यात्रा तथा पर्यटन इत्यादि पर व्यय किया जाता है जबकि उत्पादित तथा उपभोग की गयी वस्तुओं पर केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकार द्वारा बहुशुल्क जैसे केन्द्रीय उत्पाद कर, मूल्य संवर्द्धन कर, बिक्री कर, प्रवेश शुल्क तथा चुगी इत्यादि लगाये जाते हैं। ज्यादातर सेवाओं पर कर प्रत्यक्ष रूप से नहीं लगाया जाता है। इस प्रकार सेवाओं का उत्पादन तथा उपभोग जो कि अर्थव्यवस्था का बकता माग है, कराधान के जरिये ज्यादा योगदान नहीं देता है। सेवा क्षेत्र पर कर लगाना कराधान में तटस्थ तथा क्षितिज समता को सुनिश्चित करने के लिए अनिवार्य नहीं था परन्तु इससे कर आधार बढ़ता है तथा कर व्यवस्था की राजस्व उत्पादकता को सुधारता है।

सेवा पर कराधान लगाने का अत्यधिक महत्वपूर्ण कारण दोनों केन्द्र तथा राज्य स्तर पर घरेलू व्यापार करो का सामंजस्य व्यवस्था को लागू करने की आवश्यकता है, क्योंकि अब यह महसूस कि कराधान के उद्देश्य के लिए सेवाओं तथा वस्तुओं के उपयोग की एक जैसा मानना चाहिए। इस पर विचार करते हुए एक दशक से अधिक पूर्व भारत में सेवा कर लगाया गया है।

भारत में सेवा कर (Service Tax in India)— डा. राजा जे. चौलेय्या की अध्यक्षता वाली कर सुधार समिति ने भारत में सेवा क्षेत्र की राजस्व योग्यता की पहचान की तथा चयनित सेवाओं पर “सेवा कर को लगाने की अनुशंसा की।”

इन अनुशंसा पर आधारित वर्ष 1994-95 के लिए अपनी बजट व्यक्तव्य में तब के केन्द्रीय वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह ने सेवा कर की नयी अवधारणा को जन्म दिया तथा निम्न व्यक्तव्य दिया।

“सेवाओं की कराधान से मुक्ति देने के लिए कोई ठोस कारण नहीं है जब कि वस्तुओं पर कर लगाया जाता है तथा कई देश कर उद्देश्य के लिए सेवाओं तथा वस्तुओं को एक जैसा मानते हैं। इस प्रकार में दूरभाष अजीवन बीमा तथा स्टॉक दलाल की सेवाने पर कर लगाकर एक इल्का प्रयत्न करता है।”

सेवा की प्रस्तुति संविधान की शेष प्रविष्टि के अन्तर्गत की गयी तथा इस प्रकार, इसे पृथक विनियमन के अन्तर्गत नहीं लाया जा सका। इस प्रकार सेवा कर को वित्त अधिनियम, 1994 के अध्याय V के अन्तर्गत लगाया गया। मूल्य के अनुसार 5% स्वाभाविक दर के साथ निम्न 3 सेवाएं पहली बार लाया गया था।

1. टेलीफोन सुविधा
2. साल दलाल
3. गैर-जीवन बीमा

बाद के वित्त अधिनियम ने सेवा कर के उद्देश्य के लिए ज्यादा से ज्यादा सेवा को जोड़ा। इस प्रकार आज सेवा कर के लिए 115 सेवाएं प्रभारयोग्य है।

संवैधानिक भूमिका (Constitutional Background)—भारत के संविधान के अनुच्छेद 265 के अनुसार, कानून के अधिकार के बिना केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा किसी भी प्रकृति का कर को लगाया तथा एकत्रित नहीं किया जा सकता है। संविधान द्वारा कानून बनाने तथा कर तथा शुल्क को लगाने का अधिकार अनुच्छेद 246 के जरिये दिया गया है। अनुच्छेद 246 के अनुसार कानून को संसद अथवा राज्य विधायी द्वारा बनाया जा सकता है यदि इस प्रकार का अधिकार भारत के संविधान द्वारा दिया गया है।

भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची इस प्रकार का अधिकार निम्न तीन सूचियों में दिया गया है

सूची I- संघ (केन्द्रीय) सूची

सूची II- राज्य सूची

सूची III- समवर्ती सूची

प्रत्येक अनुसूची में निम्न कई मामलों की गिनाया गया है। सूची में प्रत्येक मामले को प्रविष्टि के नाम से जाना जाता है।

सूची I अर्थात् केन्द्रीय सूची में गिनाये गये मामले (प्रविष्टि) के संबंध में, संसद को उस प्रविष्टि के संबंध में कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है। दूसरी तरफ, सूची II में गिनाये गये मामले के संबंध में, किसी राज्य की विधान सभा को इस प्रकार की प्रविष्टि के संबंध में राज्य अथवा किसी भाग के लिए कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है।

उपरोक्त दो सूचियों के अतिरिक्त, एक तृतीय अनुसूची है जिसे समवर्ती अनुसूची के नाम से जाना जाता है। सूची II अर्थात् समवर्ती सूची में किसी मामले के संबंध में कानून बनाने का अधिकार संसद अथवा एक राज्य की विधान सभा को है।

संघ सूची की प्रविष्टि 97 शेष सूची है तथा केन्द्र सरकार को सूची II (राज्य सूची) अथवा सूची (समवर्ती सूची) में गिनाये नहीं जाये किसी मामले पर कर लगाने का अधिकार देता है। 1994 में सेवा कर को सूची I की प्रविष्टि 97 के अन्तर्गत प्रदान अधिकार के अन्तर्गत प्रदान अधिकार के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार द्वारा सेवा कर लगाया गया।

सरकार ने संविधान (88 वीं संशोधन अधिनियम, 2003) को पारित किया जो संविधान में अनुच्छेद 268 A के जरिये केन्द्र द्वारा सेवा कर को औपचारिक रूप से लगाने को प्रदान करता है। उक्त अनुच्छेद को नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया है।

“268 A(1) सेवाओं पर कर को भारत सरकार द्वारा लगाया जायेगा तथा पत प्रकार के कर को उपबंध (2) में निर्धारित तरीके में भारत सरकार तथा राज्य द्वारा एकत्रित तथा विनियोजित किया जायेगा।

(2) उपबंध (1) के प्रावधान के अनुसार इस प्रकार लगाये गये किसी कर के वित्तीय वर्ष में उगाही को कानून द्वारा संसद द्वारा फार्मूला के अनुसार एकत्रण तथा विनियोजन के सिद्धान्त के अनुसार —

(a) भारत सरकार तथा राज्य द्वारा एकत्रित किया जायेगा :

(b) भारत सरकार तथा राज्यों द्वारा विनियोजित किया जाएगा,

संग्रह तथा विशेष उद्देश्य से प्रयोग की नीति के अनुसार जो संसद द्वारा तथा कानून प्रारित किया हो।”

प्रश्न नं० 10— निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर— (1) कर निर्धारण अधिकारी और कर वसूली अधिकारी—कर निर्धारण अधिकारी (धारा 2 (7-क)) धारा 2 के अन्तर्गत एक नवीन उपधारा (7-क) प्रत्यक्ष विधियाँ (संशोधन) अधिनियम, 1987 द्वारा 01-04 1988 से जोड़ी गयी हैं। इसके अनुसार कर निर्धारण अधिकारी से तात्पर्य ऐसे सहायक आयुक्त या उपायुक्त या सहायक निदेशक या उपनिदेशक या आयकर अधिकारी से हैं, जिसे धारा 120 की उपधारा (1) या धारा 120 की उपधारा (2) के अन्तर्गत पारित आदेश या निर्देश द्वारा सुसंगत क्षेत्राधिकार दिया गया है। शकर निर्धारण अधिकारी के अन्तर्गत ऐसा अतिरिक्त निदेशक संयुक्त आयुक्त अथवा संयुक्त निदेशक सम्मिलित है, जिसे इस अधिनियम में कर निर्धारण अधिकारी को दिये गये अधिकारी और कार्यों को करने के लिए धारा 120 (4) (ख) के अन्तर्गत निर्देश दिया गया है।

कर वसूली अधिकारी (धारा 2 (44)) — कर वसूली अधिकारी से तात्पर्य ऐसे आयकर अधिकारी से हैं जिसे मुख्य आयुक्त अथवा आयुक्त ने साधारण या विशिष्ट लिखित आदेश द्वारा कर वसूली अधिकारी की शक्तियों का प्रयोग करने का प्राधिकार दिया है।

(2) दोहरे करारोपण (Double Taxation Relief)— दोहरे करारोपण पद से तात्पर्य हैं किसी आय पर एक से अधिक देश में कर लगाया जाना किसी करदाता की किसी विशेष आय पर भारत में करारोपण किया जा सकता है तथा साथ ही साथ अन्य किसी देश में भी करारोपण किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मुख्यतः करारोपण के दो मौलिक भिन्न आधारों के कारण उत्पन्न होती है —

(i) एक देश करदाता की आय की उत्पत्ति के आधार पर कर लगा सकता है तथा

(ii) जबकि दूसरा देश अधिवास के आधार पर कर— निर्धारण कर सकता है।

दोहरे करारोपण के लिए अनुतोष (Double Taxation relief)— धनकर अधिनियम की धारा 44 (क) के अनुसार यह भारतीय संविधान का एक शाश्वत नियम है कि किसी भी व्यक्ति पर एक ही बात के दोहरा बोझ या दोहरी सजा नहीं मिलना चाहिए। यही बात किसी व्यक्ति पर लगाये गये करों के बाबत भी है। शिवांश एक भारतीय है जो नौकरी या व्यापार करने के लिए विदेश में जाकर रहने लगा और उस देश में उसने काफी सम्पत्ति बनायी तथा कम्पनियों से ढेर सारे शेयर खरीदे जिन्हें वहाँ छोड़कर वह भारत वापस आ गया वहाँ की सम्पत्ति से मिलने वाली आमदनी उसके पास भारत आने लगी निश्चित तौर पर भारत में आने वाली आमदनी पर उसे धनकर देना पड़ेगा, लेकिन जिस देश में सम्पत्ति

स्थित है उस देश के नियम के अनुसार शसक्त किया गया है। केन्द्रीय सरकार किसी अन्य देशी से निम्न उद्देश्यों के लिए समझौता कर सकती है —

- (1) एक ही धन को इस अधिनियम और उक्त देश के इसके समकक्ष अधिनियम के अधीन दोहरे करारोपण से बचाने के लिए, अथवा
- (2) इस अधिनियम तथा उक्त देश के समकक्ष अधिनियम के अन्तर्गत धनकर के अपवचन को रोकने के लिए सूचनाओं का आदान-प्रदान या जाँ पड़ताल के लिए, अथवा
- (3) इस अधिनियम तथा उक्त देश के समकक्ष अधिनियम के अन्तर्गत धन की वसूली के लिए।

ऐसा समझौता होने के पश्चात इसे राजकीय गजट में अधिसूचित किया जाना चाहिए। समझौता को कार्यान्वित करने के लिए केन्द्रीय सरकार आवश्यक उस देश को भी अपने देश के नियम के अनुसार शिवांश की सम्पत्ति से होने वाली आय पर कर देना होगा। इन दो देशों के कर लेने से शिवांश पर दोहरे कर का बोझ चढ़ेगा जो शिवांश को केवल इसलिए उठाना पड़ेगा कि वह दूसरे देश से आकर भारत में रहने लगा है। इस समस्या का हल निकालने के लिए धन कर अधिनियम में धारा 44 (क) और 44 (ख) का प्रावधान किया गया है जो कर दाता पर दोहरे बोझ को खत्म तो नहीं करता लेकिन कम अवश्य कर देता है।

अधिनियम की धारा 44 (क) के अनुसार केन्द्रीय सरकार ऐसे अनुतोष के लिए अन्य देशों के साथ समझौता करने के लिए उपबन्ध बना सकती है।

समझौता न होने की दशा में अनुतोष— धनकर अधिनियम की धारा 44 क के अनुसार उस दशा में अनुतोष करने का उपबन्ध किया गया है जब कि अन्य देशों में कोई समझौता न हुआ हो। इस धारा के अनुसार यदि निर्धारित के शुद्ध धन में विदेश में स्थित आस्तियाँ शामिल हैं और उनके सम्बन्ध में उस देश से प्रभावकारी किसी विधि के अधीन धन कर दिया जा चुका है तो ऐसी आस्तियों के सम्बन्ध में भारतीय कर की दरों तथा ऐसे देश की कर की दरों, दोनों में जो भी कम हो, उस दर से छूट के लिए अधिकारी होगा यदि भारत तथा उस देश दोनों में कर की दरें समान हैं तो वह भारतीय दरों के आधार पर छूट के लिए अधिकारी होगा। यह उल्लेखनीय है कि धारा 44क के उपबन्ध उस दशा में लागू होते हैं जबकि भारत तथा ऐसे देश के साथ दोहरे करारोपण के लिए अनुतोष देने के लिए कोई समझौता नहीं किया गया है।

(3) कर भार (Incidence of tax)— आयकर अधिनियम की धारा 5 में कर भार की विवेचना की गयी है। विभिन्न प्रकार के करदाताओं पर कर लगाये जाने का दायित्व उनकी आवासीय स्थिति के अनुसार बदलता रहता है। धारा 5 करदाताओं की कुल आय के क्षेत्र विस्तार के लिए उसकी आवासीय स्थिति को देखते हुए कर लगाये जाने के दायित्व का निर्धारण करती है। आयकर के प्रयोजन के लिए एक अनिवासी की कुल आय की संगणना करने में उस आय को शामिल नहीं किया जाता है, जो कि उसे भारत से बाहर प्राप्त या उत्पन्न हुई हो।

वैट (VAT)—वैट एक कर है जिसे उत्पादन तथा परिचालन के प्रत्येक चरण पर सेवाओं तथा वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि पर वसूला जाता है। यह सभी आयातित वस्तुओं के मूल्य पर वसूली योग्य है। इसे पंजीकृत वैट व्यापार अथवा व्यक्ति या करदाता द्वारा वसूला जाता है। वैट ने अन्य करों को प्रतिस्थापित किया है तथा इसके लागू करने से अन्तिम उपभोक्ता को बड़े कीमत में ना तो वृद्धि हुई है और न ही व्यापार की लाभदेयता घटी है वैट को उत्पादित वस्तु अथवा प्रदान सेवा की बिक्री मूल्य तथा उसकी लागत में अन्तर पर लगाया जाता है अर्थात् आउटपुट तथा इनपुट में अन्तर।

वैट को निम्न बिन्दुओं में बाँटा जा सकता है —

- (1) यह ग्रह-बिन्दु बिक्री कर है।
- (2) इसे प्रत्येक चरण पर केवल मूल्य संवर्द्धन पर एकत्रित किया जाता है।
- (3) डीलर द्वारा भुगतान किये गये कर को पहले से भुगतान कर तथा विक्री पर प्रत्येक बिन्दु पर एकत्रित भुगतान योग्य कर से घटाया जाता है।

(4) तलाशी और अभिग्रहण करने की आयकर अधिकारी की शक्ति—

तलाशी और अभिग्रहण करने की शक्ति (Power of Search and Seizure) धारा 37 क) — प्रमुख निदेशक या निदेशक या मुख्य आयुक्त अथवा ऐसा संयुक्त निदेशक अथवा संयुक्त आयुक्त जो कि इस निमित्त बोर्ड द्वारा अधिकृत किये गये हों, नीचे वर्णित प्राधिकारियों को तलाशी एवं अभिग्रहण करने के लिए प्राधिकृत कर सकते हैं। इस प्राधिकारियों में से कोई भी प्राधिकारी उस समय तलाशी करने और अभिग्रहण करने के लिए प्राधिकृत कर सकता है, जबकि उसके कब्जे में प्राप्त किसी सूचना के परिणामस्वरूप उस प्राधिकारी को ऐसा विश्वास करने का कारण प्राप्त है कि—

(क) कोई व्यक्ति जिसे लेखा-पुस्तिका या अन्य प्रलेख करने के लिए धारा 37 में सम्मन या धारा 16 (4) में सूचना दी गई थी, वह ऐसे सम्मन या सूचना में यथावच्छित लेखा-पुस्तिका अथवा अन्य प्रलेख करने या प्रस्तुत कराने में लोप या विफलता घटित की है। अथवा

(ख) कोई व्यक्ति जिसे कि ऊपरकथित ढंग से सम्मन या सूचना जारी की गयी थी, या जिसे कि ऐसे सम्मन या सूचना जारी किये जाने थे, वह ऐसी लेखा-पुस्तिका या अन्य प्रलेख को प्रस्तुत नहीं करेगा जो इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी कार्यवाही संचालन के लिए उपयोगी अथवा सुसंगत है अथवा

(ग) कोई व्यक्ति किसी ऐसे धन, बुलियन, ज्वेलरी अथवा अन्य बहुमूल्य सामग्रियों को अपने कब्जे में रखे हुए हैं जो उसकी ज्ञात आस्तियों के अनुपात में हैं और उसकी विशिष्टियाँ इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी कार्यवाही के लिए उपयोगी अथवा सुसंगत हैं।

ऊपर लिखित परिस्थितियों में प्रमुख निदेशक या निदेशक अथवा मुख्य आयुक्त या आयुक्त किसी संयुक्त निदेशक या संयुक्त आयुक्त या सहायक निदेशक या उपनिदेशक या सहायक आयुक्त या उप आयुक्त या आयकर अधिकारी को प्राधिकृत कर सकता है और बोर्ड द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत संयुक्त निदेशक या आयुक्त किसी सहायक निदेशक उपनिदेशक या सहायक निदेशक या आयकर अधिकारी को प्राधिकृत कर सकता है कि वह तलाशी ले तथा प्राप्त की गयी सामग्रियों को जब्त कर ले। जो अधिकारी इस प्रकार से प्राधिकृत किया जाता है उसे प्राधिकृत अधिकारी (authorised officer) कहा जाता है।

(5) बीमा व्यवसाय का कर—निर्धारण (Assessment of Insurance Business)—बीमा व्यवसाय करने वाली संस्थाओं की कर योग्य आय अन्य व्यापारिक संस्थाओं की भाँति नहीं निकाली जाती है। आयकर अधिनियम, 1961 के प्रथम अनुसूची में बीमा व्यावसायिक संस्थाओं के कर—निर्धारण के सम्बन्ध में नियम दिये गये हैं। ये नियम जीवन—बीमा व्यवसाय तथा अन्य बीमा व्यवसाय के लिए पृथक—पृथक दिये गये हैं। सम्पूर्ण भारत में जीवन बीमा व्यवसाय जीवन बीमा निगम द्वारा होता है, जो एक विशेष अधिनियम के अन्तर्गत सन् 1956 में स्थापित हुआ है। बीमा व्यवसाय करने वाली संस्था की समस्त आय व्यापार की आय कहलाती है, चाहे वह मकान सम्पत्ति से हो अथवा पूँजी लाभ हो अथवा अन्य साधन से आय हो।

जीवन—बीमा व्यवसाय के लाभ की गणना निम्न प्रकार की जायेगी —

कर—निर्धारण वर्ष से ठीक पूर्व समाप्त हुई अन्तर्मूल्यांकन अवधि के सम्बन्ध में बीमा अधिनियम, 1938 के अनुसार बनाये हुए। बजटनतपंस टंसनजपवद द्वारा प्रदर्शित आधिक्य अथवा कमी में निम्न समायोजन करके जो रकम आये उसका वार्षिक औसत जीवन—बीमा व्यवसाय का उस कर—निर्धारण वर्ष का कर योग्य लाभ होगा।

किसी पूर्व की अन्तर्मूल्यांकन अवधि का कोई आधिक्य अथवा कमी यदि उपर्युक्त आधिक्य अथवा कमी में शामिल हो तो इसमें से उस पिछले आधिक्य अथवा कमी को पृथक कर दिया जायेगा।

उपर्युक्त समायोजन करने के पश्चात् निकली हुई आधिक्य की रकम में वर्षों की उस संख्या का भाग दे दिया जाता है जितने वर्ष अन्तर्मूल्यांकन अवधि में शामिल हों। ऐसा भाग देने से समायोजित आधिक्य का वार्षिक औसत निकल आता है। इस वार्षिक औसत की रकम पर आगे आने वाले वर्षों में कर लगाया जाता है। इस वार्षिक औसत पर तब तक कर लगाया जाता है, जब तक कि अगला मूल्यांकन न हो जाये। जीवन बीमा व्यवसाय के लाभों पर 12% प्रतिशत की दर से आयकर लगेगा।

B.A. LL.B.-10th Sem. Paper-V Land Law

Including Ceiling and Other Local Law

प्रश्न न० 1— चकबन्दी से आप क्या समझते हैं? उन भूमियों का वर्णन कीजिए। जिनकी उ०प्र० जोत चकबन्दी अधिनियम, 1953 के अन्तर्गत चकबन्दी नहीं की जा सकती है।

उत्तर— भूमि सुधार कृषि काश्तकारों की आर्थिक स्थिति सुधारने के उपायों का सबसे महत्वपूर्ण पैकेज है। इसका उद्देश्य कृषि भूमि के स्वामित्व को कृषक वर्ग के पक्ष में पुनर्वितरित करना, किराए का विनियमन और युक्तिकरण, खेतों के आकार में सुधार करना और पारंपरिक कृषि उपज को बढ़ाने के लिए काश्तकारों को सुरक्षा प्रदान करना है। भूमि सुधार के क्षेत्र बहुत व्यापक हैं और तब से इसके निहितार्थ में बहुत सुधार हुआ है। उनमें से कुछ हैं भूमि अधिग्रहण, अधिग्रहण, सीलिंग, जमींदारी और बिचौलियों का उन्मूलन, काश्तकारी और किरायेदारी आदि। चकबन्दी भी भूमि सुधार के दायरे का एक प्रमुख पहलू है। भूमि चकबन्दी खंडित भूमि खंडों और उनके स्वामित्व का एक योजनाबद्ध पुनर्समायोजन और पुनर्व्यवस्था है। इसका उपयोग आमतौर पर बड़ी और अधिक तर्कसंगत भूमि जोत बनाने के लिए किया जाता है। इसका उपयोग ग्रामीण बुनियादी ढांचे को बेहतर बनाने और विकासात्मक और पर्यावरणीय नीतियों को लागू करने के लिए किया जा सकता है।

उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड राज्य में, उत्तर प्रदेश चकबन्दी अधिनियम, 1953 भूमि सुधार के इस क्षेत्र पर वैधानिक कानून है। उत्तर प्रदेश वह इन्द्रधनुषी भूमि है, जहाँ बहुरंगी भारतीय संस्कृति अनादि काल से पुष्पित-पल्लवित होती रही है। योजनाबद्ध आर्थिक विकास के प्रयासों के आरम्भ से ही, देश में शोषणकारी और दोषपूर्ण भूमि स्वामित्व प्रणाली द्वारा कृषि के परिवर्तन में उत्पन्न बाधाओं को दूर करने के उद्देश्य से भूमि सुधारों को उच्च प्राथमिकता दी गई थी। हालाँकि, देश में भूमि सुधार व्यक्तिगत स्वामित्व अधिकारों के निर्माण और भूमि के वास्तविक जोतने वाले को स्वामित्व की सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से ही संतुष्ट रहे हैं और समाजवादी तर्ज पर कृषि संबंधों में कोई बुनियादी परिवर्तन करने का प्रयास नहीं किया गया। उत्तर प्रदेश, जिसने स्वतंत्रता संग्राम के दौरान बड़े पैमाने पर किसानों की राजनीतिक लामबंदी देखी थी, स्वतंत्रता के बाद शुरू किए गए भूमि सुधारों के पहले चरण के दौरान देश के अधिक प्रगतिशील राज्यों में से एक था। दूसरे चरण में, खंडित जोतों के समेकन पर ध्यान केंद्रित किया गया था।

उत्तर प्रदेश चकबन्दी अधिनियम, 1953 (यूपी अधिनियम संख्या 5, 1954) को 4 मार्च, 1954 को राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हुई और इसे 8 मार्च, 1954 को यूपी गजट असाधारण में प्रकाशित किया गया।

प्रस्तावना— चूंकि उत्तर प्रदेश में कृषि के विकास के लिए कृषि जोतों की चकबन्दी के लिए प्रावधान करना समीचीन है, इसलिए इसे अधिनियमित किया जाता है।

इसमें 5 अध्याय और 54 धाराएँ हैं।

समेकन का अर्थ

भूमि समेकन भूखंडों का पुनर्वितरण है जिसका उद्देश्य भूमि स्वामियों को उनके पूर्व छोटे और खंडित भूमि भूखंडों के बदले में एक या अधिक स्थानों पर बड़े भूखंड प्राप्त करना है। भूमि समेकन शब्द लैटिन कॉमासाटियो (समूहीकरण) से आया है। भूमि समेकन हमेशा से ही केवल भूखंडों के सरल पुनर्व्यवस्था से कहीं अधिक रहा है ताकि विखंडन के प्रभावों को दूर किया जा सके और उच्च कृषि उत्पादकता और कम लागत की मांग की जा सके। ख्य, खाद्य एवं कृषि संगठन (एफएओ) के विचार

भूमि समेकन को कभी-कभी गलत तरीके से विखंडन के प्रभावों को दूर करने के लिए पार्सल का केवल सरल पुनर्वितरण माना जाता है। वास्तव में, भूमि समेकन पश्चिमी यूरोप में इसके शुरुआती अनुप्रयोगों के समय से ही व्यापक सामाजिक और आर्थिक सुधारों से जुड़ा हुआ है। 1750 के दशक में डेनमार्क की पहली समेकन पहल निजी स्वामित्व वाले पारिवारिक खेतों की स्थापना करके लोगों को कुलीन जमींदारों के दायित्वों से मुक्त करने के लिए एक गहन सामाजिक सुधार का हिस्सा थी। खंडित जोतों के समेकन से कृषि उत्पादकता में सुधार हुआ, लेकिन यह इन सुधारों का एकमात्र उद्देश्य नहीं था।

भूमि समेकन योजनाओं का दायरा

प्रारंभिक परियोजनाओं का एक समग्र उद्देश्य उत्पादन की शुद्ध आय को बढ़ाना और इसकी लागत को कम करना था। इस फोकस के साथ, इन परियोजनाओं ने पार्सल को समेकित करने का काम किया और सिंचाई, भूमि समतलीकरण आदि जैसे अन्य प्रावधान भी शामिल किए। कृषि के पुनर्निर्माण और संरचना पर ध्यान केंद्रित करने से हटकर, कृषि, भूदृश्य, प्रकृति संरक्षण, मनोरंजन आदि के हितों में संतुलन स्थापित करके ग्रामीण क्षेत्र के अधिक कुशल बहुल क्षेत्रों को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। पर्यावरण की स्थिति को बढ़ती प्राथमिकता दी जा रही है। भूमि समेकन में अब गांव के नवीनीकरण की गतिविधियां शामिल हैं। परियोजनाओं में नए घरों और कार्यस्थल के लिए पर्याप्त भूमि उपलब्ध कराना शामिल है। ग्रामीण विकास की अवधारणा में अन्य परिवर्तनों के अनुरूप, भूमि चकबन्दी में अब लिंग समावेशन और वैकल्पिक विवाद समाधान के तरीकों के उपयोग पर अधिक महत्व दिया जा

रहा है। यह चराई, घास बनाना, लकड़ी काटना, मछली पकड़ना आदि जैसे पुराने अधिकारों को समाप्त करके भूमि स्वामित्व व्यवस्था को आधुनिक बनाने का भी काम करता है।

धारा 3(2) में चकबंदी को इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

चकबंदी का अर्थ है एक इकाई में कई खातेदारों के बीच जोतों का इस प्रकार पुनःव्यवस्थापन करना कि उनकी संबंधित जोतें अधिक सघन हो जाएं;

स्पष्टीकरण — इस खंड के प्रयोजन के लिए, जोतों में निम्नलिखित शामिल नहीं होंगे—

- (1) वह भूमि जो धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी किए जाने के वर्ष से ठीक पहले के कृषि वर्ष में कृषि योग्य थी;
- (2) नदी क्रिया एवं गहन मृदा अपरदन के अधीन भूमि;
- (3) उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 132 में उल्लिखित भूमि;
- (4) ऐसे सघन क्षेत्र जो सामान्यतः लम्बे समय तक जल-जमाव के अधीन रहते हैं;
- (5) ऊसर, कल्लर और रिहाला भूखंड जो एक सघन क्षेत्र बनाते हैं, जिसमें ऐसे क्षेत्र के भीतर खेती की भूमि भी शामिल है;
- (6) पान, गुलाब, बेला, चमेली और केवड़ा उगाने के लिए उपयोग में आने वाली भूमि तथा
- (7) ऐसे अन्य क्षेत्र जिन्हें चकबंदी निदेशक चकबंदी के प्रयोजन के लिए अनुपयुक्त घोषित करे।

धारा 3 (2ए) में कहा गया है कि चकबंदी क्षेत्र का तात्पर्य उस क्षेत्र से है, जिसके संबंध में धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी कर दी गई है, उसके ऐसे भागों को छोड़कर, जिन पर उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 या किसी अन्य कानून, जिसके द्वारा जमींदारी प्रथा को समाप्त किया गया है, के प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

धारा 3 (4सी) जोत को परिभाषित करती है। जोत का तात्पर्य भूमि का एक टुकड़ा या टुकड़ों से है, जो एक खातेदार द्वारा अकेले या अन्य खातेदारों के साथ संयुक्त रूप से एक काश्त के तहत धारित है, धारा 3 (5) के अनुसार भूमि का तात्पर्य कृषि, बागवानी और पशुपालन (मत्स्यपालन और मुर्गीपालन सहित) से संबंधित प्रयोजनों के लिए धारित या अधिभोग की गई भूमि से है और इसमें शामिल हैं—

- (1) वह स्थल, जो किसी होल्डिंग, मकान या अन्य समान संरचना का हिस्सा हो; तथा
- (2) भूमि के भूखंडों पर मौजूद पेड़, कुएं और अन्य सुधार।

धारा 3(11) के तहत, काश्तकार का तात्पर्य हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर या गैर-हस्तांतरणीय अधिकार वाले भूमिधर से है और इसमें शामिल हैं—

- (1) एक असामी,
- (2) सरकारी पट्टेदार या सरकारी अनुदानकर्ता, या
- (3) एक सहकारी कृषि समिति जो निर्धारित शर्तों को पूरा करती हो।

प्रश्न न० 2— सिद्धान्तों का विवरण किस प्रकार बनाया जाता है? सिद्धान्तों के विवरण पर की गयी आपत्तियों का निपटारा किस प्रकार किया जाता है।

उत्तर— प्रकाशन एवं आपत्तियाँ (धारा-20)— सहायक चकबंदी अधिकारी अनंतिम चकबंदी योजना तैयार होने पर, संबंधित खातेदारों और हितबद्ध व्यक्तियों को संबंधित उद्घरणों सहित सूचनाएं भेजेगा या भिजवाएगा। उसके बाद इसे इकाई में प्रकाशित किया जाएगा। धारा 11-ए में निहित प्रावधानों के अधीन।

आपत्तियां दर्ज करना—

- (1) कोई भी व्यक्ति जिसे उपधारा 20(1) के अंतर्गत नोटिस भेजा गया है और
- (2) अनंतिम समेकन योजना से प्रभावित कोई अन्य व्यक्ति,

अनंतिम समेकन योजना में या प्रस्तुत किए गए उद्घरणों में प्रविष्टियों की औचित्य या शुद्धता पर विवाद होने पर आपत्ति दर्ज की जा सकती है।

- (1) प्रभावित, या
- (2) किसी सार्वजनिक भूमि पर या उस पर सार्वजनिक राजमार्ग के अधिकार के अतिरिक्त कोई हित या अधिकार रखना, या
- (3) अन्य हित या अधिकार रखना जो धारा 19-ए की उपधारा (2) के तहत की गई घोषणा से काफी हद तक प्रभावित होता है
- (4) अनंतिम चकबंदी योजना के प्रकाशन के पंद्रह दिन के भीतर सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के समक्ष आपत्ति दर्ज करा सकते हैं, जिसमें ऐसे हित या अधिकार की प्रकृति बताई गई हो।

किसके समक्ष?

- (1) आपत्ति सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी के समक्ष दर्ज कराई जा सकती है।
- (2) आपत्ति दर्ज कराने की समय सीमा

आपत्ति दर्ज कराने के पंद्रह दिन के भीतर की जा सकती है—

- (1) नोटिस की प्राप्ति
- (2) अनंतिम समेकन योजना के प्रकाशन की तिथि, जैसा भी मामला हो, कथन पर आपत्ति का निपटारा (धारा-21)

सहायक चकबंदी अधिकारी द्वारा प्राप्त सभी आपत्तियों, निर्धारित सीमा अवधि की समाप्ति के पश्चात यथाशीघ्र, चकबंदी अधिकारी को प्रस्तुत की जाएंगी, जो संबंधित पक्षों और चकबंदी समिति को नोटिस देने के पश्चात, उनका तथा उनके द्वारा प्राप्त आपत्तियों का, इसमें आगे दी गई रीति से निपटारा करेगा।

उपधारा (1) के अधीन चकबंदी अधिकारी के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की तारीख से 15, दिन के भीतर, बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी के समक्ष अपील दायर कर सकेगा, जिसका निर्णय, इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन अन्यथा उपबंधित के सिवाय, अंतिम होगा।

अनंतिम चकबंदी योजना पर आपत्तियों के निपटारे से पूर्व स्थानीय निरीक्षण—

(1) संबंधित पक्षों और चकबंदी समिति को नोटिस देने के बाद, विवादित भूखंडों का स्थानीय निरीक्षण निम्नलिखित द्वारा किया जाता है;

(2) आपत्तियों पर निर्णय लेने से पूर्व चकबंदी अधिकारी, तथा

(3) अपील पर निर्णय लेने से पूर्व निपटान अधिकारी, चकबंदी।

यदि किसी आपत्ति के निस्तारण या अपील की सुनवाई के दौरान चकबंदी अधिकारी या बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी—

(1) उनका मानना है कि भौतिक अन्याय होने की संभावना है। अनंतिम चकबंदी योजना को प्रभावी करने के लिए कई खातेदारों को। भूमि का उचित और उचित आवंटन करने में कठिनाई हो रही है और अनंतिम चकबंदी योजना को संशोधित किए बिना या एक नई योजना तैयार किए बिना इकाइयों के खातेदारों को भूमि का उचित और उचित आवंटन संभव नहीं है, इसलिए लिखित रूप में दर्ज किए जाने वाले कारणों के लिए यह वैध होगा—

चकबंदी अधिकारी द्वारा संबंधित खातेदारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् अनंतिम चकबंदी योजना को पुनरीक्षित करना, अथवा उसे सहायक चकबंदी अधिकारी को ऐसे निदेशों के साथ पुनः भेजना, जिन्हें चकबंदी अधिकारी आवश्यक समझें तथा बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी को, संबंधित खातेदारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, अनंतिम चकबंदी योजना को पुनरीक्षित करने अथवा उसे सहायक चकबंदी अधिकारी या चकबंदी अधिकारी को, जैसा बंदोबस्त अधिकारी, चकबंदी ठीक समझे, ऐसे निदेशों के साथ, जिन्हें वह आवश्यक समझे, प्रतिप्रेषित करने का अधिकार है।

अनंतिम समेकन योजना की पुष्टि और आवंटन आदेश जारी करना (धारा 23)— इस प्रकार पुष्टि की गई अनंतिम चकबंदी योजना इकाई में प्रकाशित की जाएगी और इस अधिनियम के तहत या इसके द्वारा अन्यथा प्रदान की गई स्थिति को छोड़कर, अंतिम होगी। जहां धारा 19—ए के तहत किए गए आवंटन धारा 21 के तहत संशोधित नहीं किए जाते हैं और उप-धारा (1) के तहत पुष्टि की जाती हैं, धारा 20 के तहत जारी नोटिस में निहित अर्क, अधिनियम के तहत या इसके द्वारा प्रदान की गई स्थिति को छोड़कर, संबंधित खातेदारों के लिए अंतिम आवंटन आदेश के रूप में माना जाएगा।

प्रश्न न० 3— उ०प्र० पंचायतराज अधिनियम, 1947 के अधीन ग्राम पंचायत के अधिकारों एवं शक्तियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— धारा 5(क) सदस्यता के लिए अयोग्यता— कोई व्यक्ति किसी ग्राम पंचायत का प्रधान या सदस्य चुने जाने और होने के लिए निरर्हित होगा, यदि वह—

(1) राज्य विधानमंडल के निर्वाचनों के प्रयोजनों के लिए तत्समय प्रवृत्त किसी विधि द्वारा या उसके अधीन इस प्रकार निरर्हित कर दिया जाता है— परन्तु कोई व्यक्ति इस आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा कि उसकी आयु पच्चीस वर्ष से कम है, यदि उसने इक्कीस वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है;

(2) ग्राम पंचायत का वेतनभोगी सेवक है ख'', ख्यूपी अधिनियम संख्या 6, 2017 द्वारा श्या न्याय पंचायतः हटा दिया गया।

(3) किसी राज्य सरकार या केन्द्र सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी (ग्राम पंचायत को छोड़कर) या किसी राज्य सरकार या केन्द्र सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण वाले किसी बोर्ड, निकाय या निगम के अधीन कोई लाभ का पद धारण करता है।

(4) राज्य सरकार, केन्द्र सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकारी उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 6, 2017 द्वारा श्या न्याय पंचायतः शब्द को हटा दिया गया है।, की सेवा से कदाचार के कारण बर्खास्त कर दिया गया है;

(5) ग्राम पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत को उसके द्वारा देय किसी कर, फीस, दर या किसी अन्य बकाया का ऐसी अवधि तक बकाया है, जैसा कि निर्धारित किया जा सकता है, या ग्राम पंचायत, न्याय पंचायत, क्षेत्र पंचायत या जिला पंचायत द्वारा ऐसा करने की अपेक्षा किए जाने के बावजूद, अपने स्वामित्व का कोई अभिलेख या संपत्ति उसे सौंपने में विफल रहा है, जो उसके अधीन कोई पद धारण करने के कारण उसके कब्जे में आई थीय

(6) अनुमोचित दिवालिया है;

(7) नैतिक अधमता से जुड़े किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(8) आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के तहत किए गए किसी भी आदेश के उल्लंघन के लिए तीन महीने से अधिक की अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई है;

(9) आवश्यक आपूर्ति (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1946 या उत्तर प्रदेश आपूर्ति नियंत्रण (अस्थायी शक्तियाँ) अधिनियम, 1947 के तहत किए गए किसी भी आदेश के उल्लंघन के लिए छह महीने से अधिक अवधि के कारावास या निर्वासन की सजा सुनाई गई है;

(10) उत्तर प्रदेश आबकारी अधिनियम, 1910 के अंतर्गत तीन माह से अधिक अवधि के कारावास की सजा सुनाई गई हो;

(11) स्वापक औषधि और मनोरूपभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 के अंतर्गत किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(12) किसी चुनावी अपराध का दोषी ठहराया गया हो;

(13) उत्तर प्रदेश सामाजिक न्यायिता निवारण अधिनियम, 1947 या सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 के अंतर्गत किसी अपराध का दोषी ठहराया गया हो; या

(14) धारा 95 की उपधारा (1) के खंड (छ) के उपखंड (iii) या (iv) के अधीन पद से तब तक नहीं हटाया गया है जब तक उक्त धारा में उस निमित्त उपबंधित अवधि या राज्य सरकार द्वारा किसी विशिष्ट मामले में आदेशित लघुतर अवधि व्यतीत नहीं हो गई हो— बशर्ते कि खंड (घ), (च), (छ), (ज), (झ), (ञ), (ट), (ठ) या (ड) के अधीन निरर्हता की अवधि ऐसी तारीख से पांच वर्ष होगी, जो निर्धारित की जाए— बशर्ते कि खंड (ई) के तहत अयोग्यता बकाया राशि के भुगतान या रिकॉर्ड या संपत्ति की डिलीवरी पर समाप्त हो जाएगी, जैसा भी मामला हो—

परन्तु यह भी कि प्रथम परन्तुक में निर्दिष्ट किसी खंड के अधीन निरर्हता को राज्य सरकार द्वारा विहित रीति से हटाया जा सकेगा।

धारा 6 सदस्यता समाप्त करना— (1) किसी ग्राम पंचायत का सदस्य उस स्थिति में सदस्य नहीं रह जाएगा यदि उससे संबंधित प्रविष्टि ग्राम पंचायत के प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र की निर्वाचक नामावली से हटा दी जाए।

(2) जहां कोई व्यक्ति उपधारा (1) के अधीन किसी ग्राम पंचायत का सदस्य नहीं रह जाता है, वहां वह उस पद पर भी नहीं रह जाएगा, जिसके लिए वह उसका सदस्य होने के कारण निर्वाचित, नामनिर्देशित या नियुक्त किया गया हो।

6(क) निरर्हता संबंधी प्रश्न पर विनिश्चय— यदि कोई प्रश्न उठता है कि क्या कोई व्यक्ति धारा 5—क या धारा 6 की उपधारा (1) में वर्णित किसी निरर्हता से ग्रस्त हो गया है, तो वह प्रश्न विहित प्राधिकारी को उसके विनिश्चय के लिए निर्देशित किया जाएगा और उसका विनिश्चय, किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, जैसा कि विहित किया जाए, अंतिम होगा।, उत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 6, 1969 द्वारा प्रतिस्थापित।

प्रश्न न० 4— जोत के सीमा निर्धारण की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए। ऐसे निर्धारण की अपील कहाँ और कैसे होती है? क्या अधिकतम जोत सीमा से छूट भी है?

उत्तर— अधिकतम सीमा और छूट के प्रयोजनों के लिए क्षेत्र का निर्धारण.— धारा 5 के अंतर्गत अधिकतम सीमा क्षेत्र या धारा 6 के अंतर्गत किसी छूट के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए —

(i) खंड (पप) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, डेढ़ हेक्टेयर असिंचित भूमि या ढाई हेक्टेयर उपवन भूमि या ढाई हेक्टेयर ऊसर भूमि को एक हेक्टेयर सिंचित भूमि के रूप में गिना जाएगा;

(ii) निम्नलिखित क्षेत्र में खरकल फसल भूमि का डेढ़ हेक्टेयर या किसी अन्य असिंचित भूमि का ढाई हेक्टेयर,, अर्थात् —

(क) बुंदेलखंड;

(ख) इलाहाबाद, इटावा, मथुरा और आगरा जिलों के यमुना पार के हिस्से;

(ग) इलाहाबाद, फतेहपुर, कानपुर, इटावा, मथुरा और आगरा जिलों के यमुना पार वाले हिस्से, यमुना की गहरी धारा से 16 किलोमीटर की दूरी तक;

(घ) कैमूर पर्वतमाला के दक्षिण में मिर्जापुर जिले का भाग;

(ई) मिर्जापुर जिले की तहसील सदर के टप्पा उपरौध और टप्पा चौरासी (बलाई पहाड़);

(च) मिर्जापुर जिले में तहसील रॉबर्ट्सगंज का वह भाग जो कैमूर पर्वतमाला के उत्तर में स्थित है;

(छ) परगना सोक्तेशगढ़ तथा मिर्जापुर जिले की तहसील चुआर के परगना अहरौरा और भगत के पहाड़ी भागों में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की अनुसूची VI की सूची 'ए' और 'बी' में उल्लिखित गांव; तथा

(ज) वाराणसी जिले के पूर्व तालुका नौगढ़ या तहसील चकिया में समाविष्ट क्षेत्र;

(i) कुमायूं और गढ़वाल मंडलों के पर्वतीय और भाबर क्षेत्र तथा देहरादून जिले के जौनसार—बावर परगना को एक हेक्टेयर सिंचित भूमि के रूप में गिना जाएगा।

स्पष्टीकरण.— खंड (ii) के प्रयोजनों के लिए, शकल फसल भूमि से कोई असिंचित भूमि अभिप्रेत है, जो किसी राज्य सिंचाई कार्य या निजी सिंचाई कार्य से सुनिश्चित सिंचाई के परिणामस्वरूप कृषि वर्ष में केवल एक फसल उत्पन्न करने में सक्षम हो।

४ए. सिंचित भूमि का निर्धारण.— विहित प्राधिकारी वर्ष १३७८ फसली, १९७९ फसली और १३८० फसली के सुसंगत खसरो, नवीनतम ग्राम मानचित्र और ऐसे अन्य अभिलेखों की जांच करेगा, जिन्हें वह आवश्यक समझे, और जहां वह आवश्यक समझे, वहां स्थानीय निरीक्षण भी कर सकता है और तत्पश्चात् यदि विहित प्राधिकारी की राय हो कि:—

प्रथमतः , (क) कि, पूर्वोक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में किसी भी फसल के संबंध में किसी भूमि के लिए सिंचाई सुविधा उपलब्ध थी;

(i) अधिसूचना संख्या 1579—MCyw/XXIII 62—MCy—1946, दिनांक 31 मार्च, 1953, जिसे समय—समय पर संशोधित किया गया, में अधिसूचित सिंचाई दरों की अनुसूची संख्या 1 में सम्मिलित कोई नहर; या

(ii) कोई लिफ्ट सिंचाई नहर; या

(iii) कोई राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य; और

(ख) उक्त वर्षों में से किसी एक वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

दूसरे , उत्तर प्रदेश भूमि जोत सीमा अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के लागू होने के पश्चात् चालू हुए किसी राज्य सिंचाई कार्य द्वारा किसी भूमि को सिंचाई सुविधा उपलब्ध हो गई हो, और ऐसे कार्य के चालू होने की तारीख और धारा 10 के अधीन नोटिस जारी करने की तारीख के बीच किसी कृषि वर्ष में ऐसी भूमि पर कम से कम दो फसलें उगाई गई हों; या

तीसरा , (क) कोई भूमि लिफ्ट सिंचाई नहर या राजकीय नलकूप या निजी सिंचाई कार्य के प्रभावी कमांड क्षेत्र में स्थित है; और

(ख) उसकी मिट्टी का वर्ग और संरचना ऐसी है कि वह एक कृषि वर्ष में कम से कम दो फसलें उगाने में सक्षम है; तो विहित प्राधिकारी ऐसी भूमि को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए सिंचित भूमि के रूप में अवधारित करेगा।

स्पष्टीकरण 1. — इस धारा के प्रयोजनों के लिए श्रभावी कमान क्षेत्र से ऐसा क्षेत्र अभिप्रेत है, जिसका किसी भी दिशा में सबसे दूर का खेत सिंचित था —

(क) 1378 फसली , 1379 फसली तथा 1380 फसली वर्षों में से किसी में ; या

(ख) खंड 'द्वितीयक' में निर्दिष्ट किसी कृषि वर्ष में।

स्पष्टीकरण 2.— निजी सिंचाई कार्य का स्वामित्व और स्थान इस धारा के प्रयोजन के लिए सुसंगत नहीं होगा।

स्पष्टीकरण 3.— जहां किसी भूमि पर 1378 फसली , 1379 फसली और 1380 फसली वर्षों में से किसी में गन्ने की फसल उगाई गई हो , वहां यह समझा जाएगा कि इनमें से किसी वर्ष में उस भूमि पर दो फसलें उगाई गई थीं और वह भूमि एक कृषि वर्ष में दो फसलें उगाने में सक्षम है।

भूमि जोत की अधिकतम सीमा लागू करना, छूट और अधिशेष भूमि का अधिग्रहण

अधिकतम सीमा का अधिरोपण— (1) खत्तर प्रदेश भूमि जोत अधिकतम सीमा अधिरोपण (संशोधन) अधिनियम, 1972 के प्रारम्भ से ही, कोई भी खातेदार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में उसको लागू अधिकतम सीमा से अधिक भूमि धारण करने का हकदार नहीं होगा।

स्पष्टीकरण 1.— किसी खातेदार को लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र का निर्धारण करते समय, उसके द्वारा अपने अधिकार में धारित समस्त भूमि, चाहे वह उसके अपने नाम पर हो या किसी अन्य व्यक्ति के नाम पर हो, को ध्यान में रखा जाएगा।

स्पष्टीकरण 2.— यदि 24 जनवरी, 1971 को या उसके पूर्व कोई भूमि किसी ऐसे व्यक्ति के पास थी, जो उस पर वास्तविक कृषिगत कब्जा जारी रखे हुए है और उक्त तारीख के पश्चात् वार्षिक रजिस्टर में किसी अन्य व्यक्ति का नाम दर्ज किया जाता है, चाहे वह पूर्व के अतिरिक्त हो या उसके अपवर्जन के आधार पर और चाहे वह अंतरण विलेख या लाइसेंस के आधार पर हो या किसी डिग्री के आधार पर हो, तो यह उपधारणा की जाएगी, जब तक कि विहित प्राधिकारी के समाधानप्रद रूप में विपरीत साबित न कर दिया जाए, कि प्रथम वर्णित व्यक्ति भूमि पर कब्जा जारी रखे हुए है और यह उसके द्वारा प्रत्यक्षतः द्वितीय वर्णित व्यक्ति के नाम पर धारण की गई है।

(2) उपधारा (1) की कोई बात निम्नलिखित वर्ग के व्यक्तियों द्वारा धारित भूमि पर लागू नहीं होगी, अर्थात् —

(क) केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार या कोई स्थानीय प्राधिकरण या कोई सरकारी कंपनी या निगम;

(ख) कोई विश्वविद्यालय;

(ग) खकृषि में शिक्षा प्रदान करने वाला इंटरमीडिएट या डिग्री कॉलेज या स्नातकोत्तर कॉलेज;

(घ) कोई बैंकिंग कंपनी या सहकारी बैंक या सहकारी भूमि विकास बैंक;

(ङ) उत्तर प्रदेश भूदान यज्ञ अधिनियम, 1952 के अन्तर्गत गठित भूदान यज्ञ समिति।

(3) उपधारा (4), (5), (6) और (7) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उपधारा (1) के प्रयोजनों के लिए अधिकतम सीमा क्षेत्र निम्नलिखित होगा —

(क) ऐसे खातेदार के मामले में जिसके परिवार में पांच से अधिक सदस्य नहीं हैं, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (जिसमें उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि भी शामिल है) तथा दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो उसके द्वारा धारित भूमि के साथ मिलकर दो हेक्टेयर हो जाती है, उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए, जो या तो स्वयं खातेदार नहीं है या जो दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि रखते हैं, ऐसी अतिरिक्त भूमि की अधिकतम सीमा छह हेक्टेयर के अधीन रहते हुए होगी;

(ख) ऐसे खातेदार के मामले में जिसके परिवार में पांच से अधिक सदस्य हैं, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि (जिसके अंतर्गत उसके परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा धारित भूमि भी है), इसके अतिरिक्त पांच से अधिक सदस्यों में से प्रत्येक के लिए तथा उसके प्रत्येक वयस्क पुत्र के लिए, जो स्वयं खातेदार नहीं है या जो दो हेक्टेयर से कम

सिंचित भूमि रखता है, दो अतिरिक्त हेक्टेयर सिंचित भूमि या ऐसी अतिरिक्त भूमि जो ऐसे वयस्क पुत्र द्वारा धारित भूमि के साथ मिलकर दो हेक्टेयर हो जाती है, ऐसी अतिरिक्त भूमि की अधिकतम सीमा छह हेक्टेयर होगी;

स्पष्टीकरण.— खंड (क) और (ख) में श्वयस्क पुत्र पद के अंतर्गत ऐसा वयस्क पुत्र भी शामिल है, जो मर चुका है और अपने पीछे अवयस्क पुत्र या अवयस्क पुत्रियां (विवाहित पुत्रियों को छोड़कर) छोड़ गया है, जो स्वयं खातेदार नहीं हैं या जिनके पास दो हेक्टेयर से कम सिंचित भूमि है;

(ग) किसी अन्य खातेदार के मामले में, 7.30 हेक्टेयर सिंचित भूमि;

स्पष्टीकरण.— भूमि का कोई भी हस्तांतरण या विभाजन जो उपधारा (6) और (7) के अधीन नजरअंदाज किए जाने योग्य है, उसे भी नजरअंदाज किया जाएगा —

(घ) यह निर्धारित करने के प्रयोजनों के लिए कि क्या किसी भू-स्वामी का वयस्क पुत्र स्वयं खखंड (क) या खंड (ड), के अर्थ में भू-स्वामी है;

(छ) धारा 9 के अधीन नोटिस की तामील के प्रयोजनार्थ।

(4) जहां कोई होल्डिंग किसी फर्म या सहकारी समिति या व्यक्तियों के संघ (चाहे निगमित हो या नहीं, किन्तु इसके अंतर्गत कोई सार्वजनिक कंपनी नहीं है) द्वारा धारण की जाती है, वहां उसके सदस्यों (चाहे उन्हें भागीदार, शेयरधारक या किसी अन्य नाम से पुकारा जाता हो) के बारे में यह समझा जाएगा कि वे इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए उस फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संघ में अपने-अपने शेयरों के अनुपात में वह होल्डिंग धारण करते हैं।

परन्तु जहां कोई व्यक्ति फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संगम में प्रवेश के ठीक पूर्व कोई भूमि या अपने पूर्वोक्त अंश के आनुपातिक क्षेत्रफल से कम भूमि का क्षेत्रफल नहीं रखता था, वहां यह समझा जाएगा कि वह उस धारिता में कोई अंश नहीं रखता है या, यथास्थिति, केवल कम क्षेत्रफल रखता है और, यथास्थिति, धारिता का सम्पूर्ण या शेष क्षेत्रफल, शेष सदस्यों द्वारा फर्म, सहकारी समिति या अन्य समिति या व्यक्तियों के संगम में उनके अपने-अपने अंशों के अनुपात में धारण किया हुआ समझा जाएगा।

(5) किसी निजी ट्रस्ट द्वारा धारित किसी होल्डिंग के संबंध में, —

(क) जहां ऐसे ट्रस्ट से आय में उसके लाभार्थियों के शेयर ज्ञात या निर्धारण योग्य हैं, वहां इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, लाभार्थियों के बारे में यह समझा जाएगा कि उस होल्डिंग में उनके शेयर उसी अनुपात में हैं, जैसे ऐसे ट्रस्ट से आय में उनके संबंधित शेयर हैं,

(ख) किसी अन्य मामले में, यह उपधारा (3) के खंड (ई) द्वारा शासित होगा।

(6) किसी खातेदार पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात किए गए भूमि के किसी हस्तांतरण को, जो हस्तांतरण के अभाव में इस अधिनियम के अधीन अधिशेष भूमि घोषित कर दी गई होती, नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा बशर्ते कि इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी—

(क) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी व्यक्ति (सरकार सहित) के पक्ष में स्थानांतरण

(ख) ऐसा अंतरण जो विहित प्राधिकारी के समाधानप्रद रूप में सद्भावनापूर्वक तथा पर्याप्त प्रतिफल के लिए तथा अपरिवर्तनीय लिखत के अधीन सिद्ध हो, जो बेनामी लेन-देन न हो, या भू-धारक या उसके परिवार के अन्य सदस्यों के तत्काल या आस्थगित लाभ के लिए हो।

स्पष्टीकरण 1.— इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात किए गए भूमि अंतरण के अंतर्गत निम्नलिखित सम्मिलित हैं —,

(क) किसी व्यक्ति द्वारा किसी वाद या कार्यवाही में सह-खातेदार के रूप में चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात की गई घोषणा, चाहे ऐसा वाद या कार्यवाही चौबीस जनवरी, 1971 को लंबित थी या उसके पश्चात संस्थित की गई थी;

(ख) किसी व्यक्ति के पक्ष में किसी अन्य विलेख या लिखत में या किसी अन्य तरीके से की गई समान प्रभाव की कोई स्वीकृति, स्वीकृति, त्याग या घोषणा।

स्पष्टीकरण 2.— यह साबित करने का भार कि कोई मामला परंतुक के खंड (ख) के अंतर्गत आता है, उस पक्षकार पर होगा जो इसका लाभ मांग रहा है।

(7) भू-स्वामित्व धारक पर लागू अधिकतम क्षेत्रफल का निर्धारण करते समय, चौबीस जनवरी, 1971 के पश्चात किया गया भूमि का कोई विभाजन, जो विभाजन के अभाव में इस अधिनियम के अधीन अधिशेष भूमि घोषित कर दिया गया होता, को नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा

बशर्ते कि इस उपधारा की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी—

उक्त तारीख को लंबित किसी वाद या कार्यवाही में किया गया विभाजन —

परन्तु यह और कि पूर्ववर्ती परंतुक में किसी बात के होते हुए भी, यदि विहित प्राधिकारी की यह राय है कि भू-स्वामित्व धारक और विभाजन के किसी अन्य पक्षकार के बीच मिलीभगत से ऐसे अन्य पक्षकार को ऐसा हिस्सा दे दिया गया है जिसका वह हकदार नहीं था, या उससे बड़ा हिस्सा दे दिया गया है जिसका वह हकदार था, तो वह ऐसे विभाजन की उपेक्षा कर सकेगा।

स्पष्टीकरण 1.— यदि उक्त तारीख के पश्चात् यह घोषणा करने के लिए वाद संस्थित किया जाता है कि भूमि का विभाजन उक्त तारीख को या उसके पूर्व हो चुका है, तो ऐसी घोषणा को नजरअंदाज कर दिया जाएगा और उस पर विचार नहीं किया जाएगा, तथा यह समझा जाएगा कि उक्त तारीख को या उसके पूर्व कोई विभाजन नहीं हुआ है।

स्पष्टीकरण 2.— यह साबित करने का भार कि कोई मामला प्रथम परन्तुक के अंतर्गत आता है, उस पक्षकार पर होगा जो इसका लाभ मांग रहा है।

(8) उपधारा (6) और (7) में किसी बात के होते हुए भी, कोई भी खातेदार अपने द्वारा धारित किसी भूमि को ऐसे खातेदार के संबंध में अधिशेष भूमि के अवधारण के लिए कार्यवाही जारी रहने के दौरान अंतरित नहीं करेगा और इस उपधारा के उल्लंघन में किया गया प्रत्येक अंतरण शून्य होगा।

स्पष्टीकरण.— इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, अधिशेष भूमि के अवधारण के लिए कार्यवाही धारा 9 की उपधारा (2) के अधीन सूचना के प्रकाशन की तारीख को प्रारंभ हुई समझी जाएगी और उस तारीख को समाप्त हुई समझी जाएगी, जब ऐसे खातेदार के संबंध में धारा 11 की उपधारा (1) या धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन, या यथास्थिति, धारा 13 के अधीन आदेश पारित किया जाता है।

6. अधिकतम सीमा के अधिरोपण से कुछ भूमि को छूट.— (1) इस अधिनियम में किसी बात के होते हुए भी, नीचे वर्णित किसी भी श्रेणी में आने वाली भूमि को, किसी भू-स्वामी पर लागू अधिकतम सीमा क्षेत्र और उसकी अधिशेष भूमि के निर्धारण के प्रयोजनों के लिए विचार में नहीं लिया जाएगा, अर्थात् —

(क) औद्योगिक प्रयोजन के लिए प्रयुक्त भूमि (अर्थात् माल के विनिर्माण, परिरक्षण, भंडारण या प्रसंस्करण के प्रयोजनों के लिए) और जिसके संबंध में उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन और भूमि सुधार अधिनियम, 1950 की धारा 143 के अधीन घोषणा विद्यमान है;

(ख) आवासीय मकान द्वारा अधिगृहित भूमि;

(ग) श्मशान भूमि या कब्रिस्तान के रूप में उपयोग की जाने वाली भूमि, परंतु कृषि योग्य भूमि को छोड़कर;

(घ) चाय, कॉफी या रबर के बागानों के लिए प्रयुक्त भूमि, और निर्धारित सीमा तक, उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए तथा ऐसे बागानों के विकास के लिए अपेक्षित भूमि;

(ङ) स्टड फार्म के प्रयोजनों के लिए 24 जनवरी, 1971 से पहले से धारित भूमि, निर्धारित सीमा तक;

(च) किसी सार्वजनिक धार्मिक या धर्मार्थ वक्फ, ट्रस्ट, बंदोबस्ती या संस्था द्वारा या उसके अधीन पहली मई, 1959 से पूर्व धारित भूमि, जिसकी आय का उपयोग पूर्णतः धार्मिक या धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए किया जाता है, और वह वक्फ, ट्रस्ट या बंदोबस्ती न हो जिसके लाभार्थी पूर्णतः या आंशिक रूप से बसने वाले या उसके परिवार के सदस्य या उसके वंशज हों;

(छ) उत्तर प्रदेश गोशाला अधिनियम, 1964 के अधीन पंजीकृत सार्वजनिक प्रकृति की गोशाला द्वारा 8 जून, 1973 के पूर्व से धारित भूमि, विहित सीमा तक,

स्पष्टीकरण.— उपधारा (1) के खण्ड (आई) की कोई बात उस उपधारा के खण्ड (जी) में निर्दिष्ट गोशाला के संबंध में लागू नहीं होगी,

(2) कोई भी व्यक्ति उपधारा (1) के खंड (घ) या खंड (ग), (च) या खंड (छ) में निर्दिष्ट किसी भूमि को राज्य सरकार की पूर्व अनुज्ञा के बिना अंतरित नहीं करेगा और ऐसी अनुज्ञा के बिना किया गया प्रत्येक अंतरण, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, शून्य होगा—

परन्तु इस उपधारा की कोई बात धारा 5 की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी व्यक्ति के पक्ष में किए गए किसी अंतरण को लागू नहीं होगी।

(3) कोई भूमि, जो किसी ऐसे अंतरण का विषय है जो उपधारा (2) के आधार पर शून्य है, अधिशेष भूमि समझी जाएगी और 10 अक्टूबर, 1975 या ऐसे प्रकल्पित अंतरण की तारीख से, जो भी बाद में हो, सभी भारग्रस्तताओं से मुक्त होकर राज्य सरकार को अंतरित और उसमें निहित हो जाएगी और ऐसी भूमि में सभी व्यक्तियों के सभी अधिकार, हक और हित समाप्त हो जाएंगे।

बशर्ते कि यदि कोई भार हो तो उसे अधिशेष भूमि के स्थान पर धारा 17 के अधीन देय राशि में जोड़ दिया जाएगा।

(4) जहां कोई भूमि उपधारा (3) के अधीन अधिशेष भूमि समझी जाती है, —

(i) धारा 14 के उपबंध ऐसी भूमि के संबंध में यथावश्यक परिवर्तनों सहित लागू होंगे, जिसमें उस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित तारीखों के प्रति निर्देशों के स्थान पर इस धारा की उपधारा (1) में उल्लिखित तारीखों के प्रति निर्देश प्रतिस्थापित किए जाएंगे, और

(ii) धारा 17 के अधीन उसके लिए देय रकम उस व्यक्ति को दी जाएगी जिसके पक्ष में ऐसा अंतरण किया जाना प्रकल्पित था।

प्रश्न न० 5— उ०प्र० शहरी भवन (किराये पर देने, किराये तथा बेदखली का विनियमन) अधिनियम, 1972 के अधीन भवन को परिभाषित कीजिए। उन परिस्थितियों को बताइए। जिनमें किसी भवन के मालिक या किरायेदार का भवन से अध्यासन समाप्त समझा जायेगा।

उत्तर— संक्षिप्त नाम, विस्तार, लागू होना और प्रारम्भ— (1) यह अधिनियम उत्तर प्रदेश नगरीय भवन (किराये पर देने, किराया और बेदखली विनियमन) अधिनियम, 1972 कहा जायेगा।

(2) इसका विस्तार सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश तक है।

(3) यह निम्नलिखित पर लागू होगा—

(क) उत्तर प्रदेश नगर महापालिका अधिनियम, 1959 में परिभाषित प्रत्येक शहर;

(ख) संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 में परिभाषित प्रत्येक नगर पालिका;

(ग) संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 के अधीन गठित प्रत्येक अधिसूचित क्षेत्र; तथा

(घ) संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 के अधीन गठित प्रत्येक नगर क्षेत्र—

परन्तु यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाए कि किसी अन्य स्थानीय क्षेत्र में निवास करने वाली आम जनता के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा घोषित कर सकेगी कि यह अधिनियम या इसका कोई भाग ऐसे क्षेत्र पर लागू होगा और तब यह अधिनियम या इसका कोई भाग ऐसे क्षेत्र पर लागू होगा—

परन्तु यह और कि यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाए कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा—

(i) पूर्ववर्ती परंतुक के अंतर्गत जारी किसी अधिसूचना को रद्द या संशोधित कर सकेगा; या

(ii) घोषित करें कि अधिनियम या उसका कोई भाग, जैसा भी मामला हो, किसी ऐसे शहर, नगरपालिका, अधिसूचित क्षेत्र, नगर क्षेत्र या अन्य पर लागू नहीं होगा।

(4) यह उस तारीख को लागू होगा जिसे राज्य सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।

अधिनियम के प्रवर्तन से छूट.— (1) इस अधिनियम की कोई बात निम्नलिखित पर लागू नहीं होगी—

(क) भारत सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण का कोई भवन या उसमें निहित कोई भवन; या

(ख) राज्य सरकार या भारत सरकार द्वारा पट्टे पर लिए गए या अधिगृहीत किसी भवन के संबंध में उससे अनुदान द्वारा सृजित कोई किरायेदारी, या

(ग) कारखाना अधिनियम, 1948 के अर्थ में कारखाना के रूप में प्रयुक्त या प्रयुक्त किये जाने के लिए आशयित कोई भवन; या

(घ) कोई भवन जो किसी अन्य औद्योगिक प्रयोजन के लिए (अर्थात् किसी माल के विनिर्माण, परिरक्षण या प्रसंस्करण के प्रयोजन के लिए) या सिनेमा या थियेटर के रूप में प्रयुक्त हो या प्रयुक्त होने के लिए आशयित हो, जहां भवन में ऐसे प्रयोजन के लिए स्थापित संयंत्र और उपकरण भवन के साथ पट्टे पर दिया गया हो—

परन्तु इस खंड की कोई बात सिनेमा या थियेटर के परिसर में स्थित किसी दुकान या अन्य भवन के संबंध में लागू नहीं होगी, जिसके संबंध में किरायेदारी सिनेमा या थियेटर के संबंध में किरायेदारी से अलग से सृजित की गई है; या

(ड) कोई भवन जो सार्वजनिक मनोरंजन या आमोद-प्रमोद के स्थान के रूप में उपयोग किया जाता है या उपयोग किए जाने का इरादा है (जिसमें कोई खेल स्टेडियम शामिल है, लेकिन सिनेमा या थिएटर शामिल नहीं है), या उससे अनुलग्न कोई भवन; या

(च) कोई भवन जो विश्वविद्यालय या किसी अन्य वैधानिक निगम या सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत पंजीकृत सोसायटी या सहकारी सोसायटी, कंपनी या फर्म द्वारा निर्मित और धारित है, और जो केवल उसके स्वयं के अधिभोग के लिए या उसके किसी अधिकारी या कर्मचारी के अधिभोग के लिए, चाहे किराये पर हो या निःशुल्क हो, या अतिथि गृह के रूप में, चाहे किसी भी नाम से ज्ञात हो, सामान्य कारोबार के क्रम में उससे संबंध रखने वाले व्यक्तियों के अधिभोग के लिए अभिप्रेत है।

(2) धारा 24 की उपधारा (2) या धारा 29 की उपधारा (3) में यथा उपबंधित के सिवाय, इस अधिनियम की कोई बात किसी भवन पर उसके निर्माण पूरा होने की तारीख से दस वर्ष की अवधि के दौरान लागू नहीं होगी।

स्पष्टीकरण— इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए,—

(क) किसी भवन का निर्माण उस तारीख को पूरा हुआ माना जाएगा जिस तारीख को उसके पूरा होने की रिपोर्ट अधिकारिता रखने वाले स्थानीय प्राधिकारी को दी जाती है या उसके द्वारा अन्यथा अभिलिखित की जाती है, और कर निर्धारण के अधीन भवन की दशा में वह तारीख जिस तारीख को उसका प्रथम कर निर्धारण प्रभाव में आता है, और जहां उक्त तारीखें भिन्न हैं वहां उक्त तारीखों में से सबसे पहले वाली तारीख, और ऐसी किसी रिपोर्ट, अभिलेख या कर निर्धारण के अभाव में वह तारीख जिस तारीख को उसमें पहली बार वास्तव में अधिभोग किया जाता है (केवल निर्माण के पर्यवेक्षण या निर्माणाधीन भवन की रखवाली के प्रयोजनों के लिए अधिभोग सम्मिलित नहीं है)।

बशर्ते कि किसी भवन के विभिन्न भागों के संबंध में निर्माण पूरा होने की अलग-अलग तारीखें हो सकती हैं, जो या तो अलग-अलग इकाइयों के रूप में डिजाइन किए गए हैं या मकान मालिक और एक या अधिक किरायेदारों द्वारा या विभिन्न किरायेदारों द्वारा अलग-अलग अधिभोग में हैं;

(ख) 'निर्माण' में किसी विद्यमान भवन के स्थान पर किया गया कोई नया निर्माण शामिल है, जिसे पूर्णतः या अधिकांशतः ध्वस्त कर दिया गया है;

(ग) जहां किसी विद्यमान भवन में इतना अधिक विस्तार किया जाता है कि विद्यमान भवन उसका केवल एक छोटा सा भाग रह जाता है, वहां विद्यमान भवन सहित सम्पूर्ण भवन, उक्त विस्तार के पूरा होने की तारीख को निर्मित हुआ माना जाएगा।

(3) यदि राज्य सरकार का यह समाधान हो जाता है कि जनसाधारण के हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा किसी ऐसे भवन को, जो किसी शैक्षिक या पूर्ण संस्था के स्वामित्व में है और जिससे प्राप्त समस्त आय उस संस्था के प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाती है, इस अधिनियम के सभी या किसी उपबंध से छूट दे सकेगी और उसी प्रकार ऐसी अधिसूचना को रद्द या संशोधित कर सकेगी।

परिभाषा.— इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो—

(क) किसी भवन के संबंध में किराएदार से वह व्यक्ति अभिप्रेत है जिसके द्वारा उसका किराया देय है, और किरायेदार की मृत्यु पर उसके उत्तराधिकारी;

(ख) 'गृह कर' का तात्पर्य संयुक्त राज्य नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 128 (1) (i) या उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 173 (1) या, जैसा भी मामला हो, संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 की धारा 14 (प) (म) में उल्लिखित कर से है;

(ग) 'जिला मजिस्ट्रेट' में जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस अधिनियम के अधीन उसकी सभी या किन्हीं शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन करने के लिए प्राधिकृत कोई अधिकारी सम्मिलित है और विभिन्न क्षेत्रों या मामलों या मामलों के वर्गों के संबंध में विभिन्न अधिकारियों को इस प्रकार प्राधिकृत किया जा सकेगा और जिला मजिस्ट्रेट किसी मामले को ऐसे किसी अधिकारी से वापस ले सकेगा और या तो उसका स्वयं निपटारा कर सकेगा या उसे निपटारे के लिए किसी अन्य ऐसे अधिकारी को अंतरित कर सकेगा—

परंतु इस खंड की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह जिला मजिस्ट्रेट को खंड (ड) के अधीन विहित प्राधिकारी के कृत्यों का पालन करने के लिए किसी अधिकारी को प्राधिकृत करने की अपनी शक्ति अथवा धारा 33 के अधीन शिकायत करने या शिकायत किए जाने को प्राधिकृत करने की शक्ति प्रत्यायोजित करने के लिए सशक्त बनाती है;

(घ) खंड (ई) के सिवाय, विहित से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है;

(ड) 'विहित प्राधिकारी' का अर्थ प्रथम वर्ग का ऐसा मजिस्ट्रेट है, जिसके पास इस रूप में कम से कम तीन वर्ष का अनुभव है, जिसे इस अधिनियम के अधीन विहित प्राधिकारी की सभी या किन्हीं शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट द्वारा प्राधिकृत किया गया है और विभिन्न मजिस्ट्रेटों को विभिन्न क्षेत्रों या मामलों या मामलों के वर्गों के संबंध में इस प्रकार प्राधिकृत किया जा सकता है और जिला मजिस्ट्रेट किसी भी ऐसे मजिस्ट्रेट से कोई मामला वापस ले सकता है और या तो उसे स्वयं निपटा सकता है या किसी अन्य ऐसे मजिस्ट्रेट को निपटान के लिए अंतरित कर सकता है;

(च) किसी भवन के संबंध में 'मूल्यांकन' से, क्षेत्राधिकार रखने वाले स्थानीय प्राधिकारी द्वारा उसके किराये के मूल्य का, यथास्थिति, मूल्यांकन या आनुपातिक मूल्यांकन अभिप्रेत है, और 'मूल्यांकित' का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा;

(छ) किसी भवन के मकान मालिक या किरायेदार के संबंध में 'परिवार' से तात्पर्य उसके निम्नलिखित से है—

(i) पति/पत्नी,

(ii) पुरुष वंशज,

(iii) ऐसे माता-पिता, दादा-दादी और कोई अविवाहित या विधवा या तलाकशुदा या न्यायिक रूप से अलग हुई पुत्री या किसी वास्तविक वंशज की पुत्री, जो सामान्य रूप से उसके साथ रहती रही हो, और इसमें मकान मालिक के संबंध में, उस भवन में निवास का कानूनी अधिकार रखने वाली कोई भी महिला शामिल है;

(ज) 'पुराना अधिनियम' से संयुक्त प्रांत (अस्थायी) किराया एवं बेदखली नियंत्रण अधिनियम, 1947 अभिप्रेत है;

(i) 'भवन' से आवासीय या गैर-आवासीय छतयुक्त संरचना अभिप्रेत है और इसमें निम्नलिखित शामिल हैं—

(i) ऐसी इमारत से अनुलग्न कोई भूमि (जिसके अंतर्गत कोई उद्यान भी है), गैरेज और उपगृह;

(ii) ऐसे भवन में उपयोग के लिए मकान मालिक द्वारा आपूर्ति किया गया कोई फर्नीचर;

(iii) ऐसी इमारत में उसके अधिक लाभकारी उपयोग के लिए लगाई गई कोई फिटिंग और फिक्सचर;

(जे) किसी भवन के संबंध में 'मकान मालिक' से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे उसका किराया देय है या यदि भवन किराये पर दिया जाता तो देय होता और इसमें, खंड (जी) को छोड़कर, ऐसे व्यक्ति का एजेंट या अटॉर्नी शामिल है;

(ट) धारा 6, 8 और 10 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, 'मानक किराया' से तात्पर्य है—

(i) पुराने अधिनियम द्वारा शासित और इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किराये पर दिए गए भवन के मामले में—

(क) जहां ऐसे प्रारंभ पर उसके लिए सहमत किराया देय है और साथ ही उचित वार्षिक किराया भी है खजिसका इस अधिनियम में वही अर्थ है जो पुराने अधिनियम की धारा 2(च) में है, जिसे अनुसूची में पुनरु प्रस्तुत किया गया है,, वहां सहमत किराया या उचित वार्षिक किराया और उस पर 25 प्रतिशत, जो भी अधिक हो;

(ख) जहां कोई सहमत किराया नहीं है, लेकिन एक उचित वार्षिक किराया है, उचित किराया उस पर 25 प्रतिशत;

(ग) जहां न तो सहमति वाला किराया है और न ही उचित वार्षिक किराया है, वहां धारा 9 के तहत निर्धारित किराया;

(ii) किसी अन्य मामले में, तत्समय प्रवृत्त निर्धारित किराया मूल्य, तथा निर्धारण के अभाव में, धारा 9 के अधीन निर्धारित किराया;

(घ) 'राज्य सरकार' का तात्पर्य उत्तर प्रदेश सरकार से है;

(ङ) 'स्थानीय प्राधिकरण' से नगर महापालिका, नगरपालिका बोर्ड, अधिसूचित क्षेत्र समिति या नगर क्षेत्र समिति अभिप्रेत है;

(च) किसी भवन के संबंध में 'सुधार' का अर्थ उसमें कोई परिवर्धन या परिवर्तन या किरायेदार के लिए किसी नई सुविधा का प्रावधान है, और इसमें किसी वर्ष में की गई सभी मरम्मत शामिल हैं, जिनकी लागत उसके एक महीने के किराए की राशि से अधिक है या धारा 28 की उपधारा (2) के परंतुक में उल्लिखित मामले में, उसके दो महीने के किराए से अधिक है।

किराये का विनियमन

प्रीमियम और सामान्यतः देय किराए का प्रतिषेध.— (1) कोई भी मकान मालिक किसी भवन में किरायेदार को प्रवेश देने के लिए उसके लिए देय किराए के अतिरिक्त कोई प्रीमियम या अतिरिक्त भुगतान नहीं लेगा या प्राप्त नहीं करेगा, न ही कोई किरायेदार किसी उप-किरायेदार या किसी अन्य व्यक्ति को प्रवेश देने के लिए कोई प्रीमियम लेगा या प्राप्त करेगा।

(2) धारा 5, 6, 7, 8 और 10 में दिए गए प्रावधानों के सिवाय, किसी भी भवन के लिए देय किराया ऐसा होगा जैसा मकान मालिक और किरायेदार के बीच सहमति से तय होगा और किसी समझौते के अभाव में मानक किराया होगा।

पुराने भवनों की दशा में देय किराया.— किसी ऐसे भवन के संबंध में, जिस पर पुराना अधिनियम लागू था, इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व से जारी किरायेदारी की दशा में, मकान मालिक, इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन मास के भीतर लिखित सूचना देकर, उसके लिए देय किराए को मानक किराए से अधिक नहीं बढ़ा सकेगा और इस प्रकार बढ़ाया गया किराया इस अधिनियम के प्रारंभ से देय होगा।

सुधारों का किराये पर प्रभाव.— धारा 4 या धारा 5 में किसी बात के होते हुए भी, किन्तु धारा 8 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, जहां मकान मालिक ने इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात या तो किरायेदार की सहमति से या किसी विधि की अपेक्षा के अनुसरण में किसी भवन में कोई सुधार किया है, वहां वह सुधार के पूरा होने की तारीख से तीन मास के भीतर किरायेदार को लिखित सूचना देकर, भवन के मासिक किराये में उक्त तारीख से ऐसे सुधार की वास्तविक लागत के एक प्रतिशत से अनधिक राशि की वृद्धि कर सकेगा और तदुपरांत उस भवन का मानक किराया तदनुसार बढ़ा दिया जाएगा।

करों का भुगतान करने का दायित्व.— इसके विपरीत लिखित में किसी संविदा के अधीन रहते हुए, किन्तु उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम, 1959 की धारा 179 या धारा 149 या संयुक्त प्रांत नगर पालिका अधिनियम, 1916 की धारा 338 के अधीन बनाए गए किसी नियम या जारी की गई अधिसूचना या संयुक्त प्रांत नगर क्षेत्र अधिनियम, 1914 की धारा 14 (1) (ई) में किसी बात के होते हुए भी, किरायेदार, किराए के अतिरिक्त और उसके भाग के रूप में, भवन या उसकी किरायेदारी के अधीन भाग के संबंध में देय निम्नलिखित करों या उनके आनुपातिक भाग, यदि कोई हो, का भुगतान मकान मालिक को करने के लिए उत्तरदायी होगा, अर्थात्—

(क) जल कर;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात गृह कर में की गई प्रत्येक वृद्धि का पच्चीस प्रतिशत, या उसका ऐसा भाग, जो धारा 5 के उपबंधों के अधीन किराए में वृद्धि के परिणामस्वरूप भवन के मूल्यांकन में हुई वृद्धि के कारण नहीं हुआ है;

परन्तु इस धारा की कोई बात ऐसे किरायेदार के संबंध में लागू नहीं होगी जिसके द्वारा देय किराये की दर (धारा 5 के उपबंधों के अधीन किसी वृद्धि या किराये को छोड़कर) तत्समय पच्चीस रुपए प्रतिमास से अधिक नहीं है।

मानक किराये का निर्धारण.— (1) किसी ऐसे भवन की दशा में, जिस पर पुराना अधिनियम लागू था और जो इस अधिनियम के प्रारंभ के समय किराये पर दिया गया था, जिसके संबंध में न तो कोई युक्तियुक्त वार्षिक किराया है, न ही कोई सहमत किराया है या किसी अन्य दशा में, जहां न तो कोई सहमत किराया है और न ही कोई निर्धारण लागू है, जिला मजिस्ट्रेट, उस निमित्त आवेदन किए जाने पर, मानक किराये का निर्धारण करेगा।

(2) मानक किराया निर्धारित करते समय जिला मजिस्ट्रेट निम्नलिखित बातों पर विचार कर सकेगा—

(क) इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख या किराये पर देने की तारीख, जो भी बाद में हो (जिसे इस धारा में इसके पश्चात उक्त तारीख कहा गया है) के ठीक पूर्व भवन और उसके स्थल का संबंधित बाजार मूल्य;

(ख) भवनों के निर्माण, रखरखाव और मरम्मत की लागत;

(ग) उक्त तारीख से ठीक पहले उस क्षेत्र में स्थित समान भवनों के लिए प्रचलित किराया;

(घ) भवन में उपलब्ध कराई गई सुविधाएं;

(ङ) भवन का नवीनतम मूल्यांकन, यदि कोई हो;

(च) कोई अन्य सुसंगत तथ्य जो मामले की परिस्थितियों में महत्वपूर्ण प्रतीत होता है।

(3) उपधारा (1) के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, धारा 10 के अधीन की गई किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

दण्ड लेने या देने पर प्रतिषेध करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के बारहवें वर्ष में संसद द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियम बनाया गया—

प्रश्न न0 6—मानक किराया से आप समझते हैं? मानक किराया के निर्धारण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

उत्तर— अधिनियम की धारा 3(क) के अनुसार “मानक किराया” धारा 6, 8 और 10 के प्रावधानों के अधीन है—

(1) पुराने अधिनियम द्वारा शासित एक इमारत के मामले में और इस अधिनियम के शुरू होने के समय बाहर जाने दें—

(क) जहां ऐसे प्रारंभ पर उसके लिए सहमत किराया देय है और साथ ही उचित वार्षिक किराया भी है खजिसका इस अधिनियम में वही अर्थ है जो पुराने अधिनियम की धारा 2(च) में है, जिसे अनुसूची में पुनरु प्रस्तुत किया गया है,, वहां सहमत किराया या उचित वार्षिक किराया और उस पर 25 प्रतिशत, जो भी अधिक हो;

(ख) जहां कोई सहमत किराया नहीं है, लेकिन एक उचित वार्षिक किराया है, उचित किराया उस पर 25 प्रतिशत;

(ग) जहां न तो सहमति वाला किराया है और न ही उचित वार्षिक किराया है, वहां धारा 9 के तहत निर्धारित किराया।

धारा 6 के अनुसार, किराए में सुधार का प्रभाव— इसके बावजूद, धारा 4 या धारा 5 में कुछ भी शामिल नहीं है, लेकिन धारा 8 के प्रावधानों के अधीन है, जहाँ मकान मालिक के पास, इस अधिनियम के शुरू होने के बाद, या तो किरायेदार की सहमति से का कानून के किसी आवश्यकता के अनुसरण में बनाया गया है। किसी भवन में कोई सुधार, वह किरायेदार को लिखित रूप से नोटिस देकर, सुधार के पूरा होने की तारीख से तीन महीने के भीतर दिया जा सकता है, भवन का मासिक किराया राशि को बढ़ाकर, वास्तविक लागत का एक प्रतिशत से अधिक नहीं उक्त विधि से प्रभाव में सुधार, और उसके अनुसार उस भवन घोंघा स्टैंड के मानक किराए में वृद्धि हुई।

धारा 8 के अनुसार, मानक किराए की राशि, आदि के सम्बन्ध में विवाद— (1) जहां मानक किराये की रकम के संबंध में या धारा 5 या धारा 6 के अधीन अनुमेय किराये में वृद्धि की रकम के संबंध में या उस तारीख के संबंध में जिससे ऐसी वृद्धि प्रभावी होगी, या धारा 7 के अधीन किराएदार द्वारा देय करों की रकम के संबंध में, या धारा 16 या धारा 21 के अधीन भवन के किसी भाग या उससे अनुलग्न किसी भूमि के निर्मुक्त किए जाने के पश्चात किराएदार द्वारा देय आनुपातिक किराये की रकम के संबंध में, या धारा 24 की उपधारा (2) के अधीन उसे आबंटित नए भवन के लिए मूल किराएदार द्वारा देय किराये की रकम के संबंध में कोई विवाद उत्पन्न होता है, वहां जिला मजिस्ट्रेट उस निमित्त आवेदन किए जाने पर आदेश द्वारा ऐसी रकम अवधारित करेगा।

(2) जहां किसी किरायेदार द्वारा अधिभोगित भवन का मूल्यांकन उसके लिए देय करारबद्ध किराये से कम है, वहां जिला मजिस्ट्रेट किरायेदार के आवेदन पर या स्वयं की प्रेरणा से, मकान मालिक को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात, संबंधित स्थानीय प्राधिकारी को निर्देश दे सकेगा कि वह करारबद्ध किराये के अनुसार मूल्यांकन बढ़ा दे, जो उस तारीख से प्रभावी होगा, जिससे करारबद्ध किराया देय है या इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से, जो भी बाद में हो, और तब उस स्थानीय प्राधिकारी से संबंधित विधि में किसी बात के होते हुए भी, मूल्यांकन तदनुसार ठीक किया जाएगा।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन प्रत्येक आदेश, धारा 10 के अधीन की गई किसी अपील के परिणाम के अधीन रहते हुए, अंतिम होगा।

धारा 8 और 9 के अधीन आदेश के विरुद्ध अपील— (1) धारा 8 या धारा 9 के अधीन जिला मजिस्ट्रेट के आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, आदेश की तारीख से तीस दिन के भीतर, उसके विरुद्ध जिला न्यायाधीश को अपील कर सकेगा और जिला न्यायाधीश या तो उसका स्वयं निपटारा कर सकेगा या अपने प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन किसी अपर जिला न्यायाधीश को निपटारे के लिए सौंप सकेगा और उसे किसी ऐसे अधिकारी से वापस ले सकेगा या किसी अन्य ऐसे अधिकारी को अंतरित कर सकेगा।

(2) अपील प्राधिकारी आदेश की पुष्टि कर सकता है, उसमें परिवर्तन कर सकता है या उसे विखण्डित कर सकता है, या मामले को पुनः सुनवाई के लिए जिला मजिस्ट्रेट के पास वापस भेज सकता है, तथा कोई अतिरिक्त साक्ष्य भी ले सकता है, तथा अपना निर्णय लंबित रहने तक अपील के अधीन आदेश के प्रवर्तन को ऐसे निबंधनों पर, यदि कोई हों, रोक सकता है, जिन्हें वह ठीक समझे।

(3) इस धारा के अधीन अपील प्राधिकारी द्वारा पारित किसी आदेश के विरुद्ध कोई और अपील या पुनरीक्षण नहीं किया जा सकेगा तथा उसका आदेश अंतिम होगा।

प्रश्न न0 7— क्षेत्रीय विकास योजना क्या है? इस योजना में संशोधन कैसे किया जा सकता है? क्षेत्रीय विकास योजना एवं महायोजना में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

उत्तर— क्षेत्रीय विकास योजनाएँ—

विकास क्षेत्र का सिविल सर्वेक्षण और मास्टर प्लान—

(1) प्राधिकरण यथाशीघ्र विकास क्षेत्र के लिए मास्टर प्लान तैयार करेगा।

(2) मास्टर प्लान में विकास के प्रयोजनों के लिए विकास क्षेत्र को विभाजित करने वाले विभिन्न क्षेत्रों को परिभाषित किया जाएगा और प्रत्येक क्षेत्र में भूमि का उपयोग किस प्रकार प्रस्तावित है (चाहे उस पर विकास कार्य करके या

अन्यथा) तथा विकास के चरण बताए जाएंगे और यह उस ढांचे के मूल प्रतिरूप के रूप में कार्य करेगा जिसके अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों की क्षेत्रीय विकास योजनाएं तैयार की जा सकेंगी।

(3) मास्टर प्लान में किसी अन्य विषय के लिए प्रावधान किया जा सकेगा जो विकास क्षेत्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक हो। 9. क्षेत्रीय विकास योजनाएँ—

(1) मास्टर प्लान की तैयारी के साथ ही या उसके तुरंत बाद, प्राधिकरण उन प्रत्येक क्षेत्रों के लिए क्षेत्रीय विकास योजना तैयार करने की कार्यवाही करेगा, जिनमें विकास क्षेत्र को विभाजित किया जा सकता है।

(2) क्षेत्रीय विकास योजना में क्षेत्र के विकास के लिए स्थल—योजना और उपयोग—योजना हो सकती है और सार्वजनिक भवनों और अन्य सार्वजनिक कार्यों और उपयोगिताओं, सड़कों, आवास, मनोरंजन, उद्योग, व्यवसाय, बाजारों, स्कूलों, अस्पतालों और सार्वजनिक और निजी खुले स्थानों और सार्वजनिक और निजी उपयोगों की अन्य श्रेणियों के लिए क्षेत्र में प्रस्तावित भूमि उपयोग के अनुमानित स्थान और विस्तार को दर्शाया जा सकता है या जनसंख्या घनत्व और भवन घनत्व के मानकों को निर्दिष्ट किया जा सकता है या क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्र को दर्शाया जा सकता है, जिसे प्राधिकरण की राय में विकास या पुनर्विकास के लिए आवश्यक या घोषित किया जा सकता है या और

विशेष रूप से, निम्नलिखित सभी या किसी भी मामले के संबंध में प्रावधान शामिल होंगे, अर्थात्

(i) भवनों के निर्माण के लिए किसी भी साइट को भूखंडों में विभाजित करना;

(ii) सड़कों, खुले स्थानों, उद्यानों, मनोरंजन के मैदानों, विद्यालयों, बाजारों और अन्य सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए भूमि का आबंटन या आरक्षण—

(iii) किसी क्षेत्र का टाउनशिप या कॉलोनी में विकास और ऐसे विकास के लिए प्रतिबंध और शर्तें,

(iv) किसी भी साइट पर इमारतों का निर्माण और इमारतों में या उसके आसपास बनाए जाने वाले खुले स्थानों और इमारतों की ऊंचाई और चरित्र के संबंध में प्रतिबंध और शर्तें;

(v) किसी भी साइट की इमारतों का संरक्षण;

(vi) किसी भी साइट पर बनाए जाने वाले किसी भी भवन की ऊंचाई या अग्रभाग की स्थापत्य संबंधी विशेषताएं,

(vii) आवासीय भवनों की संख्या जो भूखंड या साइट पर बनाए जा सकते हैं;

(viii) वन निर्माण से पहले या बाद में तथा वह व्यक्ति या प्राधिकरण जिसके द्वारा या जिसके खर्च पर ऐसी सुविधाएं प्रदान की जानी हैं—

(ix) दुकानों, कार्यशालाओं, कारखानों के गोदामों या निर्दिष्ट वास्तुशिल्प विशेषताओं वाले भवनों या इलाके में विशेष उद्देश्यों के लिए डिजाइन किए गए भवनों के निर्माण के संबंध में निषेध या प्रतिबंध, दीवारों, बाड़ों, हेजेज या किसी अन्य संरचनात्मक या वास्तुशिल्प निर्माण का रखरखाव और जिस ऊंचाई पर उन्हें बनाए रखा जाएगा भवनों के निर्माण के अलावा अन्य उद्देश्यों के लिए किसी भी साइट के उपयोग के संबंध में प्रतिबंध कोई अन्य मामला जो योजना के अनुसार क्षेत्र या उसके किसी क्षेत्र के समुचित विकास के लिए आवश्यक है और ऐसे क्षेत्र या इलाके में अव्यवस्थित रूप से बनाए जा रहे भवनों को प्रस्तुत करने के लिए।

राज्य सरकार को अनुमोदन के लिए योजनाओं का प्रस्तुत करना—

(1) इस धारा में तथा धारा 11, 12, 14 तथा 16 में योजना शब्द का अर्थ है मास्टर प्लान तथा किसी क्षेत्र के लिए क्षेत्रीय विकास योजना।

(2) प्रत्येक योजना, अपनी तैयारी के पश्चात प्राधिकरण द्वारा अनुमोदन के लिए राज्य सरकार को प्रस्तुत की जाएगी तथा वह सरकार या तो योजना को बिना किसी संशोधन के या बिना किसी संशोधन के, जैसा वह आवश्यक समझे, अनुमोदित कर सकती है या प्राधिकरण को ऐसे निर्देशों के अनुसार नई योजना तैयार करने के निर्देश के साथ योजना को अस्वीकार कर सकती है।

योजना तैयार करने तथा अनुमोदन में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया— (1) किसी योजना को अंतिम रूप से तैयार करने तथा उसे अनुमोदन के लिए राज्य सरकार को प्रस्तुत करने से पूर्व प्राधिकरण एक योजना तैयार करेगा तथा उसकी एक प्रति निरीक्षण के लिए उपलब्ध कराते हुए ऐसे प्रारूप तथा तरीके से एक नोटिस प्रकाशित करेगा, जैसा कि उस संबंध में बनाए गए विनियमों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, जिसमें किसी भी व्यक्ति से प्रारूप योजना के संबंध में ऐसी तिथि से पूर्व आपत्तियां तथा सुझाव आमंत्रित किए जाएंगे, जो नोटिस में निर्दिष्ट की जा सकती हैं।

(2) प्राधिकरण प्रत्येक स्थानीय प्राधिकरण को, जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर योजना से प्रभावित भूमि स्थित है, योजना के संबंध में कोई अभ्यावेदन करने का युक्तियुक्त अवसर भी देगा।

(3) प्राधिकरण को प्राप्त सभी आपत्तियों, सुझावों और अभ्यावेदनों पर विचार करने के पश्चात प्राधिकरण अंततः योजना तैयार करेगा और उसे राज्य सरकार के अनुमोदन के लिए प्रस्तुत करेगा।

(4) इस धारा के पूर्वगामी उपबंधों के अधीन रहते हुए, राज्य सरकार प्राधिकरण को ऐसी सूचना प्रस्तुत करने का निर्देश दे सकती है, जिसकी सरकार इस धारा के अधीन उसे प्रस्तुत किसी योजना को अनुमोदित करने के प्रयोजन के लिए अपेक्षा कर सकती है।

योजना के प्रारंभ होने की तिथि.— राज्य सरकार द्वारा योजना अनुमोदित किए जाने के तुरंत पश्चात प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट तरीके से एक सूचना प्रकाशित करेगा, जिसमें यह कहा जाएगा कि योजना अनुमोदित कर दी गई है और उस स्थान का नाम दिया जाएगा, जहां योजना की एक प्रति का निरीक्षण सभी युक्तिसंगत समय पर किया जा सकता है और पूर्वोक्त सूचना के प्रथम प्रकाशन की तिथि को योजना लागू हो जाएगी।

मुख्य सड़कों से लगे कुछ भवनों के अग्रभाग का रखरखाव और सुधार.—

(1) जहां किसी विकास क्षेत्र में, कोई भवन जो पूर्णतः गैर-आवासीय प्रयोजनों के लिए या आंशिक रूप से आवासीय और आंशिक रूप से गैर-आवासीय प्रयोजनों के लिए अधिभोग में है, मुख्य सड़क से लगा हुआ है, ऐसे भवन का अधिभोगी, उस संबंध में बनाए गए किसी उप-नियम के अनुसार, अपने स्वयं के खर्च पर ऐसे भवन के अग्रभाग की मरम्मत, रंग-रोगन या पेंटिंग करने के लिए बाध्य होगा।

(2) जहां प्राधिकरण, उस संबंध में बनाए गए किसी रंग-योजना या अन्य विनिर्देश के साथ समरूपता सुनिश्चित करने की दृष्टि से ऐसा करना आवश्यक या समीचीन समझता है, या जहां कोई अधिभोगी उप-धारा (1) के अनुसार किसी भवन के अग्रभाग की मरम्मत, रंग-रोगन, रंग-रोगन या पेंटिंग करने में विफल रहता है, वहां वह आदेश द्वारा यह अपेक्षा कर सकता है कि उक्त कार्य प्राधिकरण द्वारा स्वयं या उसके निर्देश के अधीन किया जाएगा, और तदनुसार, अधिभोगी से यह अपेक्षा भी कर सकता है कि वह ऐसे कार्य की लागत प्राधिकरण को अदा करे।

(3) उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी कार्य की लागत की गणना 'न लाभ न हानि' के आधार पर की जाएगी तथा जमा की जाने वाली राशि की युक्तिसंगतता के बारे में किसी विवाद की स्थिति में, उसका निर्णय राज्य सरकार द्वारा किया जाएगा तथा उसके अधीन रहते हुए प्राधिकरण का आदेश अंतिम होगा तथा किसी न्यायालय में उस पर प्रश्न नहीं उठाया जाएगा।

(4) किसी अधिभोगी द्वारा उपधारा (2) में निर्दिष्ट किसी कार्य की लागत का सम्पूर्ण या आंशिक भुगतान न किए जाने की स्थिति में, वह उपसभापति के प्रमाण-पत्र पर अधिभोगी से भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूल की जा सकेगी।

स्पष्टीकरण — इस धारा में 'मुख्य सड़क' का अर्थ उपविधि में निर्दिष्ट अर्थ होगा, भवन के संबंध में 'अधिभोगी' का अर्थ भवन पर वास्तविक कब्जा या उपयोग करने वाला व्यक्ति है, तथा इसमें भवन का स्वामी (जिस अभिव्यक्ति में न्यायालय द्वारा नियुक्त अभिकर्ता या ट्रस्टी या रिसीवर, जब्तकर्ता या प्रबंधक या भवन पर कब्जा रखने वाला बंधककर्ता शामिल होगा) शामिल है, जो निम्नलिखित के कब्जे में है—

(ii) किरायेदार जो फिलहाल मालिक को इसके संबंध में किराया दे रहा है या देने के लिए उत्तरदायी है;

(iii) इसका किराया-मुक्त अनुदानकर्ता या लाइसेंसधारी—

(iv) वह व्यक्ति जो इसके अनधिकृत उपयोग और कब्जे के लिए मालिक को क्षतिपूर्ति देने के लिए उत्तरदायी है।

प्रश्न न० 8— उ०प्र० नगरपालिका, १९१६ के अन्तर्गत नगरपालिका परिषद के करों को अधिरोपित करने से सम्बन्धित प्रावधानों की विवेचना कीजिए।

उत्तर— अधिनियम की धारा १२८ कर लगाया जाना— (१) इस अधिनियम और भारतीय संविधान के अनुच्छेद २८५ के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नगरपालिका निम्नलिखित कर लगाएगी, अर्थात्—

(i) भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर।

(ii) भवनों या भूमि या दोनों के वार्षिक मूल्य पर जल कर;

(iii) भवनों के वार्षिक मूल्य पर जल निकासी कर, जो ऐसे भवनों पर लगाया जा सकेगा जो निकटतम सीवर लाइन से प्रत्येक नगरपालिका के लिए इस निमित्त नियमों द्वारा निर्धारित दूरी के भीतर स्थित हैं;

(iv) शौचालयों, मूत्रालयों, सीवेज पूलों से मल और प्रदूषित पदार्थों के संग्रहण, निष्कासन और निपटान के लिए संरक्षण करय (२) उपधारा (१) में विनिर्दिष्ट करों के अतिरिक्त, नगरपालिका इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए तथा इसके उपबंधों के अधीन रहते हुए निम्नलिखित में से कोई भी कर लगा सकेगी, अर्थात्—

(i) नगरपालिका सीमा के भीतर किए जाने वाले व्यापारों और व्यवसायों पर कर, तथा नगरपालिका सेवाओं से विशेष लाभ प्राप्त करने वाले या उन पर विशेष भार डालने वाले कर;

(ii) व्यापारों, व्यवसायों और व्यवसायों पर कर, जिसमें वेतन या फीस द्वारा पारिश्रमिक प्राप्त करने वाले सभी रोजगार शामिल हैं;

(iii) रंगमंच कर, जिसका अर्थ है मनोरंजन या मनोरंजन पर करय (पअ) नगरपालिका के भीतर रखे जाने वाले कुत्तों पर कर;

(v) सफाई कर;

(vi) नगरपालिका की सीमा के भीतर स्थित अचल संपत्तियों के हस्तांतरण के विलेखों पर कर;

(vii) समाचारपत्रों में प्रकाशित विज्ञापनों के अलावा अन्य विज्ञापनों पर करय (अपपप) नगरपालिका सीमा के भीतर चलने वाले वाहनों और अन्य वाहनों पर या उसमें खड़ी नावों पर कर।

(Viii) सुधार कर।

(3) नगरपालिका करों का निर्धारण और अधिरोपण इस अधिनियम और उसके अधीन बनाए गए नियमों और उप-नियमों के प्रावधानों के अनुसार किया जाएगा।

(4) इस धारा में कोई भी ऐसा कर लगाने का अधिकार नहीं होगा जिसे राज्य विधानमंडल को संविधान के तहत राज्य में लगाने का अधिकार नहीं है—

बशर्ते कि कोई नगरपालिका जो संविधान के लागू होने से ठीक पहले इस धारा के तहत कोई ऐसा कर वैध रूप से लगा रही थी, वह तब तक उस कर को लगाना जारी रख सकती है जब तक कि संसद द्वारा इसके विपरीत प्रावधान नहीं कर दिया जाता।

अधिनियम की धारा 128 क अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण के कर्मों पर कर— (1) जहां किसी नगर पालिका ने धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (xiii-बी) में निर्दिष्ट कर लगाया है, वहां भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 द्वारा अचल संपत्ति के हस्तांतरण के किसी विलेख पर लगाया गया शुल्क, ऐसी नगर पालिका की सीमाओं के भीतर स्थित अचल संपत्ति के मामले में, उस प्रतिफल की राशि या मूल्य पर दो प्रतिशत बढ़ाया जाएगा, जिसके संदर्भ में उक्त अधिनियम के तहत शुल्क की गणना की जाती है बशर्ते कि नगर पालिका राज्य सरकार के पूर्व अनुमोदन से विशेष संकल्प द्वारा स्टाम्प शुल्क में वृद्धि के उपर्युक्त प्रतिशत को पांच प्रतिशत तक बढ़ा सकती है।

(2) उक्त वृद्धि से होने वाले सभी संग्रह, आकस्मिक व्ययों की कटौती के बाद, यदि कोई हो, राज्य सरकार द्वारा संबंधित नगर पालिका को निर्धारित तरीके से भुगतान किए जाएंगे।

(3) इस उपधारा के प्रयोजनों के लिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 27 को इस प्रकार पढ़ा और समझा जाएगा मानो इसमें निर्दिष्ट विशिष्टियों को निम्नलिखित के संबंध में पृथक रूप से वर्णित करने की आवश्यकता है —

(क) किसी नगर पालिका की सीमाओं के भीतर स्थित संपत्ति; और

(ख) किसी नगर पालिका की सीमाओं के बाहर स्थित संपत्ति।

(4) इस धारा के प्रयोजनों के लिए भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 64 में सरकार के सभी संदर्भों में नगर पालिका, भी शामिल माना जाएगा।

अधिनियम की धारा 129 जल-कर के अधिरोपण पर प्रतिबन्ध— धारा 128 की उपधारा (1) के खण्ड (ii) के अन्तर्गत कर अधिरोपण इस प्रतिबन्ध के अधीन होगा कि कर अधिरोपित नहीं किया जाएगा, —

(i) ऐसी भूमि पर जो केवल कृषि प्रयोजनों के लिए उपयोग की जाती है, जब तक कि ऐसे प्रयोजन के लिए खनगरपालिका, द्वारा जल प्रदाय नहीं किया जाता है; या

(ii) किसी भूमि या भवन पर जिसका वार्षिक मूल्य तीन सौ साठ रुपये से अधिक नहीं है, तथा जिसे खनगरपालिका, द्वारा जल प्रदाय नहीं किया जाता है; या

(iii) किसी ऐसे भूखंड या भवन पर जिसका कोई भी भाग निकटतम स्टैंड-पाइप या अन्य जल कार्यों से नगरपालिका के लिए निर्धारित त्रिज्या के अन्दर नहीं है, जहाँ खनगरपालिका, द्वारा जनता को जल उपलब्ध कराया जाता है।

स्पष्टीकरण— इस धारा के प्रयोजनों के लिए, —

(क) 'भवन' में उसका परिसर, यदि कोई हो, शामिल होगा और जहां एक सामान्य परिसर में कई भवन हैं, वहां सभी ऐसे भवन और सामान्य परिसर शामिल होंगे;

(ख) 'भूमि का एक भूखण्ड' से किसी एकल अधिभोगी द्वारा धारित भूमि का कोई टुकड़ा अभिप्रेत है, या कई सह-अधिभोगियों द्वारा साझा रूप से धारित है, जिसका कोई भी भाग किसी अन्य अधिभोगी या अन्य सह-अधिभोगी की भूमि या सार्वजनिक संपत्ति द्वारा दूसरे भाग से पूरी तरह से अलग नहीं है।

अधिनियम की धारा 129 (क) भवनों या भूमियों या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर लगाना— भवनों या भूमियों या दोनों के वार्षिक मूल्य पर कर नगरपालिका सीमा में स्थित सभी भवनों और भूमियों के संबंध में लगाया जाएगा, सिवाय —

(क) केवल मृतकों के निपटान से संबंधित उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले भवन और भूमि;

(ख) केवल सार्वजनिक पूजा या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए उपयोग किए जाने वाले भवन और भूमि या उनके हिस्से, अनुसंधान और विकास के सरकारी सहायता प्राप्त संस्थानों के खेत, फार्म और उद्यान, सरकारी सहायता प्राप्त या गैर-सहायता प्राप्त, मान्यता प्राप्त शैक्षणिक संस्थानों या खेल स्टेडियम के खेल के मैदान;

(ग) केवल स्कूलों और इंटरमीडिएट कॉलेजों के रूप में उपयोग की जाने वाली इमारतें, चाहे वे राज्य सरकार द्वारा सहायता प्राप्त हों या नहीं;

(घ) प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम, 1904 में परिभाषित प्राचीन स्मारक,

किसी भी ऐसे स्मारक के संबंध में राज्य सरकार के किसी भी निर्देश के अधीन

(ई) भारत संघ में निहित भवन और भूमि, सिवाय उन स्थानों के जहां भारतीय संविधान के अनुच्छेद 285 के खंड (2) के प्रावधान लागू होते हैं;

(एफ) तीस वर्ग मीटर या पंद्रह वर्ग मीटर तक के कारपेट क्षेत्र वाले भूखंड पर निर्मित कोई भी स्वामी द्वारा अधिगृहीत आवासीय भवन, बशर्ते कि उसके स्वामी के पास नगरपालिका सीमा में कोई अन्य भवन न हो; और

(जी) भवन के स्वामी द्वारा अधिगृहीत आवासीय भवन जो ऐसे क्षेत्र में स्थित है जो नगरपालिका परिषद की सीमा में शामिल किया गया है, पांच वर्ष के भीतर या क्षेत्र में सड़क, पेयजल और स्ट्रीट लाइट की सुविधाएं प्रदान किए जाने के बाद, जो भी पहले हो”,

अधिनियम की धारा 130 अन्य करों के अधिरोपण पर प्रतिबंध— धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (iv) या उपधारा (2) के खंड (अप) के अंतर्गत कर लगाना इस प्रतिबंध के अधीन होगा कि कर किसी भी घर या भवन पर निर्धारित नहीं किया जाएगा या किसी भी घर या भवन के अधिभोगी से नहीं वसूला जाएगा, जब तक कि धारा 196 के खंड (क) के अंतर्गत नगरपालिका घर की सफाई या शौचालयों, मूत्रालयों और सीवेज पूलों से मलमूत्र और प्रदूषित पदार्थों के संग्रह, निष्कासन और निपटान का कार्य नहीं करती है।

अधिनियम की धारा 130 क राज्य सरकार की नगरपालिका से कर लगाने की अपेक्षा करने की शक्ति— (1) राज्य सरकार, राजपत्र में प्रकाशित सामान्य या विशेष आदेश द्वारा, किसी नगरपालिका को धारा 128 में उल्लिखित कोई कर, जो पहले से नहीं लगाया गया है, ऐसी दर पर और ऐसी अवधि के भीतर लगाने की आवश्यकता हो सकती है, जैसा कि अधिसूचना में निर्दिष्ट किया जा सकता है और नगरपालिका तदनुसार कार्य करेगी।

(2) राज्य सरकार किसी नगरपालिका को पहले से लगाए गए किसी कर की दर को बढ़ाने, संशोधित करने या बदलने की आवश्यकता हो सकती है और नगरपालिका आवश्यकतानुसार कर को बढ़ाएगी, संशोधित करेगी या बदलेगी।

(3) यदि नगरपालिका उपधारा (1) या (2) के तहत पारित आदेश को पूरा करने में विफल रहती है, तो राज्य सरकार कर लगाने, बढ़ाने, संशोधित करने या बदलने के लिए उपयुक्त आदेश पारित कर सकती है और इसके बाद खाज्य सरकार, का आदेश इस प्रकार लागू होगा मानो वह केवल खनगरपालिका, द्वारा धारा 134 की उपधारा (2) के अधीन, पारित संकल्प हो।

अधिनियम की धारा 130 ख कुछ प्रयोजनों के लिए करों की प्राप्ति को एकत्रित करना— धारा 128 की उपधारा (1) के खंड (ii), (iii) और (iv) तथा उपधारा (2) के खंड (vi) में उल्लिखित जल, जल निकासी, सफाई और संरक्षण करों से प्राप्त सभी धनराशियां तथा जल-कार्य और मल-मूत्र फार्मों तथा शौचालयों, मूत्रालयों और सेसपूलों से एकत्रित मल-मूत्र और प्रदूषित पदार्थों के निपटान से प्राप्त सभी अन्य आयें एक साथ एकत्रित की जाएंगी और उनका उपयोग जल-कार्य और जल-मूत्र निकासी कार्य के निर्माण, रखरखाव, विस्तार या सुधार तथा शौचालयों, मूत्रालयों और सेसपूलों से मल-मूत्र और प्रदूषित पदार्थों के संग्रह, निष्कासन और निपटान की व्यवस्थाओं से संबंधित उद्देश्यों के लिए किया जाएगा, जिसमें मल-मूत्र फार्मों का रखरखाव भी शामिल है।

अधिनियम की धारा 131 प्रारंभिक प्रस्तावों का निर्माण— (1) जब कोई खनगरपालिका, कोई कर लगाना चाहती है, तो वह विशेष संकल्प द्वारा प्रस्ताव तैयार करेगी, जिसमें यह निर्दिष्ट किया जाएगा –

(क) वह कर, जो धारा 128 की उपधारा (2) में वर्णित करों में से एक है, जिसे वह लगाना चाहती है;

(ख) वे व्यक्ति या व्यक्तियों का वर्ग, जिन पर उन्हें दायित्व दिया जाना है, तथा संपत्ति या अन्य करयोग्य वस्तुओं या परिस्थितियों का विवरण, जिनके संबंध में उन्हें दायित्व दिया जाना है, सिवाय इसके कि जहां तक ऐसा कोई वर्ग या विवरण खंड (क) के अधीन या इस अधिनियम द्वारा पहले से ही पर्याप्त रूप से परिभाषित है;

(ग) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग से वसूलनीय राशि या दर;

(घ) धारा 153 में निर्दिष्ट कोई अन्य विषय, जिसे खाज्य सरकार, नियम द्वारा निर्दिष्ट करने की अपेक्षा करती है।

(2) नगरपालिका उन नियमों का प्रारूप भी तैयार करेगी, जिन्हें वह राज्य सरकार से धारा 153 में निर्दिष्ट विषयों के संबंध में बनवाना चाहती है।

(3) नगरपालिका, तत्पश्चात् धारा 94 में निर्धारित तरीके से उपधारा (1) के अंतर्गत बनाए गए प्रस्तावों और उपधारा (2) के अंतर्गत बनाए गए प्रारूप नियमों को अनुसूची प् में दिए गए प्रारूप में सूचना सहित प्रकाशित करेगी।

अधिनियम की धारा 132 प्रस्ताव तैयार करने के पश्चात् की प्रक्रिया— (1) नगरपालिका क्षेत्र का कोई भी निवासी उक्त सूचना के प्रकाशन से एक पखवाड़े के भीतर नगरपालिका को पूर्ववर्ती धारा के अंतर्गत बनाए गए सभी या किसी भी प्रस्ताव पर लिखित रूप में आपत्ति प्रस्तुत कर सकेगा और नगरपालिका इस प्रकार प्रस्तुत की गई किसी भी आपत्ति पर विचार करेगी और विशेष प्रस्ताव द्वारा उस पर आदेश पारित करेगी।

(2) यदि खनगरपालिका, अपने प्रस्तावों या उनमें से किसी को संशोधित करने का निर्णय लेती है, तो वह अधिसूचित प्रस्तावों और (यदि आवश्यक हो) संशोधित मसौदा नियमों को एक नोटिस के साथ प्रकाशित करेगी, जिसमें यह दर्शाया जाएगा कि प्रस्ताव और नियम (यदि कोई हो) आपत्ति के लिए पहले प्रकाशित प्रस्तावों और नियमों में संशोधन हैं— बशर्ते कि ऐसा कोई प्रकाशन आवश्यक नहीं होगा जहां संशोधन मूल रूप से प्रस्तावित कर की राशि या दर में कमी तक ही सीमित हो।

प्रश्न न० 9—निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए।

उत्तर— (1) उ०प्र० नियोजन एवं विकास अधिनियम, 1973 के अन्तर्गत का अर्जन और व्ययन—

धारा 17. भूमि का अनिवार्य अर्जन— (1) यदि राज्य सरकार की राय में विकास के लिए या किसी अन्य उद्देश्य के लिए कोई भूमि आवश्यक है, तो इस अधिनियम के अधीन राज्य सरकार भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 के उपबंधों के अधीन ऐसी भूमि का अर्जन कर सकती है: परन्तु कोई व्यक्ति, जिससे कोई भूमि इस प्रकार अर्जित की गई है, ऐसे

अर्जन की तिथि से पांच वर्ष की अवधि की समाप्ति के पश्चात राज्य सरकार को उस भूमि को उसे लौटाने के लिए इस आधार पर आवेदन कर सकता है कि जिस अवधि के भीतर भूमि का उपयोग उस उद्देश्य के लिए नहीं किया गया है जिसके लिए वह अर्जित की गई थी, और यदि राज्य सरकार इस आशय से संतुष्ट है तो वह अर्जन के संबंध में व्यय किए गए प्रभारों को बारह प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से ब्याज सहित तथा ऐसे विकास प्रभारों को, जो अर्जन के पश्चात व्यय किए गए हों, वापस चुकाने पर भूमि उसे लौटाने का आदेश देगी।

(2) जहां कोई भूमि राज्य सरकार द्वारा अर्जित की गई है, वहां वह सरकार, भूमि पर कब्जा लेने के पश्चात, उस भूमि को प्राधिकरण या किसी स्थानीय प्राधिकरण को उस प्रयोजन के लिए, जिसके लिए भूमि अर्जित की गई है, उस अधिनियम के अधीन अधिनिर्णीत प्रतिकर और अधिग्रहण के संबंध में सरकार द्वारा उपगत प्रभारों का प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण द्वारा भुगतान किए जाने पर अंतरित कर सकेगी।

धारा 18. प्राधिकरण या संबंधित स्थानीय प्राधिकरण द्वारा भूमि का निपटान—(1) राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में दिए गए किसी निर्देश के अधीन, प्राधिकरण या, जैसा भी मामला हो, संबंधित स्थानीय प्राधिकरण राज्य सरकार द्वारा अर्जित और उसे हस्तांतरित किसी भूमि का, उस पर कोई विकास किए बिना या उसे कार्यान्वित किए बिना निपटान कर सकता है; या ऐसी किसी भूमि का, जो वह उचित समझे, ऐसे व्यक्तियों को, ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों और नियमों के अधीन, जिन्हें वह योजना के अनुसार विकास क्षेत्र के विकास को सुरक्षित करने के लिए समीचीन समझे।

(2) इस अधिनियम में किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्राधिकरण या संबंधित स्थानीय प्राधिकरण को दान के रूप में भूमि का निपटान करने में सक्षम बनाती है, किन्तु इसके अधीन रहते हुए, इस अधिनियम में भूमि के निपटान के संदर्भों का अर्थ किसी भी तरीके से, चाहे बिक्री, विनिमय या पट्टे के माध्यम से या किसी सुखभोग, अधिकार या विशेषाधिकार के सृजन द्वारा या अन्यथा, उसके निपटान के संदर्भों के रूप में लगाया जाएगा। (3) उपधारा (2) में किसी बात के होते हुए भी, संबंधित प्राधिकरण या स्थानीय प्राधिकरण ऐसी भूमि पर (जिसके अंतर्गत उस पर कोई भवन भी है) भारतीय जीवन बीमा निगम के पक्ष में बंधक या भार सृजित कर सकेगा। आवास एवं नगरीय विकास निगम, या उत्तर प्रदेश लोक धन (बकाया वसूली) अधिनियम, 1972 में परिभाषित बैंकिंग कंपनी या राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा अनुमोदित कोई अन्य वित्तीय संस्था।

(3) (4) जहां खाली भूमि को इस धारा के अधीन निर्माण करने के लिए पट्टे के माध्यम से समय के भीतर निपटारा गया है, ऐसे समय के भीतर निर्माण न करने पर पट्टे को जब्त करने और पुनः प्रवेश का अधिकार है, और पट्टेदार पर्याप्त कारण के बिना, निर्माण या उसके पर्याप्त भाग को निर्धारित समय या पट्टाकर्ता द्वारा दी गई विस्तारित समय के भीतर करने में विफल रहता है, तो पट्टाकर्ता उप-धारा (4-ए) के प्रावधानों के अधीन पट्टे को जब्त कर सकता है और भूमि पर पुनः प्रवेश कर सकता है बशर्ते कि कोई जब्ती और पुनः प्रवेश तब तक नहीं किया जाएगा जब तक कि पट्टेदार को प्रस्तावित कार्रवाई के खिलाफ कारण बताने का उचित अवसर न दिया गया हो।

(4) (4-ए) जहां पट्टेदार निर्धारित समय और विस्तारित समय के भीतर निर्माण करने में विफल रहता है, उपधारा (4) के अधीन, जिससे पट्टे की तिथि से कुल अवधि पांच वर्ष से अधिक हो जाए, संबंधित भूमि के प्रचलित बाजार मूल्य के दो प्रतिशत की दर से प्रभार पट्टाकर्ता द्वारा प्रति वर्ष उससे वसूल किया जाएगा और यदि उक्त प्रभार लगाए जाने की तिथि से पांच वर्ष की अतिरिक्त अवधि बीत जाती है तो पट्टा जब्त हो जाएगा और पट्टाकर्ता भूमि पर पुनः प्रवेश कर सकेगा; परन्तु जहां पांच वर्ष की अवधि उत्तर प्रदेश नगरीय नियोजन और विकास (संशोधन) अधिनियम, 1997 के प्रारंभ होने से पूर्व समाप्त हो गई हो या जहां पांच वर्ष की अवधि ऐसे प्रारंभ होने के पश्चात एक वर्ष के भीतर समाप्त हो जाती है, वहां प्रभार ऐसे प्रारंभ होने की तिथि से एक वर्ष की अवधि के पश्चात वसूल किया जा सकेगा।

(5) ऐसे जब्तीकरण और पुनः प्रवेश पर, पट्टेदार द्वारा ऐसी भूमि के लिए भुगतान किया गया प्रीमियम, उस पट्टे के अंतर्गत पट्टाकर्ता को देय राशि, यदि कोई हो, और प्रशासनिक व्ययों के लिए प्रीमियम के 5 प्रतिशत के बराबर राशि घटाने के पश्चात, बिना किसी ब्याज के वापस किया जाएगा। (6) उपधारा (4) के अधीन किसी आदेश से व्यथित कोई व्यक्ति, उसके ज्ञान की तारीख से 30 दिन के भीतर जिला न्यायाधीश के समक्ष अपील कर सकेगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा।

(7) पट्टे के जब्तीकरण के पश्चात पुनः प्राप्त भूमि का निपटान उपधारा (1) और (2) के उपबंधों के अनुसार किया जा सकेगा।

(2) विकास प्राधिकरण— धारा 3. विकास क्षेत्रों की घोषणा—यदि राज्य सरकार की राय में राज्य के भीतर किसी क्षेत्र को योजना के अनुसार विकसित करने की आवश्यकता है तो वह राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उस क्षेत्र को विकास क्षेत्र घोषित कर सकती है।

धारा 4. विकास प्राधिकरण—(1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए किसी विकास क्षेत्र के लिए विकास प्राधिकरण कहलाने वाले प्राधिकरण का गठन कर सकेगी।

(2) प्राधिकरण, उक्त अधिसूचना में दिए गए नाम से एक निगमित निकाय होगा, जिसका शाश्वत उत्तराधिकार और सामान्य मुहर होगी, जिसमें चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्ति अर्जित करने, धारण करने और व्ययन करने तथा संविदा करने की शक्ति होगी और वह उक्त नाम से वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा।

(3) किसी विकास क्षेत्र के संबंध में प्राधिकरण, जिसमें उत्तर प्रदेश नगर निगम अधिनियम में परिभाषित किसी शहर का पूरा या उसका कोई भाग सम्मिलित है। 1959) में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात्—

क-अध्यक्ष, जिसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा:

ख- उपाध्यक्ष, जिसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाएगा

ग राज्य सरकार का सचिव, जो उस विभाग का प्रभारी होगा जिसमें विकास प्राधिकरणों से संबंधित कार्य फिलहाल स्थानांतरित किया गया है, पदेन:),

घ राज्य सरकार का सचिव, जो वित्त विभाग का प्रभारी होगा, पदेन।

1 मुख्य नगर एवं ग्राम नियोजक, उत्तर प्रदेश पदेन:

2 एफ उत्तर प्रदेश जलापूर्ति एवं सीवरेज अधिनियम, 1975 के अधीन स्थापित जल निगम के प्रबंध निदेशक। पदेन,

3 मुख्य नगर अधिकारी, पदेन:

4 प्रत्येक जिले का जिला मजिस्ट्रेट जिसका कोई भाग विकास क्षेत्र में सम्मिलित है पदेन:

5 उक्त शहर के लिए नगर महापालिका की सभाओं द्वारा अपने में से निर्वाचित किए जाने वाले चार सदस्य, परन्तु ऐसा कोई सदस्य जैसे ही नगर निगम का सभासद नहीं रह जाता है, वैसे ही वह पद धारण नहीं कर सकेगा—

जे ऐसे अन्य सदस्य जो तीन से अनधिक होंगे, जिन्हें राज्य सरकार द्वारा नामित किया जा सकेगा।

(4) उपाध्यक्ष की नियुक्ति पूर्णकालिक होगी।

(5) उपाध्यक्ष प्राधिकरण की निधियों से ऐसे वेतन और भत्ते प्राप्त करने का हकदार होगा तथा ऐसी सेवा शर्तों द्वारा शासित होगा, जो राज्य सरकार के इस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित की जा सकती हैं।

(6) उपधारा (3) के खंड (ग), खंड (घ), खंड (ङ) या खंड (च) में निर्दिष्ट सदस्य प्राधिकरण की बैठक में स्वयं उपस्थित होने के बजाय, खंड (ग) या खंड (घ) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में विभाग में उप सचिव के पद से नीचे का नहीं तथा खंड (ङ) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में नगर नियोजक के पद से नीचे का नहीं तथा खंड (च) में निर्दिष्ट सदस्य की स्थिति में अधीक्षण अभियंता के पद से नीचे का नहीं, किसी अधिकारी को बैठक में उपस्थित होने के लिए प्रतिनियुक्त कर सकेगा। इस प्रकार प्रतिनियुक्त अधिकारी को बैठक की कार्यवाही में भाग लेने का अधिकार होगा तथा उसे मत देने का भी अधिकार होगा। (7) उप-धारा (3) में उल्लिखित विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य विकास क्षेत्र के संबंध में प्राधिकरण में एक अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष तथा कम से कम पांच और अधिक से अधिक ग्यारह ऐसे अन्य सदस्य होंगे, जिनमें विकास क्षेत्र में प्रत्येक क्षेत्राधिकार रखने वाले नगरपालिका बोर्डों और अधिसूचित क्षेत्र समितियों का कम से कम एक सदस्य शामिल होगा, जो ऐसी अवधि के लिए और ऐसे नियमों और शर्तों पर पद धारण करेंगे, जो इस संबंध में राज्य सरकार के सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित किए जा सकते हैं।

बशर्ते कि प्राधिकरण का उपाध्यक्ष या पदेन सदस्य के अलावा कोई अन्य सदस्य किसी भी समय राज्य सरकार को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लिखित रूप में अपना पद त्याग सकेगा और ऐसा त्यागपत्र स्वीकार किए जाने पर यह समझा जाएगा कि उसने अपना पद रिक्त कर दिया है।

(8) प्राधिकरण का कोई कार्य या कार्यवाही प्राधिकरण में किसी रिक्ति या उसके गठन में किसी दोष के कारण अवैध नहीं होगी।

धारा 7. प्राधिकरण के उद्देश्य—प्राधिकरण के उद्देश्य विकास क्षेत्र के विकास को योजना के अनुसार बढ़ावा देना और सुरक्षित करना होगा और उस प्रयोजन के लिए प्राधिकरण को भूमि और अन्य संपत्ति अर्जित करने, धारण करने, प्रबंधित करने और निपटाने, भवन निर्माण, इंजीनियरिंग, खनन और अन्य कार्य करने, जल और बिजली की आपूर्ति के संबंध में कार्य करने, मलजल का निपटान करने और अन्य सेवाओं और सुविधाओं को प्रदान करने और बनाए रखने और सामान्य रूप से ऐसे विकास के प्रयोजनों और उसके आनुषंगिक प्रयोजनों के लिए आवश्यक या समीचीन कुछ भी करने की शक्ति होगी

बशर्ते कि इस अधिनियम में जैसा प्रावधान किया गया है, उसके सिवाय इस अधिनियम में निहित किसी भी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह प्राधिकरण द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी कानून की अवहेलना को अधिकृत करती है।

(3) सलाहकार परिषद—(1) राज्य सरकार, यदि वह ठीक समझे, मास्टर प्लान तैयार करने तथा विकास की योजना से संबंधित या इस अधिनियम के प्रशासन से उत्पन्न या इसके संबंध में ऐसे अन्य मामलों पर प्राधिकरण को सलाह देने के प्रयोजन के लिए एक सलाहकार परिषद का गठन कर सकेगी, जो प्राधिकरण द्वारा उसे निर्दिष्ट किए जाएं।

(2) धारा 4 की उपधारा (3) में विकास क्षेत्र के संबंध में सलाहकार परिषद में निम्नलिखित सदस्य शामिल होंगे, अर्थात्—

(क) प्राधिकरण का पदेन अध्यक्ष, जो अध्यक्ष होगा।

(ख) मुख्य नगर एवं ग्राम नियोजक, उत्तर प्रदेश तथा मुख्य अभियंता, स्थानीय स्वशासन अभियंत्रण विभाग, उत्तर प्रदेश, पदेन:

(ग) निदेशक, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सेवाएं, उत्तर प्रदेश, या उनके द्वारा नामित व्यक्ति जो उप निदेशक के पद से नीचे का नहीं होगा, पदेन:

(घ) विकास क्षेत्र की सीमाओं के भीतर अधिकार क्षेत्र रखने वाले स्थानीय प्राधिकारियों के चार प्रतिनिधि, जो अपने सदस्यों द्वारा अपने में से चुने जाएंगे;

(ङ) परिवहन आयुक्त, उत्तर प्रदेश, या उनके द्वारा नामित व्यक्ति जो उप परिवहन आयुक्त के पद से नीचे का नहीं होगा, पदेन;

(च) अध्यक्ष, राज्य विद्युत बोर्ड, उत्तर प्रदेश या उनके द्वारा नामित व्यक्ति, पदेन;

(छ) लोक सभा और राज्य विधान सभा के सभी सदस्य जिनके निर्वाचन क्षेत्रों में विकास क्षेत्र का कोई भाग शामिल है;

(ज) राज्य सभा और राज्य विधान परिषद के सभी सदस्य जिनका निवास विकास क्षेत्र में है;

(i) राज्य सरकार द्वारा नामित तीन सदस्य, जिनमें से एक श्रम के हित का और दूसरा उद्योग के हित का प्रतिनिधित्व करेगा विकास क्षेत्र में वाणिज्य।

(3) उपधारा (2) के खंड (एच) के प्रयोजन के लिए, राज्य सभा या राज्य विधान परिषद के सदस्य का निवास स्थान वह माना जाएगा जो ऐसे सदस्य के रूप में उसके निर्वाचन या नामांकन की अधिसूचना में उल्लिखित है।

उपधारा (2) के खंड (डी) के तहत निर्वाचित सदस्य परिषद के लिए अपने निर्वाचन की तारीख से तीन वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा और पुनः निर्वाचन के लिए पात्र होगा:

बशर्ते कि ऐसा कार्यकाल उस समय समाप्त हो जाएगा जब सदस्य उस स्थानीय निकाय का सदस्य नहीं रह जाता है जहां से वह निर्वाचित हुआ था।

उपधारा (2) में उल्लिखित विकास क्षेत्र के अलावा किसी अन्य विकास क्षेत्र के संबंध में सलाहकार परिषद, यदि कोई हो, ऐसे सदस्यों से मिलकर बनेगी जिन्हें राज्य सरकार उस संबंध में सामान्य या विशेष आदेश द्वारा निर्धारित कर सकती है।

सलाहकार परिषद), अध्यक्ष द्वारा बुलाए जाने पर बैठक करेगी बशर्ते कि ऐसी बैठक वर्ष में कम से कम दो बार आयोजित की जाएगी।

(4) नजूल भूमि— (1) राज्य सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा तथा ऐसी शर्तों पर, जिन पर उस सरकार और प्राधिकरण के बीच सहमति हो, राज्य में निहित विकास क्षेत्र में सभी या कोई विकसित और अविकसित भूमि (जिसे आगे नजूल भूमि के रूप में जाना जाएगा और संदर्भित किया जाएगा) को अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार विकास के प्रयोजन के लिए प्राधिकरण के निपटान में दे सकेगी,

(2) उप-धारा (1) के तहत प्राधिकरण के निपटान में किसी नजूल भूमि को रखे जाने के बाद, प्राधिकरण के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के तहत या उसके द्वारा ऐसी किसी भी भूमि का विकास नहीं किया जाएगा।

(3) प्राधिकरण द्वारा या उसके नियंत्रण और पर्यवेक्षण के तहत ऐसी किसी भी नजूल भूमि को विकसित किए जाने के बाद, प्राधिकरण द्वारा उस संबंध में राज्य सरकार द्वारा दिए गए निर्देशों के अनुसार उस पर कार्रवाई की जाएगी।

(4) यदि उपधारा (1) के अधीन प्राधिकरण के निपटान में रखी गई कोई नजूल भूमि राज्य सरकार द्वारा तत्पश्चात् किसी भी समय अपेक्षित हो, तो प्राधिकरण राजपत्र में अधिसूचना द्वारा उसे उस सरकार के निपटान में ऐसे निबंधनों और शर्तों पर प्रतिस्थापित कर देगा, जिन पर उस सरकार और प्राधिकरण के बीच सहमति हो।

प्रश्न न० 10— निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—

उत्तर— (1) नगरपालिका के विघटन का परिणाम —जहां कोई नगरपालिका धारा 30 के अधीन विघटित हो जाती है, वहां निम्नलिखित परिणाम होंगे:

(ए) नगरपालिका के अध्यक्ष सहित सभी सदस्य, आदेश में निर्दिष्ट तिथि को अपने पद छोड़ देंगे, किन्तु इससे उनके पुनः निर्वाचन या पुनः नामांकन की पात्रता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा;

(बी) नई नगरपालिका के गठन तक —

(i) नगरपालिका, उसके अध्यक्ष और समितियों की सभी शक्तियां, कृत्य और कर्तव्य ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों में निहित होंगे तथा उनके द्वारा प्रयोग, पालन और निर्वहन किए जाएंगे जिन्हें राज्य सरकार उस निमित्त नियुक्त करे और ऐसा व्यक्ति या व्यक्ति, जैसा भी अवसर अपेक्षित हो, विधि के अनुसार नगरपालिका, अध्यक्ष या समिति समझे जाएंगे;

(ii) ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों का ऐसा वेतन और भत्ते, जो राज्य सरकार सामान्य या विशेष आदेश द्वारा उस निमित्त नियत करे, नगरपालिका निधि से संदत्त किए जाएंगे;

(iii) राज्य सरकार, समय-समय पर, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के किसी उपबंध को उसके सार पर प्रभाव डाले बिना, अनुकूलित करने, परिवर्तित करने या उपांतरित करने के उपबंधों सहित ऐसे आनुषंगिक या पारिणामिक उपबंध कर सकेगी जो उसे इस धारा के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक या समीचीन प्रतीत हों।

(2) 30. राज्य सरकार की नगरपालिका को भंग करने की शक्ति.— यदि किसी समय राज्य सरकार को यह विश्वास हो जाए कि कोई नगरपालिका इस अधिनियम या किसी अन्य समय प्रवृत्त विधि द्वारा या उसके अधीन उस पर अधिरोपित कर्तव्यों के पालन में लगातार चूक कर रही है या अपनी शक्तियों का एक से अधिक बार अतिक्रमण या

दुरुपयोग कर रही है, तो वह नगरपालिका को यह कारण बताने का उचित अवसर देने के पश्चात कि ऐसा आदेश क्यों न दिया जाए, राजपत्र में कारणों सहित प्रकाशित आदेश द्वारा नगरपालिका को भंग कर सकती है।

(3) नगरपालिका के कर्तव्य— (1) प्रत्येक नगरपालिका का यह कर्तव्य होगा कि वह नगरपालिका क्षेत्र के भीतर निम्नलिखित के लिए युक्तिसंगत प्रावधान करे—

(a) सार्वजनिक सड़कों और स्थानों को रोशन करना;

(b) सार्वजनिक सड़कों और स्थानों को पानी देना;

(bb) नगरपालिका का सर्वेक्षण करना और सीमा चिह्न लगाना;

(c) सार्वजनिक सड़कों, स्थानों और नालियों की सफाई करना, हानिकारक वनस्पतियों को हटाना और सभी सार्वजनिक उपद्रवों को कम करना;

(d) आपत्तिजनक, खतरनाक या अप्रिय व्यापार, व्यवसाय या प्रथाओं को विनियमित करना;

आवारा कुत्तों और खतरनाक जानवरों को रोकना, हटाना या नष्ट करना;

(dd) सार्वजनिक सुरक्षा, स्वास्थ्य या सुविधा के आधार पर सड़कों या सार्वजनिक स्थानों पर अवांछनीय अवरोधों और उभारों को हटाना;

(e) खतरनाक इमारतों या स्थानों को सुरक्षित करना या हटाना;

(f) मृतकों के निपटान के लिए स्थानों का अधिग्रहण, रखरखाव, परिवर्तन और विनियमन करना और पुलिस से लिखित रूप में यह सुनिश्चित करने के बाद कि ऐसा करने में कोई आपत्ति नहीं है, लावारिस शवों के निपटान की व्यवस्था करना,;

(g) सार्वजनिक सड़कों, पुलियों, बाजार शौचालयों, शौचालयों, मूत्रालयों, नालियों, जल निकासी कार्य और सीवरेज कार्य का निर्माण, परिवर्तन और रखरखाव करना;

(gg) अस्वस्थ बस्तियों को पुनः प्राप्त करना,;

(hh) सड़क के किनारे और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर वृक्ष लगाना और उनका रखरखाव करना;

(i) घरेलू औद्योगिक और वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति प्रदान करना;

(ii) शुद्ध और स्वास्थ्यवर्धक जल की पर्याप्त आपूर्ति प्रदान करना, जहां निवासियों का स्वास्थ्य मौजूदा आपूर्ति की अपर्याप्तता या अस्वस्थता के कारण खतरे में है, मानव उपभोग के लिए उपयोग किए जाने वाले जल को प्रदूषित होने से बचाना और प्रदूषित जल को इस प्रकार उपयोग किए जाने से रोकना।

(j) जल आपूर्ति के किसी अन्य स्रोत के अतिरिक्त, सार्वजनिक कुओं, यदि कोई हो, को कार्यशील स्थिति में बनाए रखना, उनके जल को प्रदूषण से बचाना तथा उसे मानव उपभोग के लिए उपयुक्त बनाए रखना;

(jj) जन्म और मृत्यु का पंजीकरण करना;

(k) सार्वजनिक टीकाकरण की प्रणाली स्थापित करना और बनाए रखना;

(l) सार्वजनिक अस्पतालों और औषधालयों की स्थापना करना और बनाए रखना या उनका समर्थन करना, तथा सार्वजनिक चिकित्सा सहायता प्रदान करना;

(m) प्रसूति केंद्रों तथा बाल कल्याण और जन्म नियंत्रण क्लीनिकों की स्थापना करना, बनाए रखना और उनकी सहायता करना तथा जनसंख्या नियंत्रण, परिवार कल्याण और छोटे परिवार के मानदंडों को बढ़ावा देना;

(mm) पशु चिकित्सा अस्पतालों का रखरखाव करना या उनके रखरखाव में योगदान देना;

(n) शारीरिक संस्कृति के संस्थानों की स्थापना करना और बनाए रखना या उन्हें सहायता प्रदान करना,

(nn) प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना करना और बनाए रखना;

(o) आग बुझाने में सहायता प्रदान करना तथा आग लगने पर जान-माल की रक्षा करना;

(p) नगर पालिका के प्रबंधन में निहित या उसे सौंपी गई संपत्ति के मूल्य का रखरखाव करना और उसका विकास करना;

(q)) बोर्ड के वित्त को संतोषजनक स्थिति में बनाए रखना तथा उसके दायित्वों को पूरा करना;

(qq) आधिकारिक पत्रों पर त्वरित ध्यान देना तथा ऐसे विवरण, विवरण और रिपोर्ट तैयार करना, जिन्हें राज्य सरकार, बोर्ड से प्रस्तुत करने की अपेक्षा करती है; तथा

(r) कानून द्वारा उस पर लगाए गए किसी दायित्व को पूरा करना।

(s) चमड़े के कारखानों को विनियमित करना;

(t) पार्किंग स्थलों, बस स्टॉप और सार्वजनिक सुविधाओं का निर्माण और रखरखाव;

(u) शहरी वानिकी और पारिस्थितिकी पहलुओं को बढ़ावा देना तथा पर्यावरण की सुरक्षा;

(v) विकलांगों और मानसिक रूप से मंद लोगों सहित समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा करना;

(w) सांस्कृतिक, शैक्षिक और सौंदर्य संबंधी पहलुओं को बढ़ावा देना;

(x) पशु बाड़ों का निर्माण और रखरखाव करना तथा पशुओं के प्रति क्रूरता को रोकना;

(y) गंदी बस्तियों का सुधार और उन्नयन;

(z) शहरी गरीबी उन्मूलन;

(zz) उद्यान, सार्वजनिक पार्क और खेल के मैदान जैसी शहरी सुख-सुविधाएं और सुविधाएं उपलब्ध कराना।

(4) नगरपालिका के कर्तव्य— (1) प्रत्येक नगरपालिका, जब तक धारा 39 के अधीन पहले ही विघटित न कर दी जाए, अपनी प्रथम बैठक के लिए नियत तारीख से पांच वर्ष तक बनी रहेगी, इससे अधिक नहीं।

(2) किसी नगर पालिका के गठन के लिए चुनाव निम्नलिखित तिथियों में सम्पन्न किया जाएगा —

(ए) उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति से पूर्व; या

(बी) इसके विघटन की तारीख से छह माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व—

परन्तु जहां विघटित नगरपालिका के बने रहने की शेष अवधि छह मास से कम है, वहां ऐसी अवधि के लिए नगरपालिका का गठन करने के लिए इस उपधारा के अधीन कोई निर्वाचन कराना आवश्यक नहीं होगा।

(3) किसी नगरपालिका के अवधि की समाप्ति के पूर्व उसके विघटन पर गठित नगरपालिका केवल उस अवधि के शेष भाग के लिए बनी रहेगी जिसके लिए विघटित नगरपालिका उपधारा (1) के अधीन बनी रहती यदि वह इस प्रकार विघटित न हुई होती।, खउत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 12, 1994 द्वारा प्रतिस्थापित।,

(4) इस अधिनियम के किसी अन्य उपबन्ध में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, जहां अपरिहार्य परिस्थितियों या लोकहित में किसी नगर पालिका के कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व उसका गठन करने के लिए चुनाव कराना साध्य न हो, वहां ऐसी नगर पालिका के सम्यक् गठन तक नगर पालिका की समस्त शक्तियों, कृत्यों और कर्तव्यों का प्रयोग और पालन जिला मजिस्ट्रेट या जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस निमित्त नियुक्त उप-कलेक्टर से अनिम्न पद के राजपत्रित अधिकारी द्वारा किया जाएगा और ऐसा जिला मजिस्ट्रेट या अधिकारी प्रशासक कहलाएगा और ऐसा प्रशासक विधितः नगर पालिका, अध्यक्ष या समिति समझा जाएगा, जैसा भी अवसर अपेक्षित हो।, खउत्तर प्रदेश अधिनियम संख्या 23, 2005 द्वारा अन्तःस्थापित। उत्तराखंड संशोधन धारा 10-ए के अंत में एक नई उपधारा जोड़ी जाएगी, अर्थात्—

(4) इस अधिनियम के किसी अन्य प्रावधान में निहित किसी भी विपरीत बात के बावजूद, जहां अपरिहार्य परिस्थितियों के कारण या सार्वजनिक हित में, इसकी अवधि की समाप्ति से पहले नगर पालिका परिषद / नगर पंचायत का गठन करने के लिए चुनाव कराना व्यावहारिक नहीं है, तब ऐसी नगर पालिका परिषद / नगर पंचायत के उचित गठन तक, नगर पालिका परिषद / नगर पंचायत की सभी शक्तियों, कार्यों और कर्तव्यों का प्रयोग, पालन और निर्वहन जिला मजिस्ट्रेट या उप-मंडल मजिस्ट्रेट के पद से नीचे नहीं ऐसे राजपत्रित अधिकारी द्वारा किया जाएगा, जिसे जिला मजिस्ट्रेट द्वारा इस संबंध में नियुक्त किया जाएगा और ऐसा जिला मजिस्ट्रेट या ऐसा अधिकारी कानून में अध्यक्ष / अध्यक्ष या समिति माना जाएगा, जैसा कि अवसर की आवश्यकता हो सकती है— परन्तु इस धारा के अधीन नियुक्त प्रशासक का कार्यकाल छह माह से अधिक या नये बोर्ड के गठन तक नहीं होगा।, उत्तराखंड अधिनियम संख्या 3, 2008 द्वारा अंतःस्थापित।